प्रकाशक :
वसंत श्रीपाद सातवळेकर बी. ए.
स्वाध्याय-मंडल आनन्दाश्रम
पारडी (जि. सूरत)

•

प्रथम बार

मुद्रक :
व. श्री. सातवळेकर बी. ए.
भारत मुद्रणालय आनंदाश्रम
पारडी (जि. सूरत)

जो लोग हवन करते हैं उनको पता है कि अग्निमें डालने-वाले हविर्द्रव्यपर घी छोड़ा जाता है समिधाओंको भी घी लगाकर अग्निमें छोड़ा जाता है फिर इस अन्त्य हवन में इस शरीररूपी अंतिम समिधाको डालनेके समय घीकी आवश्यकता क्यों नहीं होगी? आजकल समिधाएं घीमें भिगोनेके लिये जितना घी चाहिये उतना नहीं होता इस लिये समिधाओंपर दो चार बूंद छिड़का देते हैं परंतु शरीर रूपी देह समिधा अंत्य यज्ञमें डालनेके समय वैदिक समय में कि जिस समय घीकी ऐसी न्यूनता नहीं थी, पूरे शरीर पर घी डाला जाता होगा इसमें क्या आश्चर्य है! घीसे विष दूर होता है शरीर जलनेके समय विषयुक्त वायु हवामें फैलते हैं उनको दूर करनेके लिये जितना घी डाला जाय उतना आवश्यक ही है इससे वायुशुद्धि भी होती है। शरीरके तोलके बराबर घी अंत्येष्टिमें वर्तना चाहिये ऐसी वैदिक प्रथा थी। आजकल यह कार्य दसपांच तोले घीसे हिंदू करते हैं परंतु केवल आर्यसमाजी ही अंत्येष्टिके लिये बहुत घी वर्तते हैं।

गौ शब्दसे गौसे उत्पन्न होनेवाला घी लिया जाता है यह कोई नयी बात नहीं है और इसको सब एकमतसे मानते हैं। ऐसा होते हुए भी उक्त मंत्रसे गौ खानेका अनुमान निकाला जाता है यह बड़ा आश्चर्य है। गौके बहुवचनकी ओर विद्वानोंका ध्यान आकर्षित नहीं हुआ और इस कारण यहांके अर्थका अनर्थ हुआ यह स्पष्ट बात है। अस्तु।

इस मंत्रके देखनेसे भी गौ खानेकी कल्पना वैदिक समयमें थी ऐसा सिद्ध नहीं हो सकता।

५ यज्ञमें पशु।

यज्ञमें मनुष्य जो देवताओंके उद्देशसे देता है वह स्वयं खाता है ऐसा मानकर युरोपीयन पंडित लिखते हैं-

The usual food of the Vedic Indian as far as flesh was concerned can be gathered from the list of sacrificial victims what man ate be presented to Gods-that is, the sheep the goat and the ox (Vedic Index Vol. II P 143)

अर्थात्-' वैदिक समयका हिंदी मनुष्य कौनसा मांस खाता था यह देखना हो तो यज्ञीय पशुओंकी नामावली देखें जो मनुष्य खाता है वह देवताको समर्पण करता है अर्थात् भेड़ बकरी बैल। इसका मतलब यह है कि ये पशु मार कर खाये जाते थे। ये युरोपियन लोग मानते हैं कि अश्वमेधमें घोड़ा मारा जाता था परन्तु इनका कथन है कि वैदिक समयके आर्य अधिकतर घोड़ेका मांस नहीं खाते थे। यह युरोपीयनोंकी कृपा है कि उन्होंने घोड़ेके मांससे आर्योंको बचाया। नहीं तो जिसका यज्ञ होता था वह खाया जाता था ऐसा माननेपर और यज्ञ-प्रक्रियामें घोड़ेको काटनेकी प्रथा थी ऐसा माननेपर युरोपीयनोंके माननेसे आर्योंका बच जाना कठिन बात थी। परंतु वैदिक इन्डेक्स पुस्तकमें घोड़ेका मांस खानेकी प्रथा नहीं थी ऐसा स्पष्ट लिखा है इसलिये हम उनके धन्यवाद गाते हैं। अब विचार करना है कि जिसका यज्ञ होता था वह खाया जाता था ऐसा तत्त्व माननेपर क्या क्या आपत्ति आती है। नरमेधमें नरमांस और अश्वमेधमें अश्वमांसके विषयमें युरोपीयनोंकी संमति है कि इनका मांस नहीं खाया जाता था। यदि यह अपवाद मान लिया जाय तो मानना पड़ेगा कि देवताओंके उद्देशसे पशुसमर्पण करनेपर भी उसके मांस खानेका नियम नहीं है। तथापि अपवादके लिये मनुष्य और घोड़ेको हम एक ओर करते हैं; तो शेष रहे हुए यज्ञमें समर्पित होनेवाले पशुपक्षियोंको निःसंदेह खाया जाता था ऐसा नहीं दिखाई देता। देखिये-

वाचे प्लुषीन्। चक्षुषे मशकान्। श्रोत्राय भृङ्गाः॥
यजु. २४।२९

'वाणीके लिये दीमक आंखके लिये मक्खियां और कानके लिये भ्रमरोंका आलंभन करते हैं।

जो देवताके उद्देशसे दिया जाता था वह वैदिक आर्योंका भक्ष्य था यदि यह मत ठीक है और जीवका सूत्र सच्चा माना जाय तो दीमक मक्खियां और भ्रमर भी वैदिक आर्य खाते थे ऐसा मानना पड़ेगा!!! युरोपीयनोंके अनुमान कितने भयंकर होते हैं इसका यह एक नमूना ही है। जो भारतीय भाई युरोपीयनोंके पीछे अपना कदम रखते हैं उनको संभालकर ही उनके पीछे जाना चाहिये। और देखिये

ब्रह्मणे ब्राह्मणमालभते क्षत्राय राजन्यम्।
नृत्ताय सूतं धर्माय सभाचरम्॥ यजु ३०॥

ब्रह्मदेवताके लिये ब्राह्मण क्षत्रदेवके लिये क्षत्रिय वीर

(गो) गायके (आशिरः) मिश्रित । इन दोनों शब्दोंमें गो शब्द है परन्तु यहां कोई भी गोमांस नहीं लेते परन्तु गायका दूध ही लेते हैं । म ग्रिफिथने गवाशिरः का अर्थ Beat with milk अर्थात् ' दूधसे मिश्रित ' ऐसा किया है । सोमरसमें गायका दूध मिलाकर बड़ा मधुर पेय बनाया जाता है यह बात सब जानते ही हैं ।

श्री सायणाचार्यजी भी ' गोश्रीता, गवाशिरः ' शब्दोंके विषयमें निम्न प्रकार भाष्य करते हैं— " विकारे प्रकृति शब्दः । पयोभिः मिश्रिताः । गोभिः क्षीरैः आशिरो मिश्रिताः देवताः । " (ऋ. १।१३७। १-२) अर्थात् यहां गौ शब्दसे दूध लिया जाता है, उससे मिश्रित सोम यहां इन शब्दोंसे बताया जाता है ।

सोमके साथ भिन्न पदार्थोंका मिश्रण करनेकी सूचना वेदमंत्रोंमें ही है—

१ गवाशिरः= गो दुग्धसे मिश्रित सोम ।
(ऋ. १।१३७।१)

२ गोश्रिता= „ „

३ दध्याशिरः= गौके दहीसे „ „

४ यवाशिरः= यूके जौके आटेसे मिश्रित सोम ।
(ऋ. १।१८७।९)

५ त्र्याशिरः= दूध दही और भूने हुए धानसे मिश्रित सोम । (ऋ. ५।२७।५) Mixed with milk, curds & parched grain (म ग्रिफिथ)

६ रसाशिरः= रसोंसे मिश्रित सोम । (ऋ. ३।४८।१)

सोमके साथ किनसे पदार्थ मिलाये जाते थे यह बात यहां स्पष्ट हो गई है । सोममें मांस या रक्त मिलानेकी बात कहीं भी नहीं है यह पाठक अवश्य ध्यानमें धारण करें ।

सोमका नाम वेदमें उक्षा भी आता है । उक्षा शब्दका अर्थ (Sprinkling) सिंचन करनेवाला है । सोमसे रसकी बूंदें निकलती हैं इस कारण उसको उक्षा कहते हैं । पूर्व वेदीमें सोमरसका हवन होता है । इसलिये सोम अग्निका अन्न है यही भाव " उक्षान्न (सोम ही अन्न) " शब्दमें है । बैल अर्थ यहां अपेक्षित नहीं है । क्योंकि बैलके मांसका हवन होता ही नहीं फिर वह अग्निमें अन्न कहांसे ।

५ गोवधनिषेधक वेदवचन ।

गां मा हिंसीरदितिं विराजम् ॥ ४३ ॥
घृतं दुहानामदितिं जनाय मा हिंसीः ॥ ४९ ॥
यजु. १३

" तेजस्वी अवध्य गौ है इसलिये उसकी हिंसा न कर । अवध्य गौ है और वह लोगोंके लिये घी देती है इसलिये गौकी हिंसा मत कर । इस प्रकार गायकी हिंसा करना मना किया है, यह हिंसा न करनेकी आज्ञा है, अब दूसरी रीतिसे भी यही उपदेश वेदमंत्रोंमें दिया है वे मंत्र देखिये-

६ वेदमें अहिंसा ।

वेदमें केवल गौकी ही अहिंसा नहीं लिखी है परंतु सर्व साधारण द्विपाद चतुष्पादोंकी भी अहिंसा लिखी है । सब भूतोंके हितदृष्टिसे देखनेका वेदका महा-सिद्धांत है । उसके साथ निम्नलिखित प्रमाणोंका विचार कीजिये—

अश्वं मा हिंसीः— ॥ ४२ ॥
अविं मा हिंसीः ॥ ४४ ॥
इमं मा हिंसीर्द्विपादं पशुम् ॥ ४७ ॥
इमं मा हिंसीः एकशफम् ॥ ४८ ॥
इममूर्णायुं मा हिंसीः ॥ ५० ॥ यजु. १३
मा हिंसीः पुरुषम् ॥ यजु. १६।३

घोडा बकरा द्विपाद पशु ऊन देनेवाला तथा पुरुष इनकी हिंसा न कर । " ये मंत्र निःसंदिग्धताके शब्दोंके साथ वहांसे वेदका अहिंसापूर्ण उपदेश स्पष्ट सामने आजाता । सर्व साधारण प्राणियोंको मित्रदृष्टिसे देखो और इन प्राणियोंकी हिंसा तो कभी न करो यह वेदका उपदेश मनुष्योंके लिये है । इतना होते हुए भी कई यूरोपियन समझते हैं कि वेदमें अहिंसाका तत्व वैसा उत्कट नहीं है जैसा आगे बढ गया है ।

यह माना जा सकता है कि जैन बौद्धोंने जिस प्रकार आत्यन्तिक और ऐकान्तिक अहिंसा प्रचलित की वैसी वेदमें नहीं थी परन्तु अहिंसाका सिद्धांत ही वेदमें नहीं था यह कहना अयुक्त है । वेद सर्व साधारण आचरणके लिये अहिंसाका ही उपदेश दे रहा है परंतु प्रसंगविशेषमें युद्धादि प्रसंगोंमें वध करनेसे पीछे रहनेकी आज्ञा भी नहीं देता अर्थात

समान हो वह भी शक्तिमान और वर्चस्वी तथा अवध्य ही है देखिये—

सं गाभ्यां रक्ष ऋषभस्य वर्तिं हन्ति चक्षुषा ।
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः ॥१७॥
शतयाजं स यजते नैनं दुन्वन्त्यग्नयः ।
जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥१८॥ अथर्व ९।४

जो गौवोंका पति (अघ्न्य) अवध्य अर्थात् बैल है वह कानोंसे कल्याणकी बातें सुनता है वह आंखोंसे अकाल दुर्भिक्षका नाश करता है और अपने सींगोंसे राक्षसोंको दूर भगाता है। सो यज्ञोंसे वह यजन करता है (एनं) इस बैलको (अग्नयः न दुन्वन्ति) अग्नि जलाते नहीं है। सब देव उसे संतुष्ट करते हैं जो (ब्राह्मणे) ब्राह्मणको (ऋषभं) बैल (आजुहोति) अर्पण करता है।

इसमें निम्नलिखित बातें देखने योग्य हैं—

१ बैलका नाम अघ्न्य है जिसका अर्थ 'अवध्य' है।

२ एक बैल ब्राह्मणको दान करना सौ यज्ञके बराबर है। (मन्त्र १८) बैलके रक्षण करने अर्पण करने और दान करनेका इतना महत्त्व है।

३ उसको अग्नि जलाता नहीं है इतना बैलका महत्त्व है। (मं. १८)

४ बैल कभी कानोंसे बुरे शब्द सुनता नहीं, क्योंकि सब उसकी प्रशंसा ही करते हैं। (मं. १७)

५ बैल अपनी आंखसे अकालके दुर्भिक्षको दूर करता है (अवर्तिं हन्ति चक्षुषा)। बैल खेती द्वारा अकालको दूर हटाता है। (मं. १७)

यह वैदिक वचन पढनेसे पाठकोंको पता लग जायगा कि बैल ऐसा उपयोगी है इसलिये कौन उसको अपने देशकी पुष्टिके लिये काटेगा और अकालसे नष्ट होनेके लिये तैयार होगा। यदि बैल अकालको दूर करता है तो उसे सुरक्षित रखना ही आवश्यक है।

१० गायका प्रयोजन।

गाय मनुष्योंके सुखके लिये ही रखनी है यह सुख गायसे मिलनेवाले पदार्थोंसे प्राप्त होता है इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्र देखिये—

महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात्। घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः॥ ऋ. ५।८३।८

"बड़ा बर्तन उठाओ उसमें अमृतकी धाराएं चलती रहें, गायके घीसे द्युलोक और पृथिवी भर दो गौओंसे उत्तम पान प्राप्त हो।"

इस मन्त्रमें गोरक्षाका प्रयोजन कह दिया है। गायसे बड़े बर्तन भरने योग्य दूध मिलता रहे उससे बहुत घी उत्पन्न हो वह घी सबको खानेके लिये विपुल मिले। तथा गौओंका दूध भी उत्तम होनेसे लोग अधिक प्रमाणमें पीते जांय। गौका यह प्रयोजन है। गौओंकी उन्नति करके लोग यह बात सिद्ध करें।

११ मांसभक्षण निषेध।

वेदमें मांसभक्षण निषेध स्पष्ट शब्दोंमें है। यह केवल मांस भक्षणका ही निषेध नहीं है प्रत्युत मांस वर्ग के सब पदार्थोंका निषेध है। मांस मद्य जूआ और व्यभिचार ये चार बातें मांस वर्गकी हैं इन चारोंके सेवनका निषेध वेदमें किया है यह मन्त्र अब देखिये—

यथा मांसं यथा सुरा यथाऽक्षा अधिदेवने।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः॥
अ. ६।७०।१

जैसा मांस जैसा मद्य और जैसा जूआ है उसी प्रकार पुरुषका मन स्त्रीमें (निहन्यते) निःसंदेह मारा जाता है। अर्थात् जिन व्यवहारोंसे मनुष्यका मन गिर जाता है मारा जाता है या पतित होजाता है वैसे चार व्यवहार हैं मांसभक्षण सुरापान जूआ खेलना और व्यभिचार करना। इनसे मनुष्य पतित होता है इस कारण इनको कोई भला मनुष्य न करे। यह वर्गका विषय होनेके कारण इनमेंसे किसी एकका एक निषेध करनेसे सब अन्योंका निषेध स्वयं हो जाता है देखिये एकका निषेध—

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व। ऋग्वेद १०।३४।१३

जब पाठक विचार करें कि जिस समय बुरे आचरणकी एक वर्गमें परिगणना होती है और उस वर्गको ही सम्बन्ध रखने अयोग्य कहा जाता है तथा उस वर्गके प्रत्येक बुरे आचरणसे मनका नाश (मनः निहन्यते) निःसंदेह होगा ऐसी सबको सूचना भी दी जाती है तब

वेदमें इसी प्रकारकी अहिंसा है जो मानते हुए राष्ट्रीय महा युद्धमें आवश्यक वधकी भी उसमें संभावना है। परंतु कोई कहे कि अपने पेटके लिये दूसरोंका वध किया जाय तो ऐसी हिंसा करनेकी आज्ञा वेद नहीं देता है। यह भेद पाठकोंको अवश्य ध्यानमें धारण करना चाहिये।

७ अनुपमेय गौ।

वेदका मत है कि अन्य सब पदार्थोंके लिये उपमा मिल सकती है परंतु गायके लिये कोई उपमा नहीं है इतना गायके उपकार मनुष्य जातीपर हैं इस विषयमें निम्न लिखित मंत्र देखिये—

ब्रह्म सूर्यसम ज्योतिर्द्यौः समुद्रसम सरः।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते॥
यजुर्वेद २३।४८

" ब्रह्म तेजके लिए सूर्यकी उपमा है पुष्कल जलके लिये समुद्रकी उपमा है तथा पृथिवी बहुत बड़ी है तो भी उससे इन्द्र अधिक समर्थ है परन्तु (गोः मात्रा न विद्यते) गौके साथ किसीकी भी तुलना नहीं होती।"

देखिये वेदमें गायका कितना महत्व वर्णन किया है। यद्यपि पृथ्वीके लिये भी गौ शब्द आता है तथापि गाय वाचक ही गौ शब्द इस मंत्रमें है और यहां स्पष्ट शब्दों द्वारा उसकी निरुपमेयता बताई है।

८ गौसे लाभ।

दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय॥ ऋ० १।१६४।२७

" यह अवध्य गौ अश्विनी देवोंके लिये दूध देवे और वह हमारे बड़े सौभाग्यके लिए बहुत बढ़े। इस मंत्रमें (सा अघ्न्या वर्धताम्) यह अवध्य गौ बढ़े ऐसा कहा है यह मंत्र विशेष मनन करने योग्य है। इसका अर्थ ग्रिफिथ करते हैं- and may she prosper to our high advantage अर्थात् हमारे लाभके लिए गौकी वृद्धि हो। जब इस मंत्र द्वारा यह बात सिद्ध हुई कि गौकी वृद्धिसे ही हमारा सौभाग्य बढ़ता है तो गौ काटनेकी संभावना ही कहांसे हो सकती है? गौकी संख्या और गौके गुण इनकी वृद्धि होनेसे मनुष्यका अपरिमित लाभ हो सकता है यह बात वेद मुक्तकंठसे अनेक प्रकारसे कह रहा है। इतना गौका महत्व वैदिककालमें माना जाता था। इसलिए हम कह सकते हैं कि वैदिककालमें गौकी वृद्धि करनेकी ओर ही धार्मिक लोगोंका प्रयत्न था और देखिये-

सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम। अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्ध-मुदकमाचरन्ती। ऋ० १।१६४।४०

' गौ उत्तम घास खाकर (भगवती) भाग्यवान बने और हम उस गौसे (भगवन्तः) भाग्यवान या धनवान हों। हे अवध्य गौ! तू सदा (तृण अद्धि) घास ही खा और (आ-चरन्ती) वापस आते समय (शुद्धं उदकं पिब) शुद्ध जल पान कर। '

गौको क्या खिलाना चाहिये यह इस मन्त्रमें सुन्दर शब्दों द्वारा कहा है। गौ घास ही खावे यदि गौ पालनी हो तो उत्तम घास उसे मिले ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये। उत्तम घास और शुद्ध जल पीनेवाली गौसे जो दूध मिलता है वही मनुष्यके लिये आरोग्यवर्धक हो सकता है। पका अन्न धान्य सड़े पदार्थ तथा मनुष्यकी विष्ठा आदि गौको खिलाकर जो दूध मिलता है वह उत्तम लाभदायक नहीं हो सकता। इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्र अवश्य देखिये—

यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावयः। तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः॥ अथर्व ८।७।२५

जो जो औषधियां सदा अवध्य गौयें खाती हैं और जो भेड़ बकरियां खाती है वह सब औषधियां तेरा सुख बढ़ावें।"

इसका अर्थ ऊपर दिया ही है। इसमें अघ्न्या शब्दका अर्थ whom none may slaughter अर्थात् जिसका कोई वध न करे यह दिया है। यदि गौवाचक अघ्न्या शब्दका यह अर्थ है और उसका वध करना किसीको भी उचित नहीं तो फिर गोमांस भक्षणकी प्रथा आर्योंमें थी यह किस आधारसे यूरोपियन विद्वान मानते हैं?

९ अवध्य बैल।

" अघ्न्या शब्द जैसा गौके लिए प्रयुक्त होता है वैसा ही अघ्न्य शब्द बैलवाचक भी है। इसलिये गौके

(ये तद् विदुः) जो यह बात जानते हैं व (समासते) इकट्ठे होकर विचार करनेके लिये बैठते हैं ॥ १८ ॥ वे (ऋचः पदं) मंत्रोंके पादोंको मात्राओंके प्रमाणसे माप कर (अर्थ वेन) आप मनसे उन्होंने (एजत् विश्व) हिलनेवाला सब विश्व बताया है। वह बहुत आकारवाला तीन पादोंसे युक्त ब्रह्म सबत (विष्ठे) फैला है जिससे सब दिखाई जीवित हैं ॥ १९ ॥ विराट् ही चारों पृथिवी अंतरिक्ष प्रजापति मृत्यु है वही साध्य देवोंका अधिराजा है (तस्य वशे) उसीके आधीन भूत भविष्य वर्तमान सब रहता है वह कृपा करे और मेरे आधीन मेरा भूत भविष्य वर्तमान करे ॥ २१ ॥ शक्तिमान् पूर्व मैंने देखा है जो व्यापक होता हुआ इस शक्तिसे परे है। धीर लोग चिंतन करनेवाली प्रकाशमय शक्तिको पकाते थे व मुख्य कर्तव्य थे ॥ २५ ॥ तीन (केशिनः) किरणोंसे युक्त तेजस्वी पदार्थ हैं ऋतु ओंके अनुसार ये प्रकाशते हैं। इनमेंसे एक वर्षमें बीज डालता है दूसरा जगत्को अपनी शक्तियोंसे चमकाता है परंतु तीसरेका वेग ही अनुभवमें आता है रूप नहीं ॥ २६ ॥ एक ही सत् वस्तुको ज्ञानी लोग विविध नामोंसे वर्णन करते हैं, उसीको इन्द्र मित्र वरुण अग्नि दिव्य, सुपर्ण गरुत्मान यम, मातरिश्वा कहा जाता है ॥ २७ ॥

इन पूर्वापर संबन्धके मन्त्रोंको पाठक देखें और विचारें तो उनको स्पष्ट पता लग जायगा कि यह अध्यात्मविद्याका प्रकरण है और बैल पकानेका यहां कोई सम्बन्ध नहीं है। इस २५ वें मंत्रमें बैल पकानेवाला अर्थ माननेसे इस प्रकरणमें उसके योग्य कोई अर्थ बन ही नहीं सकता है। इस मन्त्रमें शक्तिमान पूर्वका वर्णन है वह प्रकृतिकी अग्नि धूआं है। जो प्रकृतिकी अग्निसे चारों ओर फैलता है और मनुष्योंकि आंखोंमें घुसकर उनको अन्ध बना देता है। वह धूआं ही अविद्या फैलाता है उसका मूल प्रकृतिका ताप नहीं है। इसलिये वह व्यापक भी है और परे तथा परे भी है। जो धीर धीर लोग होते हैं वे इस धूवेंमें भी घुसते हैं परंतु धूवेंसे घबराते नहीं हैं। इस धूवेंके अन्धको नाश करनेके लिये इससे परे रहनेवाली (उक्षाणं पृश्नि) सिंचक तत्वकी शक्तिको अपने अन्दर परिपक्व करते हैं अर्थात् अपनी आत्मिकशक्तिको अपरिपक्व रहने नहीं देते। सिंचक शक्तिका अर्थ जीवन देनेवाली तेजोमय आत्मशक्ति ही है। पृश्निका अर्थ तेजका किरण, प्रकाशशक्ति आदि है उक्षाका अर्थ सिंचन करनेवाला भिगोनेवाला जीवनका बल देनेवाला है। ये अर्थ आत्मशक्तिके ही यहां बता रहे हैं। अपने अन्दर इसको परिपक्व करना ही मनुष्यका प्रथम धर्म है अर्थात् मुख्य कर्तव्य है। सत्ताईसवें मंत्रमें कहा है कि एक ही आत्माके इन्द्रादि अनेक नाम हैं नामोंका भेद होनेसे मूल सत् वस्तुमें कोई भेद नहीं होता है। यही एक आत्मतत्त्व पचीसवें मन्त्रमें पृश्नि उक्षा नामसे वर्णित है। सोम भी इसी आत्माका एक नाम प्रसिद्ध ही है।

छब्बीसवें मन्त्रमें चमत्कार तीन पदार्थ हैं ऐसा कहा है। ये तीन पदार्थ हैं प्रकृति जीवात्मा और परमात्मा येही तीन हैं इनमें प्रकृतिका अनुभव जगत्में आता है जीवात्माका अनुमान हरएक प्राणिमात्रमें होता है परन्तु तीसरे सर्वव्यापक परमात्माका अनुमान तर्कसे होता है क्योंकि उसका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता जैसा दूसरोंका होता है।

इत्यादि वर्णनसे ये मन्त्र खुल जायगे। अब पाठक देख सकते हैं कि क्या इनमें बैल पकानेका सम्बन्ध है? और बैल पकानेवाला अर्थ यहां सकता भी कहां है? इससे पाठकोंके ध्यानमें बात आगई होगी कि जो लोग प्रकरणानुकूल अर्थ नहीं देखते वे उक्षाणं अपचन्त 'पृश्नि बैल' का बैल पकानेकी बात समझते हैं और अर्थका अनर्थ करते हैं।

वेदमें दो सुपर्ण अर्थात् दो पक्षी इस रूपकसे भी जीवात्मा परमात्माका वर्णन है। यह मन्त्र (द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया। ऋ० १।१६४।२० तथा अथर्व ९।९(१४)। २०) इन पूर्वोक्त मन्त्रोंके थोडा पीछे ही है। यह ऋग्वेदमें और अथर्ववेदमें एक ही प्रकरणमें है। यदि पाठक यह अध्यात्मपरक मन्त्र देखेंगे तो उनका निश्चय ही हो जायगा कि यह बैल पकानेवाला मन्त्र वास्तवमें अध्यात्मविषयका मन्त्र है और उसमें बैल पकानेका वास्तविक कोई संबंध नहीं है।

प्रकरणानुकूल मन्त्र देखनेका इतना महत्व है। श्री यास्काचार्यजीने भी इसीलिये निरुक्तके प्रारम्भमें ही कहा है (प्रकरणशः एव निर्वक्तव्याः) मंत्रोंकी व्याख्या प्रकरणके अनुसार ही करनी चाहिये। इससे सिद्ध हुआ कि युरोपीयन लोगोंका अर्थ सर्वथा अशुद्ध है और वह विचार करने

*

योग्य भी नहीं है। यहां हमने बताया कि भ्रम होनेका कारण मन्त्रोंका अर्थ प्रकरणके अनुकूल न करना ही है। कोई भी विद्वान् यदि मोक्षपरक अर्थ इस प्रकरणमें लगा कर बता सकेगा तो फिर और विचार किया जायगा। परन्तु हमारा निश्चय है कि कोई भी विद्वान् इस अध्यात्म प्रकरणमें मांसका अर्थ प्रकरणानुकूल बता ही नहीं सकेगा। पाठक भी अपनी स्वतंत्र बुद्धिसे इस प्रकरणमें इस मन्त्रको रखकर खूब विचार करें। कोई पक्षपात करनेकी यहां आवश्यकता नहीं है क्योंकि हमारा पक्ष इतना स्पष्ट है कि उसको सिद्ध करनेके लिये हमें कोई कठिनता ही नहीं है। एक सत्य परमात्म तत्त्वके इन्द्र अग्नि सोम आदि अनेक नाम होते हैं यह बात उदाहरणके मन्त्रमें कही है इसका स्पष्ट तात्पर्य यही है कि नामोंका भेद होनेपर भी मुख्य वस्तुमें भेद नहीं होता यह उपदेश करनेके पूर्व जो मन्त्र लिखे हैं वे श्रोताओंकी मनकी तैयारी करनेके लिये लिखे गये हैं। एक इस उपदेशका ग्रहण करने योग्य श्रोताओंकी तैयारी कर देनेके मंत्रोंमें बैल पकानेवाला अर्थ किस प्रकार लग सकता है? यह पाठक ही देखें। तात्पर्य भ्रमका कारण प्रकरणकी ओर पूर्ण दुर्लक्ष्य करना ही एक मात्र है।

१२ पकानका तात्पर्य।

इस मन्त्रमें "पच्" धातु है। यह शब्द पाठकोंको भ्रममें डाल सकता है क्योंकि इसका अर्थ "पकाना" है। पकानेका स्पष्ट अर्थ चूल्हेपर हंडी रखकर उसमें पकाना सब जानते हैं परंतु यदि पाठक इसका अधिक विचार करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि यह स्पष्ट अर्थ रहते हुए भी इसका सूक्ष्म अर्थ और ही है देखिये—

तप् " धातु भी तपानेके अर्थमें प्रयोग होता परन्तु "तप" शब्दका अध्यात्मशास्त्रमें कितना व्यापक अर्थ हुआ है यह पाठक जानते हैं। यह "तप" करता है इसका तात्पर्य यह आगपर कोई चीज तपाता है यह नहीं लिया जाता परंतु यह अपनी आत्म उन्नति करनेके लिये विशेष धर्मनियमोंका आचरण करता है यह "तप" शब्दका अर्थ सब लेते हैं। वास्तविक मूल अर्थ "आगपर रखकर सेक देना" इतना ही तप शब्दमें है परंतु वेद *और उपनिषदोंमें इस शब्दका "आत्मोन्नतिके नियम पालन* करना" यह अर्थ रूढ हुआ है। पाठक इस शब्दके अर्थका ध्यान मनमें रखेंगे तो उनको "पच्" धातुके अर्थका भी पता लग जायगा।

जीवात्मा शरीरमें है उसको ब्रह्मचर्य प्राणायामादि युक्तियोंकी अग्निपर तपाकर विशेष शक्तिसे युक्त किया जाता है

अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते ॥ ऋ० ९।८३।१

"*जिसके शरीरमें तपश्चरण नहीं हुआ* वह उस आत्मिक सुखको प्राप्त नहीं कर सकता।" यह वेदका उपदेश तपश्चरणके महत्त्वका वर्णन कर रहा है। इस मन्त्रके शब्दोंका केवल शब्दार्थ ही देखा जाय तो ऐसा है— 'जिसका शरीर तपा नहीं वह उस सुखको पा नहीं सकता।' यह शब्दार्थ ही लेकर कई लोग शरीरको सूर्य प्रकाशमें तपाते हैं और कई दूसरे धातुकी मुद्राएं तपाकर शरीरपर धारण करते हैं। परन्तु यह मन्त्रका आशय नहीं है। मन्त्रका "तप" शब्द ब्रह्मचर्यादि युक्तियोंसे आत्म-रक्षाका भाव बताता है इससे भिन्न अन्य अर्थ अशुद्ध हैं। इसी प्रकार यहां "पच्" धातुका अर्थ केवल चूल्हेपर हंडी रखकर पकाना नहीं है परंतु यहां आध्यात्मिक अग्निसे परिपक्व करना है।

शरीररूपी हंडीमें जीवात्मारूपी स्वादु रस (सोम-रस) रखा है यह हंडी सत्त्व रज तम रूपी जगत्के पत्थरों पर रखी है और नीचेसे परमात्माग्निकी उष्णता दी गई है। इस प्रकार यहां बहुत मीठा पाक हो रहा है। यह आध्यात्मिक पकाना यहां है। पूर्वोक्त मंत्रमें पाठक यह अर्थ देखें—

मैंने धूआं देखा और उससे अग्निका अनुमान किया *जिसपर वीर सोमको पका रहे थे वे पहिले कर्तव्य थे।*

धूवेंसे जैसा अग्निका अनुमान होता है उसी प्रकार जगत्के कार्य देखकर परमात्माग्निका अनुमान किया जाता है। उसी अग्निपर आत्माको परिपक्व करनेका अनुष्ठान जो लोग करते हैं वे ही मुख्य कर्तव्य है। पाठक इस स्थान पर उक्त अलंकार देखें और वेदका आध्यात्मिक उपदेश ग्रहण करें। यहां यह आश्चर्य प्रतीत होता है कि इतना उत्तम अर्थ होते हुए उसको यूरोपीयन लोगोंने कितना बिगाड़ा है! इससे अधिक अर्थका अनर्थ और कितना हो सकता है! अस्तु। अब "पच्" धातुका प्रयोग देखिये—

चाहते हैं। वह तू धन और सुवर्णके साथ हमें पवित्र कर। हम जगतमें दीर्घायु हों।

इस मंत्रमें वृषभ शब्द सोमके अर्थमें प्रयुक्त है यहां भी इसका अर्थ बलवर्धक ही है। निम्न लिखित मंत्रमें वृषभ शब्दका अर्थ तरुण बलवान पति है। देखिये-

उप बर्बृहि वृषभाय बाहुं
मन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्। ऋ १ ।१। ११

" हे सहब! तू अपना (बाहुं) हाथ किसी दूसरे (वृषभाय) बलवान तरुण पतिके लिये (उप बर्बृहि) सिरहानेके लिये आगे कर। हे (सुभगे) स्त्री! मुझसे भिन्न किसी अन्य पतिकी इच्छा कर।" इसका अर्थ म ग्रिफिथ ऐसा करते हैं- Not me O fair one seek another husband and make thine arm a pillow for thy consort. इस मंत्रमें वृषभ " का अर्थ पति ही ये लोग भी करते हैं यहां यदि ये लोग बैल अर्थ करेंगे तो प्राचीन मानव स्त्रियां बैलके साथ शादी करती थीं " यह अनुमान किया जा सकेगा परंतु यह इन्होंने किया नहीं है यह हमारे ऊपर इनकी बड़ी कृपा है। दोनों मंत्रभाग यहां देखिये

(१) उक्षाणं मयचक्रन्‌। (ऋ ११।६४।१३)= बैल पकाया (अर्थात्‌ बलिष्ठ बनानेका अनुष्ठान किया)।

(२) सुभगे! वृषभाय बाहुं उपबर्बृहि। ऋ १ ।१। ११ = हे सुन्दर स्त्री! तू अपने हाथका बैलके लिये सिराना कर। (हे स्त्री! तू बलिमान तरुण पुरुषके लिये अपने हाथका सिराना कर।)

ये दो मंत्र देखनेसे पाठकोंको पता लग सकता है कि बैलवाचक वैदिक शब्दोंका केवल बैल ही अर्थ किया जाय तो कितना अर्थका अनर्थ हो सकता है। इस विवाह प्रकरणमें पतिको ही यह बैलवाचक वृषभ शब्द लगाया है। यदि प्रकरणानुकूल अर्थ न देखा जाय तो अनर्थ होनेका कोई ठिकाना नहीं रहेगा। प्रकरणानुकूल शब्दार्थ करनेकी आवश्यकता सिद्ध करनेके लिये इससे अधिक प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार वृषभ शब्दका अर्थ देख लेनेके पश्चात्‌ अब हम " उक्षा शब्दका अर्थ देखते हैं

१५ उक्षा शब्दका अर्थ।

संस्कृत भाषामें उक्षा शब्दका भी बैल अर्थ है परंतु वेदमें यह शब्द अनेक विलक्षण अर्थोंमें आता है उनमेंसे कुछ अर्थ उदाहरणार्थ देखिये—

अचक्रदुक्षा पृश्निरप्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः ॥ ऋ ९।८३।३

(अग्रिया पृश्निः उक्षा) पहिला तेजस्वी बैल (उक्षा अचक्रदत्‌) उक्षाओंको चमकाता रहा। यह (उक्षा वाजयुः भुवनानि बिभर्ति) बैल बल देता हुआ सब भुवनोंको धारण करता है।

इसमें " उक्षा (बैल) शब्द सूर्य तथा परमात्माका वाचक है तथा और देखिये—

नैतावदेना परो अन्यदस्ति
उक्षास द्यावापृथिवी बिभर्ति ॥ ऋ १ ।१।१।८

(एना एतावत्‌ न) यह इतना ही नहीं है (अन्यत्‌ परः अस्ति) दूसरा परे बहुत है। (उक्षासः द्यावा पृथिवी बिभर्ति) बैल द्युलोक और पृथ्वीका धारण करता है।

इस मन्त्रका भी उक्षा (बैल)" शब्द सूर्य तथा परमात्माका वाचक है। मन्त्रके प्रारम्भमें जो दिखाई देनेवाला इतना ही सिर्फ नहीं है परन्तु उससे परे अनन्त बहुत ही भिन्न है " ऐसा कहा है यह विशेष विचार करने योग्य है। इन मन्त्रोंको देखनेसे कई अल्पज्ञ मनुष्य कहते हैं कि वैदिक सिद्धांतके अनुसार बैलके सींगपर सब जगत्‌ ठहरा है " परन्तु वह वे इसलिये कहते हैं कि उक्षा शब्दके सूर्य तथा परमात्मा ये अर्थ होते हैं यह बात उनको मालूम नहीं है। अतः उनके अज्ञानका ही यह प्रमाण है। ऊपरके मन्त्रमें उक्षाने जगतका प्रकाश किया यह जो कथन है वह निःसंदेह सूर्यका सूचक है जो यह नहीं समझेंगे उनके लिये अनर्थ करनेकी खुली छुट्टी है। और देखिये—

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः।
ऋ १।१ ५।१

" जो ये पांच उक्षा (बैल) महान्‌ द्युलोकके मध्यमें ठहरे हैं।" यहां भी उक्षा शब्दका अर्थ बैल नहीं है, क्योंकि कोई बैल द्युलोकके मध्यमें ठहर नहीं सकता। यहां उक्षा शब्द नक्षत्रवाचक है जो पांच तारे एक स्थानपर आकाशमें दिखाई देते हैं उनका वाचक यह शब्द यहां है। तथा

इससे ऐसा अनुमान हो सकता है कि वैदिक समयमें बैल आकाशमें उड़ते थे? यदि नहीं तो यहां उक्षा शब्दका अर्थ बैल नहीं है परन्तु कोई ऐसा पदार्थ है जोकि आकाशमें दिखाई देता है। उक्षा शब्दका अर्थ वायु तथा प्राण भी है देखिये-

इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसोऽन्तर्नदी
ते पतयन्त्युक्षणो महि व्राधन्त उक्षणः ।
ऋ० १।१३५।९

हे वायो! जो तेरे (उक्षणः) बैल अर्थात् प्राण तथा वायुके वेग (अन्तः नदी) तेरे प्रवाहके अन्दर (सुपतयन्ति) गिरते हैं या बहते हैं और ये (उक्षणः) बैल अर्थात् प्राण (महि व्राधन्ता) बड़े शक्तिशाली होते हैं।

इस मंत्रका उक्षा शब्द बैलवाचक नहीं है परन्तु वायुके प्रवाह तथा प्राणके प्रवाहका वाचक है। म० ग्रिफिथ भी यहां The Bulls=Blasts of wind अर्थात् यहांका बैलवाचक उक्षा शब्द वायुके वेगोंका वाचक है ऐसा कहते हैं।

१९ एक वृषभके साथ अनेक वृषभ।

आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां
पुरुहूत इन्द्रः ॥ १ ॥ ये ते वृषणो वृषभास
इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः । तां आ तिष्ठ
तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र
सोमे ॥ २ ॥ ऋ० १।१७७।१-२

(जनानां वृषभः) लोगोंका बैल जैसा बलवान (कृष्टीनां-राजा) प्रजाओंका राजा इन्द्र है ॥ १ ॥ हे इन्द्र! जो तेरे (वृषणः वृषभासः) बलवान अनेक वृषभ (ब्रह्मयुजः) ज्ञानसे युक्त हैं उनके साथ यहां (आ याहि) आओ। ॥ २ ॥

इन मंत्रोंमें एक वृषभ (इन्द्र) के साथ अनेक वृषभ (वृषभासः= इन्द्राः) रहनेका वर्णन है। जो भाव अनेक ऋषियोंके साथ एक ऋषभ है तथा जो भाव अनेक अग्नियोंके साथ रहनेवाले एक अग्निका है वही भाव एक वृषभ या इन्द्रके साथ रहनेवाले अनेक वृषभ या इन्द्रोंमें निर्दिष्ट है। एक परमात्माके साथ अनेक जीवात्माओंका होना इस प्रकार वेदमें वर्णन किया है और इसका भाव पूर्वोक्त लेखमें बताई रीतिके अनुसार हो रहा है।

एक परमात्माके नाम इन्द्र अग्नि या सोम वृषभ आदि हैं और ये ही नाम अनेक वचनोंमें आनेसे तो जीवात्माके वाचक होते हैं। इन नामोंके साथ ही निम्नलिखित नाम भी देखने योग्य हैं—

“अज” शब्द बकरेका वाचक होता हुआ भी “अ+ज” अर्थात् अ-जन्मा ईश्वरका वाचक है और साथ साथ अ-जन्मा जीवात्मा का भी वाचक है। अज शरीरमें रहनेवाले जीवात्माका जगत्में व्यापनेवाले परमात्माका तथा बकरेका वाचक है।

“वृषभ” शब्द बैलका वाचक होता हुआ भी यौगिक अर्थके बलसे शक्तिशाली होनेका भाव बतानेके कारण परमात्माका तथा शरीरमें जीवात्माका वाचक है। पीछे इन्द्र अर्थमें वाचक वृषभ शब्द अनेक बार दिया है और इन्द्र शब्द जीवात्मा परमात्माके लिये प्रसिद्ध है। इसी प्रकार ऋषभ और उक्षा शब्दके भी दोनों अर्थ हैं।

“अश्व” शब्द घोड़ेका वाचक होता हुआ भी पूर्वोक्त प्रकार जीवात्मा परमात्माका वाचक है। परमात्माका वाचक होते हुए इसका अर्थ (अश्नुते व्याप्नोति) सर्वत्र व्यापक है और जीवात्मा वाचक होनेके प्रसंगमें (अश्नाति) फल भोग करता है, या फल खाता है यह अर्थ होता है। अर्थात् एक ही अश्व शब्दका अर्थ जीवात्मा और परमात्मा होता है।

ये सब शब्द इन अर्थोंके साथ व्यवहार करनेसे किसी मंत्रमें “अश्व” शब्द आया किसीमें “अज” आयया अथवा किसीमें “वृषभ” शब्द आया या इसी प्रकारका कोई अन्य शब्द आया तो आगे पीछेका विचार न करते हुए एकदम मांसभक्षणपरक ही अर्थ निकालनेकी आवश्यकता नहीं है यह बात इस विचारसे पाठकोंके सम्मुख हो जायगी।

मनुष्यमात्र या प्राणिमात्रके अन्दर जो जीवात्मा है वह जन्ममरण रहित होनेसे “अ-ज” अर्थात् अजन्मा है वह युवा शरीरमें रहता हुआ वीर्य सिंचन द्वारा प्रजाकी उत्पत्ति करता है इसलिये इसको “वृषा वृषभ उक्षा” आदि नाम होते हैं वह कर्मफल भोग करता है इसलिये इसको “अश्व” कहते हैं। वह अपने इंद्रिय गणोंको अपने वशमें रख सकता है इसलिये इसीको “वशा” कहते हैं। अर्थात् ये नाम इसकी विशेष शक्तिकी अवस्था बताते हैं। इस प्रकारका जीवात्मा अपने आपकी शक्तिसर्वस्वका परम

भक्तिके साथ परमात्मार्पण करता है वह इसका महाभाव है इतना विवरण मननपूर्वक देखनेके पश्चात् निम्न मंत्र देखिये—

> यस्य वशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे। यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मसंमितः स नो मुञ्चत्वंहसः॥ अथर्व ४।२४।४

“ जिसके लिये वशा ऋषभ उक्षा आदि हैं जिस तेजस्वीके लिये यज्ञ किये जाते हैं (ब्रह्मसंमितः शुक्र) ज्ञानसे पूर्ण पवित्र सोम भी जिसके लिये है वह (नः अंहसः मुञ्चतु) हम सबको पापसे छुडावे।

ऐसे मन्त्रोंमें मांसपक्षी लोग समझते हैं कि (वशा) गौवें (ऋषभ) बैल (उक्षा) बैल आदि प्राणि यज्ञमें बली चढाये जाते थे और उनका मांस यज्ञशेष मांस खाया जाता था। परन्तु इतनी कल्पना करनेके लिये इस मंत्रमें कोई प्रमाण नहीं है। परमात्मा देवके लिये वशा ऋषभ उक्षा आदि हैं वे उत्पन्न किये हैं इतना कहनेमात्रसे उनकी हिंसा करके आहुति डालनेका विधान कहां और कैसे होता है? यदि स्थूल रूपमें ही यहां अभीष्ट लिया जाय और इससे पूर्व लिखा आध्यात्मिक अर्थ न लिया जाय तो भी वशा उनसे गायका दुग्ध लिया जा सकता है। इस विषयमें पहिले प्रमाण बताये जा चुके हैं। वृषभादि अन्य पशुओंकी आवश्यकता यज्ञमें अन्य रीतिसे भी होती है। यज्ञमें गाडी खींचने बोझोंको ले जाने और ले आने आदिके लिये बैल और घोडोंकी आवश्यकता होती ही है इसलिये यज्ञमें जहां जहां पशुओंका उल्लेख आजाय वहां वहां इसके लिये ही है ऐसा मानना अनुचित ही होगा।

१७ आलंकारिक गौ और बैल।

वेदमें आलंकारिक भाषामें भी बैलोंका वर्णन आता है वह भी यहां देखना आवश्यक है। इस विषयको संक्षेपसे बतानेके लिये यहां कुछ मंत्र उद्धृत करते हैं—

> सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत्॥ ऋ ७।५५।७
>
> सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदाः। अथर्व १३।१।१२

हजार सींगवाला वृषभ समुद्रसे ऊपर आया। हजार सींगवाला वृषभ जिससे वेद बने हैं। इन मंत्रोंमें निर्दिष्ट वृषभ स्पष्ट पशुवाचक नहीं है यथा—

> यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः॥ ऋ १।१५४।६

जहां बहुत सींगवाली गौवें हैं। इस मन्त्रमें भी बहुत सींगवाली गौवोंका वर्णन किया है जिस जातिके बैल ऊपरवाले मन्त्रमें हैं उसी जातिकी गौवें इस मन्त्रमें वर्णन की हैं। निःसन्देह ये गौवें और ये बैल आलंकारिक हैं। इसे यहां इन मन्त्रोंका विशेष अर्थ बतानेकी आवश्यकता नहीं है केवल इतना ही बताना है कि बैलवाचक शब्द वेदमें केवल बैलवाचक नहीं है। यह बात वास्तविक रीतिसे स्पष्ट है परन्तु मांसपक्षके लोग हिंसात्मक अर्थका समर्थन करते हैं इसलिये इसपर विचारके संबंधमें इतना लिखना आवश्यक होता है। अब इस विषयमें एक और मन्त्र देखिये—

> वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्र पृष्ठोऽन्तरिक्षम्। घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति॥ अथर्व १३।१।३३

“ (मतीनां वृषभः) बुद्धियोंका वृषभ यह (विराजः वत्सः) विराट्का वत्स है। यह (शुक्र पृष्ठः) तेजस्वी पृष्ठवाला अन्तरिक्षमें चढा है। घीसे (अर्कं वत्सं) पूजनीय वत्सकी (अभ्यर्चन्ति) पूजा करते हैं (ब्रह्म सन्तं) स्वयं ब्रह्म होते हुए (ब्रह्मणा वर्धयन्ति) ज्ञानसे बढाते हैं। ” यह मन्त्र वृषभ शब्दका आध्यात्मिक महत्व अच्छी प्रकार सूचित करता है।

इस मन्त्रमें जिस वृषभका वर्णन है वह विराट् (विराजः वत्सः) पुत्र परमात्माका बच्चा है। विराट् पुरुष वा परमात्माका बच्चा जीवात्मा है इस विषयमें किसीको कोई शंका नहीं हो सकती। तथा यह (मतीनां वृषभः) बुद्धियोंकी वर्षा करनेवाला है वृष्टि देनेवाला है यहां वृषभ शब्दका अर्थ वृष्टि करनेवाला है। आत्मा और परमात्मा बुद्धियोंको देते हैं या बुद्धियोंको प्रेरित करते हैं यह बात गायत्री मन्त्रमें (धियो यो नः प्रचोदयात्) जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करता है इस मंत्रभागसे स्पष्ट हो गई है। जीवात्मा परमात्माका पुत्र होनेसे परमात्माके गुणधर्म अंशरूपसे जीवात्मामें हैं। परमात्मा स्वयं ब्रह्म है इसी प्रकार उसका पुत्र जीवात्मा भी उसके ब्रह्मगुणके कारण पूज्य है यही बात स्पष्ट करनेके उद्देश्यसे (ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति) जीवात्मा स्वयं ब्रह्म होते हुए भी ज्ञानी ब्रह्मको ज्ञानमार्गसे उसको बढाते हैं। अर्थात् उसकी शक्तिका विकास करते हैं।

यदि यह मन्त्र विशेष रीतिसे देखा जाय तो पाठकोंका इस विषयमें निश्चय होगा कि यहांका वृषभ शब्द जीवात्मा का वाचक ही है क्योंकि इसकी सूचक तीन बातें इसमें लिखी हैं— (१) यह (विराट्) पुरुष परमात्माका पुत्र है, (२) यह बुद्धियोंका प्रेरक है और (३) इसकी उन्नति ब्रह्मकी उपासनासे होती है। ये तीनों बातें स्पष्ट हैं और ये तीनों बातें यहांके वृषभ शब्दका अर्थ जीवात्मा है यह स्पष्ट बता रही हैं। यह हृदयरूपी अन्तरिक्षमें रहता है इसलिये इसको अन्तरिक्षमें रहा है ऐसा इस मन्त्रमें कहा है। वृषभ शब्द इस प्रकार यहां जीवात्मवाचक होनेके पश्चात् यदि पाठक यही बात हमारे पूर्व स्थानमें बताये यज्ञ विषयक लेखके साथ तुलना करके देखेंगे तो निःसन्देह उनके ध्यानमें जीवात्माओंका परमात्माके लिये समर्पित होना अनेक देवोंका एक देवके लिये समर्पित होना ही यज्ञका मुख्य तात्पर्य है यह हमने पूर्वस्थानमें बताई बात ही स्पष्टतापूर्वक आ जायगी। जो बात सत्य होती है वह अनेक प्रकारसे सर्व तुल जाती है इसमें कोई संदेह नहीं है। इसी विषयमें निम्नलिखित मन्त्र देखिये—

> अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम्। अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः॥ अथर्व १९।४२।४

(अंहोमुचं) पापसे छुडानेवाले (अध्वराणां प्रथमं विराजन्तं) यज्ञोंमें प्रथम स्थानमें विराजमान (यज्ञियानां वृषभ) यज्ञियोंमें मुख्य (अपां न पातं) जीवन जलको न गिरानेवालेकी (धियः हुवे) बुद्धिकी प्राप्तिके लिये हम प्रार्थना करते हैं। (ते इंद्रियेण) तेरा इस शक्तिके द्वारा (इंद्रियं ओजः) इन्द्रकी दर्शन स्पर्शन आदि कर्म करनेकी शक्ति हमें प्राप्त हो।

यह मन्त्र भी पूर्वोक्त बात ही स्पष्ट कर देता है और वृषभ शब्दका जीवात्म-परमात्म-वाचक होना बताता है।

१८ गौमाताको खा जाना।

यहाँ माताको खाजाना और गौमाताको भी खाजाना लिखा है इस विषयमें अब थोडासा लिखना आवश्यक है। इस सम्बन्धमें निम्नलिखित मन्त्र यहां विचार करने योग्य है—

> प्र सूनव ऋभूणां बृहन्नवन्त वृजना।
> क्षामा ये विश्वधायसोऽश्नन्धेनुं न मातरम्॥
> ऋ १०।१७६।१

(सूनवः) पुत्र (ऋभूणां वृजिना) ऋभुओंके पराक्रम बडे वर्णन करते हैं (ये विश्वधायसः) जो सबका धारण करनेवाले हैं वे (क्षामा धेनुं मातरं न अश्नन्) भूमि, गौको माताके समान ही खा जाते हैं भोग करते हैं।

यहां माता, गौ और भूमिको खा जानेका वर्णन है। पाठक पहिले देखें कि माताको किस प्रकार लडके खाते हैं पाठक समझ ही गये होंगे कि लडके माताका दूध पीते हैं यही माताको खा जाना है। इस ढंगसे हरएक मनुष्य अपनी माताको तथा अपनी धाईको खाजाता है तथापि मातृवधका दोषी नहीं होता है। अर्थात् वेदको गौमाताको खाजाना भी ऐसा मंजूर है कि जिसमें गोवध न हो गौका हवन भी ऐसा स्वीकार है कि जिसमें गौकी हिंसा न हो। जिस प्रकार लडका माताका दूध पीता है उसी प्रकार गौमाताका भी दूध पीये। भूमिका दूध भी धान्य और फल है वह खावे। तीनों माताओंको खाजानेका यही वैदिक विधि है इसमें माताकी हिंसा नहीं होती परन्तु माताका अमृत रस ही पीया जाता है। पाठक सोचें तो सही कि यह कितनी अद्भुत कल्पना है। वेद कहता है कि—

> इह पुष्टिरिह रसः॥ अथर्व ३।२८।४

यहां माताके स्तनोंमें भूमि माता गौमाता और अन्यी माताओंमें पुष्टि देनेवाला अमृत रस है। वह धान्य फल दूध रूपसे हमें प्राप्त होता है इसलिये उसको लेना चाहिये। गौवें अनेक हैं—

> पृथिवी धेनुः॥ २॥ अंतरिक्षं धेनुः॥ ४॥
> द्यौर्धेनुः॥ ६॥ दिशो धेनवः॥ ८॥
> अथर्व ४।३९

पृथ्वी अन्तरिक्ष द्यौ और दिशा ये सब गायें हैं। इनके जो विविध रस हैं वे खाने ही चाहिये और इस प्रकार माताका भक्षण करना चाहिये। पृथ्वीका रस अन्न अन्तरिक्षका रस जल द्युलोकका रस प्रकाश इस प्रकार इन धेनुओंके रस हैं, इनके खानेसे ही मनुष्य आरोग्य संपन्न होकर जीवित रहता है। इसलिये कहा है—

१९ एक साधारण नियम ।

> पुष्टिं पशूनां परिगृभ्णाई चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् । पयः पशूनां रसं ओषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नियच्छात् ॥ अथर्व १९।३१।५
>
> पयो धेनूनां रस ओषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ । अथर्व ४।२७।३

(अहं पशूनां पुष्टिं परिगृभ्णामि) मैं द्विपाद चतुष्पाद पशुओंसे पुष्टि लेता हूं और धान्य भी लेता हूं । (पशूनां पयः) पशुओंसे दूध लेता हूं, (ओषधीनां रसः) औषधियोंसे रस लेता हूं यह (सविता मे नियच्छत्) सविता देवने मुझ दिया है । (धेनूनां पयः) गौओंसे दूध (ओषधीनां रसः) औषधियोंसे रस (अर्वतां जवं) घोडोंसे वेग कवि लोग प्राप्त करते हैं ।

इसमें सर्व साधारण नियम बताया है कि जहां पशु लेनेका वेदमें कथन हो वहां उस पशुका दूध (पशूनां पयः) लिया जावे वहां औषधि लेनेका वेदमें कथन हो वहां (ओषधीनां रसः) औषधियोंका रस लिया जावे । वेदमें सोम शब्दसे सोमवल्लीका रस लेना चाहिये और गौ आदि शब्दोंसे उसका दूध लेना चाहिये । यह वेदकी संज्ञा वेदने ही इन मंत्रों द्वारा स्पष्ट की है इतना स्पष्ट कर देने पर भी जब कोई भी व्यक्ति शब्द देखकर उसके मांसकी कल्पना करे तो उसमें वेदका दोष क्या हो सकता है ? पाठक ही विचार करें किसीको संदेह न हो इसलिये वेदने अर्थ अपना संकेत स्पष्ट शब्दोंमें बताया है । पाठक इसको देखें और विचारें ।

इसमें विवरणसे पाठकोंका निश्चय हो जायगा कि वेदके जिन मंत्रोंके आधारपरसे वेदमें गोमांस भक्षणकी आज्ञा है अथवा जिन प्रमाणोंसे वैदिक समयमें गोमांस भक्षणकी प्रथा थी ऐसा मांसभक्षी लोग मानते आये हैं उन प्रमाणोंसे उनका पक्ष सिद्ध नहीं होता; प्रत्युत निर्मांस पक्ष ही पुष्ट होता है । अतः कोई भी पाठक गोमांस भक्षणके लिए वर्णमें भयमें शंका भी न करें यह तो सर्वथा वेदविरुद्ध ही बात है । जब गोमेधके विषयमें लोग शंका करते हैं इसलिये उसका विचार करते हैं—

२० वेदका संकेत ।

वेदमें पशुओंके नाम आते हैं इसलिये साधारण लोग कि जो वेदकी सर्वांग शैलीसे अनभिज्ञ होते हैं वे समझते हैं कि वहां उस पशुका मांस ही लेना चाहिये परंतु यह उनका भ्रम है क्यों कि इस शंकाका समाधान वेदने ही स्वयं किया है—

> पुष्टिं पशूनां परिगृभ्णाई चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम । पयः पशूनां रस ओषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥ अथर्व १९।३१।५

मैं (पशूनां पुष्टिं) पशुओंकी पुष्टि लेता हूं द्विपाद और चतुष्पादोंसे भी पुष्टि लेता हूं और धान्य भी लेता हूं । पशुओंसे दूध औषधियोंसे रस बृहस्पति सविता देवने मुझे दिया है । ”

यह मंत्र वेदका संकेत स्पष्ट करता है । पशु शब्द आनेसे पशु शरीरके किस पदार्थका ग्रहण करना चाहिये तथा औषधि शब्द आनेसे औषधिके कौनसे पदार्थका ग्रहण करना चाहिये यही विचारका प्रश्न यहां है । पशुके शरीरमें रक्त मांस हड्डी चर्बी दूध आदि बहुतसे पदार्थ होते हैं इनमेंसे किस पदार्थका ग्रहण करना चाहिये ? तथा औषधिमें फूल पत्ते त्वचा जड रस आदि बहुतसे पदार्थ होते हैं इनमेंसे कौनसे पदार्थका स्वीकार करना योग्य है, इस शंकाका उत्तर इस मंत्रने स्पष्ट शब्दोंद्वारा दिया है । यह मंत्र कहता है कि जहां वेदमें पशुवाचक शब्द आता हो वहां (पशूनां पयः) पशुओंका दूध ही लेना चाहिये तथा जहां औषधि वनस्पतिका नाम आता हो वहां (ओषधीनां रसः) औषधियोंका रस लेना चाहिये । यह वेदका संकेत यदि लोग ध्यानमें धारण करेंगे तो उनको भ्रम नहीं हो सकता । वेदमें कुछ उचित प्रमाण होते हैं यह बात इससे पूर्व बतायी गई है इस पद्धतिसे पशुसे उत्पन्न होनेवाले पदार्थोंके लिये पशुके ही नामका प्रयोग होता है । पशु शब्द श्रुतिमें प्रयुक्त हुआ हो या लौकिकमें प्रयुक्त हुआ हो दोनों स्थानमें पशुका दूध ही लेना चाहिये । अर्थात् किसी स्थानमें श्रुतिमें “ अज शब्दका प्रयोग वेदमें आया हो तो वहां बकरेका बोध नहीं लेना चाहिये प्रत्युत बकरीके दूधका आशय लेना चाहिये । यह वेदकी परिभाषा या संकेत है । गौ वृषभ आदि शब्दोंसे भी यही तात्पर्य है । उक्त मंत्रमें “ पशूनां पयः ” अर्थात् पशुओंका दूध ये शब्द प्रयोग बताते हैं कि किसी भी पशुका नाम आया हो उस जातिके जीवपशुका दूध घी आदि वेदमें अभीष्ट है, न कि उसका

मांस। यह वेदका संकेत हरएकको अवश्य ध्यानमें धरना चाहिये अन्यथा अर्थका अनर्थ होगा।

जहां जहां इस वैदिक संकेत की ओर पाठकोंका दुर्लक्ष्य हुआ है वहां वहां अर्थका अनर्थ हुआ है। गोमांस भक्षण आदि अर्थकी अथवा अनर्थकी उत्पत्ति इस प्रकार इस संकेतके अज्ञानमें है, यह बात यहां ध्यानमें धारण करनी चाहिये। इसी दोषसे अनर्थ यहाँ कहा है—

आहरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं रसम्॥
अथर्व॰ २।२६।५

संसिंचामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम्॥
अथर्व २।२६।४

इह पुष्टिरिह रसः॥ अथर्व ३।२८।४

मैं गौओंसे दूध लेता हूं तथा भूमीसे धान्य और औषधियोंसे रस लेता हूं॥ मैं गौओंके दूधसे सिंचन करता हूं तथा घीसे बलवर्धक रस लेता हूं। यहां गौके अंदर पुष्टि है और यहां गौके अंदर रस है॥

यहां भी गौसे दूध भूमिसे धान्य और औषधीसे रस लेनेकी कल्पना स्पष्ट है। जो पूर्व स्थलमें दिये हुए संकेत मंत्रमें बताया है वही इस मंत्रमें अन्य शब्दोंसे व्यक्त हुआ है। इसलिये वेदका यह आशय ध्यानमें धरकर ही मंत्रोंका अर्थ लगाना चाहिये। यह अर्थ छोडकर जो गौ आदि पशुओंके अंगोंका हवन करते हैं उनको वेदने "मूर्ख" कहा है देखिये—

२१ मूढ याजक।

मुग्धा देवा उत शुनायजन्तोत
गोरंगैः पुरुधायजन्त। अथर्व ७।५।५

यह मंत्र विशेष ध्यानसे देखने योग्य है। इसमें प्रारंभमें ही "मुग्धा देवाः" शब्द हैं, यहां "मुग्ध" शब्दका अर्थ (Perplexed, foolish ignorant silly stupid, simple erring, mistaken) घबराया हुआ मूर्ख अनाडी अज्ञान बुद्धिहीन भोला बहका हुआ अपराध वा अशुद्ध कार्य करनेवाला। ये मुग्ध शब्दके अर्थ यहां बता रहे हैं कि यहांका यज्ञ करनेवाले अनाडी ही हैं। अब इस मंत्रका अर्थ देखिये—

"(मुग्धाः देवाः) मूढ याजक ही (शुना अयजन्त) कुत्तेके अवयवोंसे यज्ञ करते हैं (उत) तथा (गोः अंगैः) गौके अवयवोंसे भी (पुरुधा अयजन्त) बहुत प्रकारसे यज्ञ करते हैं।

यहांका देव शब्द याजकोंका वाचक है। जो मूढ अनाडी अपराध करनेवाले याजक होते हैं वेही कुत्तेके मांससे अथवा गौके मांससे हवन करते हैं किंवा कुत्तेसे लेकर गौतकके विविध पशुओंके मांसोंसे मूढ ही हवन करते हैं। परंतु जो ज्ञानी होते हैं वे कदापि ऐसा कुकर्म कर नहीं सकते। वे तो गौके दूधका तथा उसके घीका ही हवन करते हैं। यहां मूढ याजक और ज्ञानी याजकका भेद वेदने ही स्पष्ट किया है। ज्ञानी याजक वे हैं कि जो पशुशब्दसे दूधका ग्रहण करते हैं और मूढ याजक वे हैं कि जो वेदका उक्त संकेत न समझनेके कारण भ्रांत होकर पशुमांसका हवन करते हैं। पाठक ही विचार करें कि यहां कौनसा पक्ष वैदिक धर्मके अनुकूल सिद्ध हुआ है और किसका खंडन वेदने किया है। समांस यज्ञका खंडन और निर्मांस यज्ञका मंडन इस प्रकार वेदने स्पष्ट किया है। इतना होनेपर भी जो लोग समांस यज्ञको वेदानुकूल समझते हैं उनको क्या कहा जाय यह समझमें ही नहीं आता। वास्तवमें इस मंत्रने समांस यज्ञ करनेवालोंको "मूढ याजक" कहकर समांस यज्ञका प्रबल निषेध किया है और हमारे विचारमें इससे अधिक प्रबल निषेध करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है।

गायका नाम "अ-घ्न्या" (अवध्य) है, यज्ञका नाम "अध्वर" (अहिंसामय कर्म) है और इस मंत्रमें समांस याजकोंको "मुग्ध देव" (मूढ मतके प्रमादी याजक) कहा है। ये सब प्रमाण अहिंसा पूर्ण कर्म करनेके वैदिक धर्मके महासिद्धांतकी सिद्धि ही कर रहे हैं। पाठक इसका खूब विचार करें।

२२ गोतम।

ऋषियोंके नामोंमें "गोतम अथवा गौतम" एक सुप्रसिद्ध नाम है। इसका अर्थ "जिसके पास बहुत गौवें हैं ऐसा" होता है। जिस प्रकार "रथतम या रथितम" शब्द बहुत रथ पास रखनेवालेका वाचक है, उसी प्रकार गोतम शब्द बहुत गौएं पास रखनेवालेका वाचक है। ऋषिनामोंके अन्दर यह नाम आता है और वेदमन्त्रोंमें भी इसका कई बार प्रयोग हुआ है यह शब्द सिद्ध करता है कि गौवें अपने पास अधिक होना एक विशेष प्रतिष्ठाका लक्षण

इस मन्त्रमें स्पष्ट शब्दोंसे बताया है कि याजक लोग अनेक गौओंके दूधसे उत्तम सोमके चांदीके बर्तन भरकर रखते हैं और वीर पुरुषोंके श्रमपरिहारके लिये उनको पीनेके लिये देते हैं। वीर पुरुष उस दूधको पीते हैं और अपना बल बढाते हैं। इस मन्त्रमें (गोभिः अर्क कलशं) गौओंके द्वारा परिपूर्ण कलश " ये शब्द हैं। यहां हरएक अब कर सैवाले युरोपियन और भारतीय लेखकोंने गौ ' शब्दका अर्थ गौका दूध ही माना है किसीने भी गोमांस माना नहीं है। यहीं तो केवल गो शब्द देखनेसे वे लोग गोमांसकी भी कल्पना कर सकते हैं अर्थात् ऐसे स्थानोंमें आनेवाला केवल गो शब्द गौके दूधका वाचक है इसमें किसीको भी संदेह नहीं है। यदि मांस पक्षवाले लोग यही विचारपद्धति अन्यत्र भी लगा देंगे और सर्वत्र पूर्वापर सम्बन्ध युक्त अर्थ वाचक प्रकरणमें गो शब्दसे गौका दूध ही लेंगे तो कोई मतभेद नहीं होगा।

प्रायः प्रत्येक यज्ञमें यह गोदुग्धपान एक महत्त्वका भाग था। अनेक सूक्तोंमें इसका उल्लेख है अतः उनमेंसे एक मन्त्र देखिये-

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे ।

ऋ० १।१९।१

इंद्र (चारुं अध्वरं) सुन्दर यज्ञमें (गो-पीथाय) गोदुग्धपानके लिये (प्रहूयसे) बुलाया जाता है।

यज्ञमें देवताओंको बुलाना और उनको बहुत दूध पिलाना यह एक वैदिक कालकी विशेष बात थी। अतिथि आनेपर उसको भी ताजा ताजा दूध पिलानेकी वैदिक रीति थी। और इसीलिये घर घरमें गौओंकी पालना होती थी घरकी शोभा गौओंसे द्वारा बढती है ऐसा माना जाता था और हरएक मनुष्य गौको अपनी और अपनी जातिकी माता मानता था। इसीलिये गोहत्यारेको वध दण्ड वेदमें कहा है-

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम् ।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ॥

अथर्व १।१६।४

यदि तू हमारी गौ घोडे और मनुष्यका वध करेगा तो सीसेकी गोलीसे तेरा वेध हम करेंगे। " यहां मनुष्य, घोडा और गौके वधके लिये मृत्युका ही दण्ड कहा है। अर्थात् मनुष्य वधके लिये जो दण्ड है वही गोवधके लिये दण्ड कहा है जिससे गौकी योग्यता मनुष्यके इतनी वेदकी दृष्टिसे सिद्ध होती है। गौ मानवजातिकी माता होनेसे ही उस गौकी इतनी योग्यता मानी गई है। हिंदु लोग आज तक गौको माता मानते ही हैं, यह माता माननेकी प्रथा वेदके समान अतिप्राचीन है यह बात पूर्वोक्त मंत्रोंसे सिद्ध होती है।

२४ गौको नमन।

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः।
वालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः ॥ १ ॥

अथर्व १ ।१

हे (अघ्न्ये) हनन करने अयोग्य गौ ! जन्मते समय तुझे नमस्कार करता हूं, उत्पन्न होनेके बाद भी तुझे नमस्कार करता हूं तेरे संपूर्ण अवयवों और रूपोंके लिये यहां तक कि जो तेरे बाल और खुर हैं, उन सबको मैं नमन करता हूं।

गोमेधके इस द्वितीय सूक्तका यह पहिला ही मंत्र है। इसमें गौका अघ्न्या नाम आया है, इसका अर्थ अवध्य है। अवध्य गौ है यह प्रथम मन्त्रमें ही उपदेश है। गौ छोटी हो या बडी हो वह नमस्कार करने योग्य सत्कार करने योग्य है यही यहां बताया है। गौका बछडा छोटा हो अभी जन्मा हो अथवा कई महिनोंका हो उसका सत्कार ही करना चाहिये। किसी प्रकार भी कठोरताका या क्रूरताका व्यवहार छोटी या बडी गौके साथ करना नहीं चाहिये। सभी अवस्थाओंमें गौ सत्कार करने योग्य है। यह इस प्रथम मंत्रका तात्पर्य है।

प्रथम मंत्रमें गौका अवध्यत्व और सत्कार योग्यत्व कहके पश्चात् द्वितीय मंत्रमें कहते हैं कि गौका दान लेनेका अधिकारी कौन है देखिये यह द्वितीय मंत्र-

२५ गोदान लेनेका अधिकारी।

विद्या और आचारकी योग्यता रखनेवाला ज्ञानी सत्पुरुष ही गौका दान लेवे इस विषयमें इस द्वितीय मंत्रकी शिक्षा विचार करने योग्य है-

यो विद्यात्सप्त प्रवतः सप्त विद्यात्परावतः ।
शिरो यज्ञस्य यो विद्यात् स वशां प्रतिगृह्णीयात् ॥२॥

(यः सप्त प्रवतः विद्यात्) जो सात प्रवाह जानता है और जो (सप्त परावतः विद्यात्) सात अंतरोंको जानता

इसमें सिर अर्थात् प्रधान विभाग और अन्य गौण साधारण विभाग ये दो विभाग हैं प्राण मन बुद्धि आत्मा यह भेद, प्रधान या सिर स्थानीय विभाग है और देह इन्द्रिय आदि स्थूल विभाग अर्थात् साधारण विभाग है। इसको सूक्ष्म और स्थूल अमूर्त और मूर्त, प्राण और रयि सिर और धड़ इत्यादि अनेक नाम अध्यात्मशास्त्रमें हैं। इन नामों का भेद होनेपर भी वक्तव्य एक ही है।

जो ज्ञानी पुरुष इस मानव शरीरमें चलनेवाले सत-संवत्सरिक यज्ञके सबसे मुख्य सिरोभागको ठीक ठीक जानता है अर्थात् जिसे आत्मज्ञान हुआ है वही गौका दान लेवे। किसी दूसरेको गौदान लेनेका अधिकार नहीं है। यही बात अन्य प्रकार निम्नलिखित मन्त्रमें कही है—

वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः।
शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥३॥

मैं सात प्रवाहोंको जानता हूं मैं सात अन्तरोंको जानता हूं और यज्ञके सिरका भी ज्ञान मुझे है इतना ही नहीं प्रत्युत (अस्यां) इस गौके अन्दर तेजस्वी सोम शक्ति रहती है यह भी मैं जानता हूं। जो इतना ज्ञान रखता है वह गौका दान लेवे। जिसको इतना ज्ञान अपने अन्दर रहनेका आत्मविश्वास है वह गौका दान लेवे। किसी साधारण मनुष्यको गौ दान लेनेका अधिकार नहीं है।

गोमेध सूक्तके ये तीन मन्त्र पाठक देखेंगे तो उनको निश्चय हो जायगा कि गोमेधमें "गौका दान है न कि वध"। गोमांस हवनका गोमेधके साथ सम्बन्ध जोड़ने-वालोंका पक्ष इस सूक्तने ऐसा काट दिया है कि वे किसी भी रीतिसे अपना पक्ष अब सिद्ध ही नहीं कर सकते। अस्तु। इस ढंगसे गौ दान लेनेवालेकी योग्यता वर्णन करके अब चतुर्थ मन्त्रसे गौके महत्त्वका वर्णन होता है यह अब देखिये—

२६ गौका महत्त्व।

यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः।
वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥ ४ ॥

जिसने द्यौ पृथिवी और (आपः) इन जलोंका (गुपिताः) संरक्षण किया है उस सहस्र धाराओंसे दूध देनेवाली वशा गौको हम प्रार्थना पूर्वक इधर बुलाते हैं।

यहां गुप्त संकेतसे द्युलोक अन्तरिक्ष लोक और पृथिवी लोकोंका धारण पोषण करनेवाला परमात्मा ही गौ स्वरूपमें हमारे पास आता है और अपना अमृत रस हमें देता है ऐसा वर्णन किया है। इसलिये गौको देखकर यही अमृत रस देनेवाला परमात्माका रूप है ऐसा मानकर उसका सत्कार करना चाहिये। पाठक इससे जान सकते हैं कि गौके विषयमें कितना आदर भाव मनमें धारण करनेका उपदेश वेद कर रहा है। और देखिये—

शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधि
पृष्ठे अस्याः। ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां
विदुरेकधा ॥ ५ ॥

सौ बर्तन सौ दूध निचोडनेवाले सौ गोपाल इसके पीठपर हैं। जो देव (अस्यां प्राणन्ति) इस गौके अन्दर जीवन धारण करते हैं वे ही (एकधा वशां विदुः) ठीक ठीक रीतिसे गौको जानते हैं।

इस मन्त्रमें राजाके सदृश समान गौके सन्मानका स्पष्ट वर्णन किया है। इस गौके पीछे दूधके लिये सौ बर्तन लेकर मनुष्य सन्मानसे चलते हैं दूध दोहनेवाले सौ मनुष्य इसके साथ आदरसे रहते हैं और इसकी रक्षा करनेके लिये सौ गोपाल इसके पीछ चले रहते हैं। यह गोमेधमें 'गौकी सवारीका वर्णन" पाठक देखें और अनुमान करें कि गोमे धमें कितने सत्कारके साथ गौकी पूजा होती है। यदि कोई घातक गौका घात करनेकी इच्छासे वहां आयगा तो पूर्वोक्त तीनसौ रक्षकोंकी लाठियोंकी मारसे वह जीवित बच ही नहीं सकता। वैदिक धर्मी आर्य इसी गौरक्षा करते थे। वे मानते थे कि इस गौ माताके शरीरमें अनेक देव हैं जो वहां जीवनरसकी रक्षा करते हैं ऐसी देवतामयी गौका वध वदिक समयमें होना सर्वथा असंभव है। यह मन्त्र कहता है कि गौका महत्त्व असंदिग्ध रीतिसे वे ही जानते हैं कि जो गोदुग्धसे अपनी पुष्टि करते हैं।" यह सर्वथा सत्य है। आजकल गौका महत्त्व भारतीय लोग इस लिये नहीं जानते क्योंकि वे गौके दूधसे अपने बालको पुष्ट नहीं करते प्रत्युत गौकी शत्रुरूपी भैंसके दूधसे अपने बालकों पुष्ट करते हैं।

गौरक्षा " का सच्चा शत्रु कसाई नहीं है वह शत्रु निःसंदेह भैंस है। भैंसके दूधको पीनेवाले मानके उसके

महत्त्वको कैसे जान सकते हैं? गोदुग्धसे जो आरोग्य और जो मेधावृद्धि होती है वह कभी भैंसके दूधसे नहीं हो सकती। इसलिये गौके दूधका ही पान करना चाहिये। वेदका यही आदेश है। पाठक इसे स्मरण रखें। और देखिये—

यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका।
वशा पर्जन्यपत्नी देवाँ अप्येति ब्रह्मणा ॥ ६ ॥

(वशा) गौ (पर्जन्य-पत्नी) पर्जन्यसे उत्पन्न होने वाले घाससे पालित होती है वह गौ (यज्ञपदी) यज्ञ रूपी पांवसे युक्त (इरा-क्षीरा) दुग्धरूपी अन्न देनेवाली (स्वधा-प्राणा) अपनी धारण शक्ति युक्त प्राणवाली (मही लुका) भूमिको प्रकाशित करनेवाली है वह (ब्रह्मणा) अपने ज्ञानसे देवोंके पास जाती है।

इस मन्त्रके शब्द गौका महत्व विलक्षण उत्तम रीतिसे बता रहे हैं इसलिये इनका अधिक मनन करना चाहिये—

१ "पर्जन्य पत्नी वशा"=पर्जन्यसे पालित होनेवाली गौ है। अर्थात् वृष्टिसे घास उत्पन्न होता है खेतोंमें अन्न बढ़ता है वह घास वह गौ खाती है वह पानी पीती है और पुष्ट होती है। यहां इस शब्द द्वारा सूचित किया है कि गौकी पालना जंगलके घाससे ही होनी चाहिये। मनुष्य निर्मित कृत्रिम अन्नसे अर्थात् अग्निपर पकाकर बनाये अन्नसे नहीं होनी चाहिये। गौके दूधसे अधिक लाभ प्राप्त करना हो तो गौको पावक रोटी आदि पक्व अन्न नहीं खिलाना चाहिये प्रत्युत हरा घास ही खिलाना चाहिये। रोटी आदि पका अन्न गौको अधिक खिलानेसे तथा धान्य भी अधिक खिलानेसे गौके गोबरकी गंधी बदल जाती है। इसी प्रकार गौका दूध भी बिगड़ता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि धान्य और रोटी आदि पका हुआ अन्न खाने वाली गौके दूधकी अपेक्षा घास खानेवाली गौका दूध अधिक गुणकारी है। पाठक इस बातका स्मरण रखें।

२ "इरा-क्षीरा" = दुग्धरूपी अन्न देनेवाली। जो लोग गोमांस खानेकी प्रथा वैदिक कालमें भी ऐसा मानते हैं उनको यह शब्द बड़ा मनन करने योग्य है। गौसे जो अन्न मिलता है वह केवल दूध ही है अन्न दूसरा नहीं है। जो लोग मांस दूधके अतिरिक्त गोमांस पदार्थ भोजनके लिये लेते हैं वे वेदके विरुद्ध आचरण करते हैं। यदि वेदको गोमांसका भोजन अभीष्ट होता तो गौ वाचक शब्दोंमें "इरा-मांसा" ऐसे शब्द किसी स्थानपर आ जाते। परंतु ऐसा एक भी शब्द नहीं है जिससे गोमांस भोजन सिद्ध हो सके। यह शब्द तो दूध रूपी अन्न ही गौसे प्राप्त करना चाहिये यह वैदिक मर्यादा बता रहा है। इसलिये इस शब्दसे गोमांसका पक्ष तो जड़से नाश ही हो चुका है। गौ जो अन्न देती है वह केवल दूध ही है और दूधसे भिन्न कोई अन्न गौके शरीरसे लेना नहीं है। पाठक इस शब्दका खूब मनन करें।

३ "यज्ञपदी" = यज्ञरूपी पांववाली। गौके पांव यज्ञ ही हैं अर्थात् यह गौ यज्ञ भूमिमें पवित्र स्थानमें भ्रमण करती है। गौ जिस स्थानपर भ्रमण करे इसका आदेश इस शब्दसे प्राप्त हो सकता है। जहां लोग शौच करते हैं मैला फेंकते हैं, ऐसे अमंगल स्थानोंमें गौको घुमाना नहीं चाहिये। परन्तु जहां यज्ञ होते हैं ऐसी पवित्र भूमिमें कि जहां शुद्ध घास और शुद्ध पानी मिले, ऐसी पवित्र भूमिमें ही गौ घूमनी चाहिये। यह आदेश इसलिये कहा है कि यदि गौ अशुद्ध स्थानका घास खावे और अशुद्ध पानी पीवे तो उसका दूध रोगी बनेगा और मनुष्योंमें भी रोग बढ़ेंगे। इसलिये यज्ञभूमिमें गौ घूमे यह उपदेश इस शब्दसे सूचित किया है। इसके पद यज्ञ ही हैं किसी अन्य स्थानमें इसके पग न जावें। गौको कितनी पवित्रताके साथ पालना चाहिये इसका सूक्ष्म विचार इन मन्त्रोंके अन्दर पाठक देख सकते हैं।

४ "स्वधा प्राणा" = स्वधा शक्तिसे युक्त प्राणवाली। अर्थात् जिसमें प्राणशक्तिके साथ धारणाशक्ति भी है। प्राण शक्ति सब लोग जानते हैं, सब प्राणियोंमें यह शक्ति है इसीलिये प्राणी जीवित रहते हैं। इसी प्रकार (स्व+धा) प्राणियोंके अन्दर एक धारकशक्ति भी है उसका नाम "स्वधा" है। अपनी निज धारकशक्तिका नाम स्वधा है। यह शक्ति हरएक पदार्थमें है इसीलिये प्रत्येक पदार्थ अपने रूपमें रहता है। मनुष्योंमें यह स्वधाशक्ति बढ़ानेका कार्य गौका दूध करता है। इसीलिये बालकों और बूढ़ों तथा बीमारोंके लिये गौके दूधके समान कोई दूसरा अन्न नहीं है। यह अपनी धारकशक्तिकी वृद्धि करता है इसीलिये इस अवस्था अवस्थामें गोदुग्धसे उनकी धारकशक्ति

बढती है और आयुष्य वृद्धिपूर्वक पुष्टि प्राप्त होती है। किसी भी अन्य दूधमें यह गुण नहीं है। इसी कारण गोदुग्ध मनुष्यके लिये सबसे अधिक लाभदायक है। मानो गोदुग्धमें मनुष्यकी प्राणशक्ति और आत्माशक्ति ही निवास करती है। इसीलिये ही गौकी रक्षा और पालना उत्तम रीतिसे होनी चाहिये।

५ " महीलुका " = भूमिको तेजस्वी बनानेवाली गौ है। पूर्वोक्त शब्दोंके मननसे यह बात स्पष्ट हो जायगी।

यह वर्णन गौका महत्व बता रहा है। पाठक इसका अधिक मनन करें। ये पांच शब्द गौके विषयमें बडे आदर पूर्ण महत्वके विचार प्रकाशित कर रहे हैं। जिस समय ऐसे आदरपूर्ण विचार मनमें रहते हैं उस वैदिक समयमें गोवध होना बिलकुल असंभव है।

इस मंत्रका चतुर्थपाद है – ' देवान् अप्येति ब्रह्मणा (जो ब्रह्मके साथ अर्थात् मंत्रद्वारा उपासना पूजा या यजन के साथ देवोंको प्राप्त होती है) कई विद्वान् ऐसे हैं कि जो इस मंत्रभागसे गोवधकी कल्पना करते हैं और समझते हैं कि वेदमंत्रका उच्चार करके गोमांसकी आहुतियां देनेकी कल्पना इससे सिद्ध होती हैं !!! यह इनकी कल्पना देख कर हमें बडा आश्चर्य होता है क्यों कि ऐसा अर्थ माननेपर भी पूर्वापर विरोध हो रहा है इसका इन विद्वानोंको कोई ख्याल ही नहीं है !! इस सूक्तके प्रथम मंत्रमें ही गौको " अ-घ्न्या " (अवध्य) नामसे पुकारा है इसलिये इस सूक्तमें आगे गोवधकी कल्पना करना पूर्वापर संबंधसे युक्ति युक्त नहीं है। इस बातको छोड भी दिया जाय तो इसी मंत्रके शब्द देखिये। इसी मंत्रमें " इरा-क्षीरा " शब्द है जिससे बताया है कि गौसे दुग्धरूपी अन्न मिलता है। गौसे मांस-अन्न लेनेकी कल्पना किसी भी आधारपर नहीं है। यह पूर्वापर संबंध देखनेसे पता लग सकता है कि " देवाँ अप्येति ब्रह्मणा " इस मंत्रभागमें भी गोवधकी कल्पना करनेके लिये कोई स्थान नहीं है। " ब्रह्म " शब्दके अनेक अर्थ हैं- परब्रह्म आत्मा ज्ञान वेद वेदमंत्र सुविच अन्न इत्यादि अर्थ ब्रह्म शब्दके प्रसिद्ध हैं। इसमें अन्न शब्द लिया जाय तो इस मंत्रभागका अर्थ निम्न लिखित प्रकार होता है " यह गौ अपने दुग्धरूपी अन्नसे देवोंको प्राप्त होती है। " यज्ञमें गौके दूध और घीका हवन होता है और देवताओंके उद्देश्यसे आहुतियां छोडी जाती हैं जब यह दूध और घीकी आहुतियां देवताओंको पहुंचती हैं तब इन आहुतियोंके रूपसे गौ भी मानो देवताओंको पहुंचती है। पूर्वापर संबंध देखकर किसी प्रकारसे विरोध न करते हुए यह सरल अर्थ है। पाठक इस अर्थका मनन करें।

इसके अतिरिक्त " देवान् अप्येति ब्रह्मणा " इस मन्त्र भागमें गोवधकी कल्पना करनेके लिये उसके " वध या मांस हवन " वाचक यहां एक भी शब्द नहीं है। गौ देवोंको प्राप्त होती है ऐसा कहने मात्रसे उसका वध करके उसकी मांसाहुतियोंसे वह देवोंको प्राप्त होती है इतनी लंबी कल्पना किस आधारपर की जाती है यह हमारे समझमें नहीं आता है। यदि दूध घीके रूपसे गौके देवों तक पहुंचनेकी संभावना न होती तो ऐसी लंबी कल्पना करना एक बार उचित भी माना जाता परन्तु गौको अ-वध्य रखते हुए उसके घीसे ही प्राप्त होनेवाले दूध और घी रूपी अन्नकी आहुतियोंसे गौ देवोंको प्राप्त होती है यह बात हरएक यज्ञमें प्रत्यक्ष होनेकी अवस्थामें उतनी लंबी कल्पना—जो मन्त्रके शब्दोंसे भी सिद्ध नहीं होती-करना अयोग्य और मीमांसाके नियमोंके सर्वथा विरुद्ध है। इसलिये इस प्रकारकी अयुक्त कल्पना करना सर्वथा अनु चित है। अब गौका महत्व देखिये—

मधु स्वाग्नि-माविशदनु सोमो यक्षो स्वा।
ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥ ७ ॥

' हे (भद्रे वशे) कल्याण करनेवाली वशा गौ ! तेरे अन्दर अग्नि प्रविष्ट हुआ है तेरे अन्दर सोम प्रविष्ट हुआ है तेरा दुग्धाशय पर्जन्य बना है और बिजलियां ही तेरे स्तन बनी हैं। " अर्थात् अग्नि सोम पर्जन्य और विद्युत इन देवोंने तेरे शरीरमें ही आश्रय किया है।

गौके दूधमें विलक्षण शक्तिवाली जीवनकी विद्युत रहती है इसीलिये ताजा ताजा दूध-धारोष्ण दुग्ध-पीनेसे मनु ष्यमें जीवनकी विद्युत् बढती है और आरोग्य तथा दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। जिस प्रकार पर्जन्य वृष्टिकी अनेक धाराओंसे मनुष्यको हर्षोत्पादक देता है और यह हर्षोत्पादक मनुष्यके लिये आरोग्यदायी होता है ठीक उसी प्रकार गौ भी अपनी अनेक धाराओंसे दूध देती है जो मनुष्यका

आरोग्य बढानेवाला होता है। सोम वनस्पति घास आदिके रूपसे गौके शरीरमें प्रविष्ट होता है, सोम नामक जीवन कलाकी वृद्धि करनेवाली वनस्पति भी गौ खाती है और जो जो वनस्पति इस प्रकार गौके शरीरमें जाती है उसका औषध सत्व गौके दूधमें आता है जो मनुष्यका जीवन सुखमय करनेका हेतु होता है। गौ जिस समय जंगलमें घास खानेके लिये भ्रमण करती है उस समय सूर्य प्रकाश उसके शरीरपर पडता है और सूर्यकी उष्णता अग्निरूप तेज-गौके शरीरमें प्रविष्ट होता है इसका गौके दूधपर परिणाम बडा लाभकारी होता है। भैंस आदि पशु जो केवल कृष्ण वर्ण होते हैं और जो उष्णता सह नहीं सकते इसलिये सदा जलमें डुबकियां लगाना चाहते हैं उन पशुओंमें सूर्य-किरणोंका जीवनाग्नि प्रविष्ट नहीं होता। इसलिये भैंसका दूध शीत गुणविशिष्ट होनेके कारण मनुष्यके लिये उतना लाभकारी नहीं हो सकता। परन्तु गौ सूर्यका ताप सह सकती है और भैंसके समान जलमें डुबकियां लगाना नहीं चाहती, इतना ही नहीं परन्तु कपिल लाल पीला और श्वेत रंगोंसे युक्त गौके शरीर होनेके कारण सूर्य प्रकाशसे जीवनका आग्नेय तत्त्व गौके शरीरमें प्रविष्ट हो सकता है और वह मनुष्योंका आरोग्यवर्धन भी कर सकता है। गौके दूधसे लाभ और भैंसके दूधसे हानि होनेका वर्णन जो वैद्यग्रन्थमें है और जो अनुभवमें भी है उसका कारण यहां इस प्रकार इस मन्त्रसे स्पष्ट हुआ है। गौ सूर्य प्रकाशसे आग्नेय जीवनतत्त्व अपने अन्दर संगृहित करती है उस प्रकार भैंस नहीं कर सकती इस कारण दोनोंके दूधोंके गुणधर्मोंमें इतना अन्तर है। इसीलिये गौ मनुष्योंकी माता कही जाती है वैसी भैंस नहीं। गौका दूध आरोग्यवर्धक है वैसा भैंसका नहीं। गौका दूध बुद्धिवर्धक है वैसा भैंसका नहीं। प्रतिदिन गौका दूध पीनेवालेको सूर्यतापज्वर (Sun stroke) की बीमारी होती नहीं इसका भी यही कारण है। भैंसका दूध प्रतिदिन पीनेवालेको सूर्यतापज्वरकी बाधा होती है। पाठक विचार करें कि गौका महत्व कितना है और मनुष्यके जीवनके साथ उसका कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसीलिये वेद गौका महत्त्व विविध रीतिसे वर्णन कर रहा है। तथा और देखिये—

२७ राष्ट्ररक्षक गौ।

त्वमपस्यं दुहे प्रथमा उर्वरा त्वमपरा मही।
तृतीयं राष्ट्रं दुहेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम्॥ ८॥

"हे (वशे) वशा गौ! (त्वं प्रथमा अपस्यं दुहे) तू सबसे प्रथम दूध देती है (त्वं अपरा उर्वरा) तू पश्चात् भूमिकी कृषि कराती है, इस प्रकार (त्वं क्षीरं अन्नं दुहे) तू दूध और अन्न देकर (तृतीयं राष्ट्रं दुहे) तीसरे राष्ट्रको परिपुष्ट बनाती है।"

इस मंत्रमें गौके कितने उपकार वर्णन किये हैं देखिये। सबसे प्रथम गौ दूध देती है, यह दूध बाल वृद्ध रोगी स्त्रीपुरुषोंके लिये तथा सशक्त और अशक्तोंके लिये बडा उपकारी है। इसलिये यह गौ सबकी माता है। यह इसका पहिला उपकार है। गौका दूसरा उपकार यह है कि वह बैलोंको उत्पन्न करती है और उन बैलोंके द्वारा खेती की जाती है जिस खेतीसे विपुल धान्य उत्पन्न होता है, अर्थात् बैलोंद्वारा खेती करानेवाली मा ही है। यह इस गौका मनुष्योंपर दूसरा उपकार है। इस प्रकार स्वयं दूध देने और बैलों द्वारा कृषि करवाके धान्य देनेसे मानो राष्ट्रका पालन पोषण और रक्षण गौ ही कर रही है यह तीसरा उपकार है। ये तीन उपकार गौ कर रही है, पाठक इनका अनुभव करें। आजकल गौओंकी संख्या कम हो गई है इसलिये विपुल दूध मिलनेका अनुभव नहीं है परंतु पंजाब सिंध कुरुक्षेत्र और गुजरातमें प्रति समय एक मन दूध देनेवाली गौवें हैं उनको देखनेसे पता लग सकता है कि वह गौ राष्ट्रका पालन किस प्रकार कर सकती है। भगवान् गोपालकृष्णके समय पाठक देख सकते हैं कि यहां गौओंकी पालना होती थी हरएक मनुष्यको विपुल गोरस मिलता था उससे सब सम्पन्न और कैसे दीर्घायु होते थे और कैसे सुदृढ होते थे। सचमुच अभी वर्षोंके मनुष्य भी अपने बालको युवा होनेका अनुभव करते थे और मनुष्योंकी देखते सबकी आयु भी एक साधारण बात थी। परंतु आज प्रतिदिन सैंकडों गौओंका वध हो रहा है और गौका दूध आज अति दुर्लभ सा हुआ है इसका परिणाम दुर्बलता और अल्पायुतामें पाठक प्रत्यक्ष देख सकते हैं। इससे पाठक जान सकते हैं किस रीतिसे गौ राष्ट्रका पालन करती है। अर्थात् गौ एक "राष्ट्रीय महत्त्वका धन" है जिससे मनुष्य धन्य ही बनता रहेगा। इसलिये हरएक देशके और धर्मके मनुष्यको यहां गोरक्षा अवश्य ही करनी चाहिये। यदि न की जाय तो न केवल उस व्यक्तिकी अवनति होगी प्रत्युत उसके राष्ट्रकी भी अवनति होगी। इस प्रकार राष्ट्रके उद्धारका संबंध गोरक्षासे है। पाठक इस

रीतिसे गौमें राष्ट्र संरक्षणका गुण देखें और अन्य सब मत भेद छोड़कर गोरक्षामें दत्तचित्त होकर पूर्णतया कटिबद्ध होकर गौकी रक्षा करनेका महत्वपूर्ण कार्य करें। राष्ट्रमें जो जो मनुष्य हैं उनके शरीरोंकी नीरोगता दीर्घ आयु और शक्ति रखने और बढ़नेका संबंध इस प्रकार गोरक्षणसे है इसलिये गोरक्षाके विषयमें जो उदासीन रहते हैं वे अपनी राष्ट्ररक्षामें भी उदासीन ही होते हैं अर्थात् गोरक्षाके बिना राष्ट्ररक्षा हो नहीं सकती है। यह बात समझ कर सब लोग गोरक्षाके कार्यमें विशेष दत्तचित्त हों और कभी उदासीन न हों क्योंकि ऐसा शोषण होता रहा तो अन्य बातोंकी उन्नति होनेपर भी राष्ट्रकी सची उन्नति होना असंभव है मनुष्योंकी दीर्घायु, शारीरिक शक्ति और नीरोगता न रही तो अन्य उन्नतिसे कौनसा लाभ प्राप्त हो सकता है? इस लिये गोरक्षा करना आत्मरक्षाके समान ही महत्वपूर्ण बात है इसको कभी भूलना नहीं चाहिये।

२८ गौके लिये सोमरस।

सोम बड़ी औषधि है जो जीवनशक्तिकी वृद्धि करने- वाली है। वैदिक आदेशानुसार ऐसा प्रतीत होता है कि गौको सोमरस पिलाया जाता था और पश्चात् उसका दूध मनुष्य पीते थे, जिसमें सोमरसके गुणधर्म आजाते थे और इस कारण वह सोमरस पीनेवाली गौका दूध मनुष्यके लिये बड़ा ही आरोग्यप्रद होता था इस विषयमें आगका मन्त्र देखिये—

यदाहिस्त्रेर्युयमाप्नोपातिष्ठ ऋतावरि।
इन्द्रः सहस्रं पात्रान्त्सोमं त्वापाययद्वरो ॥ ९ ॥

हे (ऋतावरि वशे) सत्य स्वभाववाली वशा गौ! जब ऋषियों द्वारा बुलायी जाकर तू पास आती थी तब इन्द्र तुझे हजारों बर्तनोंसे सोमरस पिलाता था।"

अर्थात् जब गौ जंगलसे वापस आती है तब उस गौके वास्ते लिये अनेक बर्तनोंमें सोमरस तैयार रखा जाता था। जिसका पान गौ करती थी और पश्चात् गौको दुहा जाता था। पाठक देखें कि यह वैदिक प्रथा है यह वैदिक समय में गौका आदर था।

२९ वीरोंका दुग्धपान।

युद्धके समय गौके दूधका पान वीर लोग करें इस विषय के दो मन्त्र अब देखिये—

यदनूचीन्द्रमैरात् त्व ऋषभोऽह्वयत्।
तस्मात्ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धोऽहरद्वशे ॥ १० ॥
यत्ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद्वशे।
इदं तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥ ११ ॥

हे (वशे) गौ! (यत्) जब तू (इन्द्रं अनूचीः ऐः) इन्द्रके साथ चली उस समय (ऋषभ) बलवान् वृत्रासुर (त्वा अह्वयत्) तुम्हारे लिये बुलाता रहा (तस्मात् क्रुद्धः) इससे क्रुद्ध हुए (वृत्रहा) वृत्रासुरका वधकर्ता इन्द्रने (ते पयः क्षीरं) तेरा अमृत जैसा दूध (अहरत्) लिया। हे (वशे) गौ! जो क्रुद्ध हुए (धन-पतिः) इन्द्रने तेरा दूध लिया था वही आज (नाकः) स्वर्गरूपसे तीन पात्रोंमें रक्षण किया जाता है।

इन्द्र और वृत्रके युद्धके प्रसंगोंका वर्णन वेदमें अनेक स्थानोंमें आया है। यह वर्णन आधिदैविक सृष्टिमें सूर्य और मेघ आधिभौतिक प्राणी सृष्टिमें धार्मिक राजा और अधार्मिक शत्रु तथा आध्यात्मिक सृष्टिमें आत्मिक शक्ति और हीन मनोविकार इनके युद्धके साथ बताता है। इस विषयका संपूर्ण रूपक यहां कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। यहां हमें इतना ही देखना है कि युद्धादि प्रसंगोंमें भी गौसे लाभ उठानेकी बात वेदमें किस महत्वके साथ कही है। वेदमें उपदेश देनेके जो अनेक मार्ग हैं उनमें यह भी एक मार्ग है कि " इन्द्रादि देवोंने ऐसा किया और उसके करनेसे उनको यह लाभ हुआ।" ऐसे वचनसे बताया जाता है कि मनुष्य भी वैसा ही करे और लाभ उठावे। इस प्रकार उक्त मन्त्रमें यह वर्णन है—

एक समय इन्द्र और वृत्रासुरका युद्ध हुआ इस युद्धमें इन्द्रके साथ गौवें थीं। जहां देवोंका सैन्य रहता था वहां गौवें भी रखी जाती थीं। जब देवोंके वीर जोशसे और क्रोधसे लड़ते थे और थक जाते थे उस समय उनको गौओंका ताजा दूध निचोड़ कर दिया जाता था। इस प्रकार दूध पी पीकर देववीर युद्ध करते थे। वृत्रासुरने यह बात देखी और एक समय इन्द्रकी गौओंपर हमला चढ़ाया। इससे इन्द्रको बड़ा क्रोध आया। देवोंने भी असुरोंपर जोरसे हमला किया और उनका पराभव किया। तथा गौओंके दूधका वर्णन स्वर्गमें रख दिये जिस कारण आज भी स्वर्गका महत्व सब मानते हैं।

वेद मन्त्रोंके मूल वर्णनसे ब्राह्मणादि ग्रंथोंमें इसी प्रकार कथाएं बनाकर लिखी हैं। ये कथाप्रसंग इतिहास बतानेके लिये नहीं हैं परन्तु कुछ सनातन बोध देनेके लिये बनाये जाते हैं। इस कथा प्रसंगसे पाठक निम्नलिखित बोध ले सकते हैं—

(१) युद्ध करनेवाले सैनिकोंको पीनेके लिये दूध मिले इसलिये सैन्यके साथ कुछ गौवें रखनी चाहिये और उनका ताजा दूध सैनिकोंको पिलाना चाहिये। युद्ध करते समय थके हुए सैनिकोंको भी इसी प्रकार दूध देना चाहिये।

(२) जब कोई क्रोधका कार्य करना हो जिस समय कोई प्रकारका आवेशका कार्य करना हो जिस समय क्रोध आता हो तो उस समय गायका धारोष्ण दूध पीनेसे शरीरमें समता आ जाती है।

यह सामान्य बोध उक्त मन्त्रोंके वर्णनमें पाठक देख सकते हैं। क्रोध मोह मद (उन्माद) की अवस्था प्राप्त हुई तो उस समय गौका दूध पीनेसे शरीरमें समता आती है और उक्त हीन मनोविकार दूर होते हैं। कामविषयक अत्याचारसे मनुष्यके शरीरमें निर्बलता उत्पन्न हुई हो तो गौके दूध पीनेसे दूर होती है। अतिश्रमसे उत्पन्न हुई थकावट इन्द्रियकी जलन मस्तककी आग नेत्रोंकी जलन इन्द्रिय विकारसे होनेवाली मूर्छा आदि सब दोष गौके दूध पीनेसे दूर होते हैं। किसी भी अन्य दूधमें यह गुण नहीं है। इसलिये ऋषिमुनि गौका दूध पीकर योगादि साधन करके अजरामर होते थे। यदि इस समयमें भी भारतीय लोग गौकी रक्षा करेंगे तो सभी प्रकारकी सिद्धि वे इस समयमें भी प्राप्त कर सकते हैं।

वीर लोग गौओंको साथ लेकर समुद्रके पार जाकर वहां पराक्रम करें इस विषयका संकेत निम्नलिखित मन्त्रोंमें पाठक देख सकते हैं—

त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्यहरद्वशा।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥१२॥
सं हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता।
वशा समुद्रमध्यष्ठाद् गन्धर्वैः कलिभिः सह ॥१३॥
सं हि वातेनागत समु सर्वैः पतत्रिभिः।
वशा समुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि बिभ्रती ॥१४॥
सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा।
वशा समुद्रमत्यख्यद्भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती ॥१५॥
अभीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि।
अश्वः समुद्रो भूत्वाऽध्यस्कन्दद्वशे त्वा ॥ १६ ॥
तद्भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्र्यथो स्वधा।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥१७॥

" (देवी वशा) दिव्य गौने (तं सोमं) उस सोमको (त्रिषु पात्रेषु आहरत्) तीन बर्तनोंसे उस यज्ञमें लाया जहां (हिरण्यये बर्हिषि) सुवर्णके आसनपर दीक्षित होकर अथर्वा बैठा था ॥ १२ ॥ सोमके साथ तथा सब पांववालोंके साथ होकर तथा वह (कलिभिः गंधर्वैः) युद्धप्रिय वीर गन्धर्वोंके साथ (वशा) गौ समुद्रपर विजयके लिये चली ॥ १३ ॥ वह वायुके साथ और सब (पतत्रिभिः) पंखवालोंके साथ होकर ऋचा और सामोंको धारण करती हुई (वशा) गौ समुद्रपर (प्रानृत्यत्) नाचने लगी ॥ १४ ॥ वह सूर्यके साथ और सब आंखवालोंके साथ होकर विविध ज्योतियोंको धारण करती हुई (भद्रा वशा) कल्याण करनेवाली गौ (समुद्रं अत्यख्यत्) समुद्रका निरीक्षण करने लगी ॥ १५ ॥ हे (ऋतावरि) सीधे आचारवाली गौ! जब तू (हिरण्येन) सुवर्णके आभूषणोंसे सुभूषित होकर खड़ी हुई तब समुद्र घोड़ा बना और उसने अपने पीठपर तुझे उठाया ॥ १६ ॥ वहां उस यज्ञमें ये तीनों कल्याण करनेवाली इकट्ठी मिलीं— १ (वशा) गौ २ (देष्ट्री) आदेश करनेवाली और ३ (स्वधा) अपनी धारक शक्ति। वहां दीक्षित होकर अथर्वा सुवर्णमय आसनपर यज्ञके मध्यमें बैठता है ॥ १७ ॥ "

पूर्वोक्त प्रकार आलंकारिक कथाके रूपमें इन मन्त्रोंका भावार्थ अब लिखते हैं जिससे इन मन्त्रोंमें कही बात पाठकोंके ध्यानमें अतिशीघ्र आजायगी—

यज्ञमें अथर्ववेद जाननेवाला ऋत्विज होता है वह गौके दूधके साथ सोमरसको तीन बर्तनोंमें रखकर ले जाता है और सबको पिलाता है। ऐसे याजकोंके साथ और लोग आदि वनौषधियां साथ लेकर गंधर्व वीर अपने सब सैनिकोंको साथ लेकर विजय करनेके लिये समुद्र पारसे चले उनके साथ गौवें भी बहुतसी थीं। जिन नौकाओंमें बैठकर वह संघ सैन्य समुद्रपर इनका करनेके लिये चली थी उन

नौकाओंको वायुके द्वारा चलनेवाले यंत्रोंसे चलाया जाता था। इसी नौकामें ब्राह्मण लोग यज्ञ करते थे ऋचाओंको बोलते थे और सामगायन भी करते थे यहां सौप तो आर्यदृष्टसे आवश्यक थी। गौओंका साथ रखते हुए नौकाओंमें बैठे हुए सब लोगोंने सूर्य प्रकाशके उजालेके साथ अपने आंखोंसे ही संपूर्ण समुद्रको तथा आसपासके सब स्थलको देखा। इस समय गौवें सुवर्णके भूषणोंसे सजी हुई थीं, मानो समुद्रका ही घोडा बनाकर उस घोडेकी पीठपर सब गौवें सवार होकर चली थीं॥ यहां जो यज्ञ किया उसमें अथर्व वेदका ज्ञानी दीक्षित होकर यज्ञ करता था, इस यज्ञमें तीनोंका बडा संगठन हुआ था (यथा) गौका पालन करनेवाले वैश्य (वैट्टी) आदेश देनेवाले अर्थात् हुकूमत करनेवाले क्षत्रियवीर तथा (स्वधा) अपनी आत्मिक शक्तिका धारण करनेवाले ब्राह्मण॥

पाठक यदि पूर्वोक्त शब्दार्थको इस भावार्थके साथ साथ पढेंगे तो उनको मन्त्रोंका आशय ठीकही समझेगा। हमारे अभिलषित गोरक्षा विषयके साथ इन मन्त्रोंके आशयका बहुत कुछ संबन्ध है। वीर लोग भूमिपर युद्ध करनेके लिये जिस समय जावें उस समय दूध पीनेके लिये गौवें साथ रखें यह बात पूर्व स्थलमें बता दी है। यहां यह बात बतानी है कि समुद्रमें नौका द्वारा भी देशदेशान्तरोंमें विजय प्राप्त करने या अन्य काम काजके लिये जाना हो तो साथ गौओंको ले जावें, उनके लिये पर्याप्त घास साथ रखा जावे। तथा साथ याजक ब्राह्मण, गोपालक तथा व्यापार करनेवाले वैश्य रहें और इस प्रकार त्रैवर्णिक अपना संगठन करते हुए देश देशान्तरमें संचार करें और अपना यश जगत्में फैला दें।

इसमें समुद्रका घोडा बनानेकी कल्पना है। नौकासे इधर उधर जानेआनेवाले समुद्रका ही घोडा बनाते हैं यह बात स्पष्ट ही है। इन मंत्रोंमें यज्ञ द्वारा त्रैवर्णिकोंका संगठन करनेकी कल्पना विशेष महत्वपूर्ण है। यहां ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन शब्दोंको न लिखते हुए उनके कर्मोंको लिखा है। ब्राह्मण स्वाहास्वधा आदिका उच्चारण करते हुए इष्ट कर्म करते रहते हैं, क्षत्रिय वीर आदेश देते हैं हुकूमत करते हैं और वैश्य गौका पालन कृषि और व्यापार करते हैं। ये तीनों व्यवसाय करनेवाले संगठित हों अर्थात् ये तीनों व्यवहार करनेवाले लोग परस्पर सहकार्य करते हुए उन्नतिके मार्ग हों यह इन मन्त्रोंका आशय है। गोरक्षा करते हुए अपनी उन्नति करनेका महत्वपूर्ण कार्य यही है। ये सब मंत्र गोमेध सूक्तके हैं इससे पाठक जान सकते हैं कि गोमेध यज्ञका तात्पर्य वास्तवमें क्या है और आज कल कैसा समझा जाता है।

२० सबकी माता गौ।

पूर्वोक्त वर्णनसे पाठकोंके मनमें यह बात आगई होगी कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य आदिकोंके संपूर्ण हलचलोंका केन्द्र गौ ही था। सब लोग गौका ही मान करते थे। ब्राह्मण लोग यज्ञमें गौका सत्कार करते थे क्षत्रिय लोग युद्धादिकोंके अवसर भी अपने साथ गौओंको रखते और पालते थे वैश्य तो पशुपालन करते ही थे और खेतीद्वारा उनको पुष्ट करते थे। जिस प्रकार अपनी माता सबको पूजनीय होती है उसी प्रकार गौमाता भी सबको पूजनीय ही थी इसीका स्पष्ट बोध करनेके लिये निम्नलिखित मंत्रमें कहा है—

वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव।
वशाया यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत ॥१॥

'(वशा) गौ क्षत्रियकी माता है हे (स्वधे) आत्मिक शक्तिवाले! तेरी भी माता यह गौ है। यज्ञ मानो गौका ही एक शस्त्र है इसीसे जगतमें चेतना हुई है।"

क्षत्रिय लोगोंकी माता गौ है इसलिये क्षत्रियोंको भी यह गौ पूजनीय है फिर वे इस मातृवत् पूजनीय गौका वध कैसा कर सकते हैं और अपनी ही माताका वध करके उसके मांसका सेवन कैसा कर सकते हैं! आत्मशक्तिका धारण करनेवाली स्वधावाली ब्राह्मण जातिकी भी माता गौ ही है। इसलिये ब्राह्मणोंको भी गौ मातृवत् पूज्य है इस कारण ब्राह्मण भी गोवध कर नहीं सकते और नाहीं गोमांस खा सकते हैं। कृषि गोरक्षा करनेवाले वैश्य तो स्वभावसे ही गोरक्षक हैं, वे तो कभी गोवध कर नहीं सकते। अर्थात् इस प्रकार त्रैवर्णिक आर्य गौको माता मानते हैं इसलिये इनसे गोवध होना सर्वथा असंभव है।

कई लोग यहां शंका करेंगे कि इस सूक्तके मंत्रोंमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंका उल्लेख करके उनकी माता गौ है ऐसा कहा है परंतु शूद्रका उल्लेख इसमें नहीं है। इसलिये गौ शूद्रकी माता नहीं है तो क्या शूद्र गौका मांस खा सकता

होते हैं। भूमिका संरक्षण नहीं किया तो देश और राष्ट्रकी पराधीनता होकर विविध कष्ट होते हैं, उनका अनुभव पराधीन देशवासी सबोंको है। गायका रक्षण नहीं किया तो अपचनता, अल्पायुता आदि होना स्वाभाविक ही है। इससे वत्सकी ये तीन विद्याएं हैं इनको सुरक्षित रखना चाहिये, इस वेदके वचनका महत्व ध्यानमें आ सकता है। इनके बीचमें (तासां मध्ये वशा) जो गौरूपी मध्य विद्या है उसका महत्व विशेष ही है। वाणी रूपी वत्सकी विद्या तो प्रायः हरएक मनुष्यको मिली है थोडे ही गूंगे हैं कि जो इसका दुरुपयोग करनेके कारण इसके उपयोगसे वंचित रखे गये हैं। भूमिरूपी वत्सकी विद्या कुछ थोडे मनुष्योंके अधिकारमें है अर्थात् हरएक मनुष्यके मलकियतकी भूमि नहीं है, अर्थात् वाणीरूपी वत्सकी विद्याकी अपेक्षा भूमिरूपी वत्स विद्या थोडे मनुष्योंको प्राप्त हुई है। परंतु गाय रूपी जो वत्सकी विद्या है वह तो उनसे भी थोडे लोगोंके पास रहती है और उसका दान देनेका अधिकार तो अति अल्प ब्रह्मविद् आत्मज्ञानीयोंको ही केवल है। यह तीन गौवोंकी अवस्था पाठक देखें और इस मंत्रका आशय समझें।

गाय तो बिकनी भी नहीं चाहिये। आर्य लोग कभी गायकी बिक्री नहीं करते थे। इस समय ब्राह्मणोंने ही इस प्रथाकी रक्षा इस समयतक की है। हमें अन्य स्थानोंका पता नहीं परन्तु महाराष्ट्रके ब्राह्मण इस समय भी गौका बेचना पाप समझते हैं और प्रायः गोविक्रय नहीं करते। यह वैदिककालकी प्रथा इस समय थोडीसी अवशिष्ट है।

४२ गौका वीर्य।

चतुर्धा रेतो अभवद्वशायाः।
आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशव-
स्तुरीयम् ॥ ९९ ॥

द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः।
वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥१००॥

वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये।
ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥१०१॥

"(वशायाः रेतः) वशा गौका वीर्य (चतुर्धा अभवत्) चार प्रकारसे फैला है। (आपः तुरीयं) जलरूपसे एक भाग (अमृतं तुरीयं) दूधरूपसे एक भाग (यज्ञः तुरीयं) यज्ञरूपसे एक भाग और (पशवः तुरीयं) पशुरूपसे एक भाग ॥ ९९ ॥ यह वशा गौ द्युलोक, पृथ्वीलोक विष्णु और प्रजापति परमात्मा रूप है। साध्य देव और वसुदेव वशा गौका दूध पीते हैं ॥ १ ॥ साध्य और वसुदेव यहां गौका ही दूध पीते हैं इसलिये (ब्रध्नस्य विष्टपि) स्वर्गमें भी उनको गौका दूध मिलता है ॥ ३१ ॥"

वशा गौके चार रूप हैं— द्युलोक, पृथ्वीलोक विष्णु और प्रजापति। इन चारोंके साथ गौके चार वीर्य सम्बन्धित हैं। अर्थात् (१) द्युलोकसे सूर्यकी प्रेरणासे वृष्टि होकर जलकी प्राप्ति होती है (२) पृथ्वीलोकमें सोमादि वनस्पतियोंका रस अन्न आर दुग्ध आदिकी प्राप्ति होती है (३) विष्णु अर्थात् व्यापक परमात्माकी उपासना यज्ञमें ब्रह्मज्ञानियोंसे की जाती है और (४) पशुओंसे प्रजापतिकी प्रजाका पालन होता है। यह विभाग गौके चार वीर्योंका है। द्यु सूर्य मेघ भूमि परमात्मा, आत्मा तथा इनकी शक्तियों आदिका नाम "गौ" है इसलिये यह कथन श्लेषालंकारसे ठीक है। इससे गौका महत्व ही व्यक्त होता है।

साध्य और वसुदेव यहां अपना अनुष्ठान करते हैं और केवल गौके दूधपर रहते हैं अन्य कुछ नहीं खाते। यह इनका नियम इनके लिये ऐसा फलीभूत हुआ है कि इस नियमके कारण स्वर्गमें भी इनको दूध मिलने लगा। अर्थात् जो जो मनुष्य नियमपूर्वक प्रतिदिन गौका दूध पीयेंगे उनको स्वर्गमें भी नियमपूर्वक दूध मिलता रहेगा। पाठक इस प्रलोभनमें गोरक्षाका महत्व ही देखें। इस प्रकारके अर्थवादके वाक्य शब्दार्थ द्वारा व्यक्त होनेवाले अर्थ बतानेके लिये नहीं होते प्रत्युत विशेष गूढ अर्थका भाव मनमें प्रकाशित करनेके लिये होते हैं। यहां गोरक्षाका महत्व इन वाक्यों द्वारा कहा है। जो लोग प्रतिदिन गायका दूध नियमपूर्वक पीनेका निश्चय करेंगे और उसका पालन नियमपूर्वक करेंगे उनका स्वर्गमें भी नियमपूर्वक कामधेनुका दूध मिलता रहेगा। पाठक सोच सकते हैं कि यदि यह नियम लोग करेंगे तो गोरक्षा स्वयं हो जायगी। स्वास्थ्य रक्षाके साथ इस नियमका अत्यंत महत्व है। देखने यह साधारणसी बात कही है परन्तु इसका परिणाम बहुत ही व्यापक है, पाठक इसका बहुत विचार करें।

२९ गो दानका फल।

सोममेनामेके दुह्रे घृतमेक उपासते।
य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ॥ १२ ॥
ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वांल्लोकान्त्समश्नुते।
ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माऽथो तपः ॥ १३ ॥
वशां देवा उपजीवन्ति वशां मनुष्या उत।
वशेदं सर्वमभवद्यावत्सूर्यो विपश्यति ॥ ३४ ॥

अथर्व० १०।१०

"कई लोग सोमके लिये इस गौसे दूध निकालते हैं कई लोग इस गौसे प्राप्त होनेवाले घीके लिये इसके पास जाते हैं। उत्तम विद्वान ब्राह्मणको जो लोग गौका दान करते हैं वे स्वर्गको जाते हैं ॥ १२ ॥ जो लोग ब्राह्मणोंको गौका दान करते हैं वे सब लोकोंको प्राप्त करते हैं क्योंकि इस गौमें ऋत, ब्रह्म और तप रहता है ॥ १३ ॥

'गौसे देव जीवित रहते हैं और मनुष्य भी गौसे ही जीवित रहते हैं। गौ ही संपूर्ण जगद्रूप बनी है जहांतक सूर्य प्रकाश पहुंचता है वह सब मानो गौ ही है ॥ ३४ ॥'

यज्ञकर्ता लोग सोमरसके अंदर दूधका मिश्रण करनेके लिये गायका दोहन करते हैं, कोई याज्ञिक लोग दूधसे घी प्राप्त करनेके लिये गौका दोहन करते हैं। इस प्रकार गौसे यज्ञ होता है।

ये सब पूर्वोक्त बातें जो विद्वान जानता है उस ज्ञानी पुरुषको ही गौ दान देनी योग्य है। जो लोग ऐसे सत्पुरुषको गौका दान करते हैं वे स्वर्गके अधिकारी होते हैं। विद्वान ज्ञानी ब्राह्मणोंको गौका दान करनेसे सब प्रकारकी श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है। गौके अंदर (ऋत) सत्य (ब्रह्म) ज्ञान और तप रहता है इसलिये गौका महत्त्व अधिक है। इस गौका हरएकको उपयोग है।

देव तथा और मनुष्य तथा गौके दुग्धादिसे ही जीवित रहते हैं पुष्ट होते हैं और बढते भी हैं। इस रीतिसे देखा जाय तो इस गौका ही यह सब रूप है ऐसा प्रतीत होगा, यह सब विश्व सब जगत् मानो गौका ही व्यक्त रूप है। जब मनुष्य गौके दूध दही छाछ, मक्खन घी आदिसे पुष्ट होते हैं तब संपूर्ण मानवी जगत् गौका ही रूप मानना योग्य है। मानो गौ ही मानवीरूपमें परिणत होती है।

इस प्रकार गौका महत्त्व सब लोग जानें और गोरक्षा, गोवृद्धि और गोपुष्टि करके अपना और देशका उद्धार करें।

वेदमें जो गोमेधके दो सूक्त हैं उनका योग्य स्पष्टीकरण यह है। पाठक इन मंत्रोंको ध्यानसे देखें कि इन मन्त्रोंमें गोवध और गोमांसभक्षणके लिये क्या प्रमाण है! इनके लिये एक भी प्रमाण नहीं है परंतु गोरक्षा गोवृद्धि गोपुष्टि आदिके लिये अनेक रीतिसे कहा है, गौका महत्त्व तो काव्यालंकारोंसे अनेक प्रकारसे कहा है। इसलिये वेदमें गौका वध मानना प्रमाणहीन होनेके कारण अयोग्य है।

वेदमें "गौ" के विषयमें जो मन्त्र आये हैं, उनकी संगति इसमें पूर्ण बताई है। इन सबका विचार करनेसे यह बात निश्चित होती है कि वेद मन्त्रोंमें गौका वध करके उसका हवन करने तथा गोमांस भक्षण करनेके लिये कोई प्रमाण नहीं है। इस विषयमें आंग्लभाषी लोगोंकी जो कल्पना है वह निर्मूल है।

"गौरक्षा" ही आर्योंका श्रेष्ठ धर्म है। गोरक्षा करनेसे ही सबकी उन्नति हो सकती है।

"गां मा हिंसीः।"

वा. यजु. १३।४३

स्वाध्याय मंडल आनंदाश्रम
पारडी (जि. सूरत)

लेखक
श्री दा. सातवळेकर

गो-ज्ञान-कोश

वैदिक विभाग

द्वितीय खण्ड

गो संबंधके संपूर्ण वैदिक ज्ञानका संग्रह

---

[१] गौका अग्र-पूजासे सम्मान करो।

सव्य आंगिरसः। इन्द्रः। जगती। (ऋ. १।५३।५)

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाऽश्वावत्या रभेमहि ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! हम (राया) धनसे (सं रभेमहि) युक्त हों (इषा सं) अन्नसे, (पुरुश्चन्द्रैः अभिद्युभिः) बहुतोंको आनन्द देनेवाले तथा तेजसे जगमगाते हुए (वाजेभिः) बलोंसे युक्त हों (वीर-शुष्मया) वीरोंके लिए बलदायक (गो अग्रया) जिसके अग्र भागमें गायें प्रमुख हैं इस प्रकारकी (अश्वावत्या देव्या) अश्व रखनेवाली और तेजस्वी दिव्य (प्रमत्या) बुद्धिसे हम (सं रभेमहि) युक्त हों।

(गो अग्रया प्रमत्या सं रभेमहि) जहाँपर गायोंको सर्वप्रथम मान्यता मिलती हो उस प्रकारकी बुद्धि हमें प्राप्त हो। पीछे अग्रभागमें रखनेका अर्थ गौका मुख्यतः सत्कार करना है। अग्रपूजाका मान गौका है।

गोतमो राहूगणः। विश्वेदेवाः। गायत्री। (ऋ. १।९०।५)

उत नो धियो गोअग्राः पूषन्विष्णवेवयावः। कर्ता नः स्वस्तिमतः ॥ २ ॥

हे (पूषन् विष्णो एवयावः) पुष्टिकारक व्यापक तथा शत्रुदलपर आक्रमण करनेवाले वीरो ! (नः धियः) हमारे कर्म (गोअग्राः) गौओंको प्रमुख स्थान देकर (कर्त) कर डालो (उत) और (नः) हमें (स्वस्तिमतः) कल्याण पूर्ण परिस्थितिसे युक्त करो।

गो अग्राः धियः ऐसे कार्य कि जिनमें गौओंका स्थान प्रमुख रहे। गौको प्रमुख पद का स्थान देनेकी बुद्धि। गौका महत्त्व जानकर उन्हें प्रमुख स्थान दें तो सबकी कल्याण होगा। अतः गाकी अग्रपूजा होना उचित है।

गोतमो राहूगणः । उषाः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।९२।७)

भास्वती नेत्री सूनृतानां दिव स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।

प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ॥ २ ॥

(भास्वती) तेजस्विनी, (सूनृतानां नेत्री) सत्य वचनोंका संचालन करनेवाली यह (दिवः दुहिता) स्वर्ग कन्या उषा (गोतमेभिः स्तवे) गौतम ऋषियों द्वारा प्रशंसित हो रही है (उषः) हे उषे ! (प्रजा-वतः) पुत्रपौत्रोंसे युक्त (नृ-वतः) वीरोंसे युक्त (अश्वबुध्यान्) घोडोंसे युक्त एवं (गो अग्रान्) जिनमें गौको प्रमुख पद मिला हो ऐसे (वाजान्) बलवर्धक अन्नोंको और धनोंको (उप मासि) हमें दे दो ।

सभी प्रकारके धनोंमें और अन्नोंमें गोरसका स्थान प्रमुख है । ' गो-अग्रान् वाजान् उपमासि '= गौओंका जिनमें प्रमुख स्थान है ऐसे अन्न हमें प्राप्त हो । खानेपीनेमें दूध दही, घी छाछ आदि पदार्थ प्रमुख रहने चाहिये । इसीलिये अग्रपूजाका मान गौका है ।

[२] वन्दन करने योग्य गौ ।

मृगारोऽथर्वाङ्गिराः । वास्तोष्पत्यम् । अनुष्टुप् (अथर्व ९।३।१३)

गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते ।

विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥ ४ ॥

(यत् शालायां विजायते) जो घरमें उत्पन्न होते हैं, (गोभ्यः अश्वेभ्यः नमः) उन गौओं तथा घोडोंको नमन हो । हे (विजावति प्रजावति) उत्पादक तथा सन्तान युक्त घर ! (ते पाशान् वि चृतामसि) तेरे पाशोंको हम हटा देते हैं । बंधनसे मुक्त करते हैं ।

गोभ्यः नमः गौओंके लिये नमस्कार किया जावे । गौ वन्दनके लिये योग्य है । जो वन्दनके लिये योग्य होती है वही सब प्रकारके सत्कारके लिये योग्य होती है ।

कश्यपः । वशा । विराट् (अथर्व १०।१०।१,४)

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः ।

बालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः ॥ ५ ॥

यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः ।

वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥ ६ ॥

हे (अघ्न्ये) अवध्य गौ ! (जायमानायै ते नमः) उत्पन्न होते समय तुझे नमन हो (उत जाताय ते नमः) और उत्पन्न होनेपर तुझे प्रणाम हो (ते रूपाय बालेभ्यः शफेभ्यः नमः) तेरे रूप बाल और खुरोंके लिए नमस्कार हो ।

(यया) जिससे (द्यौः) द्युलोकको (यया पृथिवी यया इमाः आपः गुपिताः) जिससे भूमंडल ये सभी जल सुरक्षित रहते हैं (सहस्रधारां वशां) उस सहस्रों धारावाली वशा गायका (ब्रह्मणा अच्छावदामसि) मंत्रसे हम स्तोत्रका पठन करते हैं ।

गौको नमस्कार हो । स्तोत्र गाके गायकी हम प्रशंसा करते हैं । गौ अवध्य (अघ्न्या) है गौ छोटी हो या बडी हो वह वन्दनके लिये योग्य है । गौके प्रत्येक अंग और अवयवकी अर्थात् उसका रूप बाल, खुर आदि सबकी सेवा करना योग्य है ।

[३] गौओंको आदरसे बुलाना।

ब्रह्मा। गृहाः वास्तोष्पतिः। अनुष्टुप् (अथर्व ७।६२।५)

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः।

अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः॥ ७॥

(इह गावः उपहूताः) यहाँ गायें बुलायी गयीं और (अज-अवयः उपहूताः) बकरे, भेडें लाई गयीं (अथ अन्नस्य कीलालः) और अन्नका सत्त्वभाग भी (नः गृहेषु उपहूतः) हमारे घरमें लाया है।

गौओंको आदरके साथ बुलाया जावे। क्योंकि गौवें उत्तम अन्नका प्रदान करनेवाली हैं। घरमें खानपान उनके दूध आदिसे ही होता है।

[४] गौका सम्मान करनेसे सुख बढता है।

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।१६९।८)

त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः।

स्तवानेभिः स्तवसे देव देवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥ ८॥

(इन्द्र) हे इन्द्र! (त्वं) तू हम जैसे (मानेभ्यः) सम्माननीय लोगोंके लिए (विश्व जन्या) आवश्यक सभी वस्तुएँ उत्पन्न करनेवाला बन (मरुद्भिः रद) मरुतोंकी सहायतासे शत्रुदलका विनाश कर। (गोऽग्राः) गौको प्रमुख स्थान देना (शु-रुधः) शोक घटानेवाला है। हे (देव) देव! (स्तवानेभिः) स्तुत्य (देवैः) देवोंसे तू (स्तवसे) प्रशंसित हो रहा है, और हम (इषं) अन्न (वृजनं) बल और (जीरदानुं) दीर्घ आयुष्य (विद्याम) प्राप्त करते हैं।

गो-अग्राः शु-रुधः = गौओंको अग्रभागमें रखनेहारे, गौका महत्त्व भली भाँति जाननेहारे शोकको दूर हटाते हैं और आनन्द पाते हैं। जिन लोगोंने अपनी सभ्यतामें गौको प्रमुख स्थान दिया है वे लोग सुखी होते हैं।

[५] गौकी सेवा करो।

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।१७३।८)

एवा हि ते शं सवना समुद्र आपो यत्त आसु मदन्ति देवीः।

विश्वा ते अनु जोष्या भूद्गौः सूरींश्चिद्यदि धिषा वेषि जनान्॥ ९॥

(ते सवना) तुम्हारे सोमयाग (शं एव हि) कल्याणकारक हैं (यत्) जो (देवीः आपः) दिव्य जल (समुद्रे) अन्तरिक्षमें रहता है वही (आसु) इन गौओंमें (ते मदन्ति) तुम्हें आनन्दित करता है (यदि सूरीन् जनान्) यदि विद्वान लोगोंको तू (धिषा यदि वेषि) बुद्धिसे सम्मानित करनेकी इच्छा करता है तो (विश्वा गौः) सभी गौएँ (ते) तेरे लिए (जोष्या) प्रीतिपूर्वक सेवा करने योग्य हैं ऐसा (अनु भूत्) अनुभव कर।

विश्वा गौः ते जोष्या = सभी गौएँ तुम्हारे लिए सेवा करने योग्य हैं गौसेवा तुमसे प्रीतिपूर्वक हो जाए। जो गौ अधिक दूध देती है उसीकी सेवा करना और जो अधिक दूध नहीं देती उसकी सेवा न करना यह योग्य नहीं है। सभी गौवें (विश्वा गौः) तेरे द्वारा (ते जोष्याः) प्रीतिपूर्वक सेवा करने योग्य हैं। सबकी सेवा करना योग्य है।

●

[६] गायके लिये सुख ।

मनुर्वैवस्वतः । विश्वे देवाः । अनुष्टुप् । (ऋ ८।३०।४)

ये देवास इह स्थन विश्वे वैश्वानरा उत ।
अस्मभ्यं शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत ॥ १० ॥

(इह) इधर (ये देवासः) जो देव (उत विश्वे वैश्वानराः स्थन) और सभी मानवी सब हों वे (अस्मभ्य) हमें (गवे अश्वाय) गाय तथा घोडेके लिए (सप्रथः शर्म यच्छत) विस्तारशील सुख दें। सब गायको सुख देवें ।

कण्वो घौरः । रुद्रः । गायत्री । (ऋ १।४३।६)

शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये । नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥ ११ ॥

(नः) हमारे (अर्वते) घोडोंको (मेषाय मेष्ये) भेडा और भेडीको (नृभ्यः नारिभ्यः) पुरुषों तथा महिलाओंको और (गवे) गायोंको (सुगं) अच्छा (शं) सुख (करति) दे दे । हमारे घोडे भेडा भड थी, स्त्री एवं पुरुष सभी आनन्दित रहें और कोई भी दुःखी न रहने पाय । गये भी गायके लिये सुख मिले ।

कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री । (ऋ १।३८।२)

क्व नूनं कद्वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः ।
क्व वो गावो न रण्यन्ति ॥ १२ ॥

(नूनं क्व ?) तुम सचमुच किधर प्रस्थान करनेवाले हो ? (वः कत् अर्थं) यहाँपर तुम किस हेतुस आनेवाले हो ? (दिवः गन्त) द्युलोकसे तुम बाहर निकल आओ पर (न पृथिव्याः) इस भूमण्डल परसे भला तुम कहीं भी न दूर चले जाना (वः गावः क्व न रण्यन्ति) तुम्हारी गौएं भला भला आनन्द बन किधर नहीं रँभाती हैं ? अर्थात् सर्वत्र रमती हैं ।
और दुःख हमारे देशसे बाहर न चले जायें हमारी रक्षाके लिए हमारे निकट ही रहें और ऐसा प्रबंध कर दें कि सब गाएं बड आनन्दसे रँभाती रहें । गौवें निर्भयता पूर्वक आनन्दसे विचरती रहें ।

अथर्वा । रुद्रः अरुन्धती ओषधिः । अनुष्टुप् । (अथर्व ६।५९।१)

अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति ।
अधेनवे वयसे शर्म यच्छ चतुष्पदे ॥ १३ ॥

हे अरुन्धती औषधी ! (त्वं अनडुद्भ्यः) तू बैलोंको (त्वं धेनुभ्यः) तू गौओंको और तू (चतुष्पदे अधेनवे वयसे) चौपाए जोन भिन्न पशुको तथा पक्षीको (प्रथमं शर्म यच्छ) पहले सुख दे।
अरुन्धती औषधिसे गा आदि पशुओं और मानवोंको सब प्रकारका सुख मिलता है । अरुन्धती वनस्पतिको केवल खानेसे गाका पोषण होता है और गाय बहुत दूध देने लगती है ।

[७] गौके लिये शान्ति ।

ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ । गायत्री । (ऋ ८।५।२०)

शं नो वाजिनीवसू पश्वे तोकाय शं गवे ।
वहतं पीवरीरिषः ॥ १४ ॥

हे (वाजिनी-वसू) अन्न एवं बलसे युक्त धनवाले अश्विनौ ! (तेन) उस तुम्हारे रथपरसे (नः पश्वे) हमारे पशु (तोकाय शंये) सन्तान एवं गौके लिए (शं) शान्तता मिले इस ढंगसे (पीवरीः इषः वहत) अत्यन्त समृद्धिशाली अन्नोंको पहुँचा दो।

गौओंकी ऐसी पालना होनी चाहिये कि उनको किसी तरहकी न्यूनता न भोगनी पडे सर्व प्रकारकी शान्ति उनके लिये सदा प्राप्त हो।

[८] किसान गाय बैलोंको गानसे सन्तुष्ट करता है।

सोभरिः काण्वः। मरुतः। ककुप्। (ऋ. ८।२।१९)

यून ऊ षु नविष्ठया वृष्णः पावकान् अभि सोभरे गिरा।
गाय गा इव चर्कृषत् ॥ १५ ॥

हे सोभरे ! (चर्कृषत् गाः इव) खेती करनेवाला जैसे बैलोंसे हल खिंचवाते समय मुंहसे गायन करता है उसी प्रकार तू भी (यून पावकान् वृष्णः) युवक पवित्रता करनेहारे एवं दूसरोंकी इच्छाकी पूर्ति करनेवाले वीर मरुतोंको (अभि) ध्यानमें रखकर (नविष्ठया गिरा सुगाय) नई मापण शैलीसे भली भाँति गायन करो।

जिस तरह कवि देवताकी स्तुति अपने काव्यसे करता है और उस देवताको संतुष्ट करता है उसी तरह किसान मधुर गायनसे अपने बैलोंको (चर्कृषत् गा इव) संतुष्ट करता है।

[९] गायोंको संतुष्ट रखो।

श्यावाश्व आत्रेयः। अश्विनौ। उपरिष्टाज्ज्योतिः। (ऋ. ८।३५।१८)

धेनुर्जिन्वतमुत जिन्वतं विशो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १६ ॥

हे अश्विनौ ! (धेनूः जिन्वतं) गायोंको संतुष्ट करो, (उत विशः जिन्वतं) और प्रजाओंको तृप्त करो। (रक्षांसि हतं) राक्षसोंका वध करो (अमीवाः सेधतं) रोगोंको हटा दो तथा सूर्य एवं उषाके साथ (सजोषसा) रहते हुए (सुन्वतः सोमं) निचोडनेवालेके सोमको पी जाओ।

धेनूः जिन्वतं = गौओंको संतुष्ट करो, उनको प्रसन्न करो अर्थात् गौवें आनन्दपूर्वक सुखमें रहें ऐसा उनके साथ बर्ताव करो।

भृगु। यमः निर्ऋतिः। जगती। (अथर्व. ६।२७।३)

शिवो गोभ्य उत पुरुषेभ्यो नो अस्तु ॥ १७ ॥

यह गौओंके लिये तथा मनुष्योंके लिये कल्याणकारी होवे।
इन गौओंके लिये सब (शिवः) कल्याणकारी बनें।

भृगुः। यमः निर्ऋतिः। १ त्रिष्टुप् २ अनुष्टुप्। (अथर्व. ६।२८।१ २)

परि गां नयामः ॥ १८ ॥
पर्यग्निं गामनेषत ॥ १९ ॥

गौका चारों ओर हम ले जाते हैं। ये गायको चारों ओर घुमाते हैं।

विरश्चीरांगिरसो पुत्रको वा मान्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ८।९६।१)

मह उग्राय तवसे सुवृक्तिं प्रेरय शिवतमाय पश्वः ।
गिर्वाहसे गिर इन्द्राय पूर्वीर्धेहि तन्वे कुविदङ्ग वेदत् ॥ २० ॥

(महे उग्राय) महान् एवं भीषण रूपवाले (तवसे) अत्यन्त बुद्ध तथा (पश्वः शिवतमाय) पशुओंके लिए अत्यन्त कल्याणकारक (गिर्वाहसे इन्द्राय) भाषणोंको दूसरे स्थानतक पहुँचानेवाले इन्द्रके लिए (सुवृक्तिं प्रेरय) अच्छी स्तुतिको प्रेरित कर और (पूर्वीः गिरः धेहि) बहुतसे भाषण करना शुरू कर, क्योंकि (अंग) हे भले मनुष्य ! (तन्वे कुवित् वेदत्) यह तुमको या तेरे पुत्रको बहुत धन दिलायेगा ।

पश्वः शिवतमः = पशुओंके लिये हितकारी बन ।

श्रुतकक्षसुकक्षौ आंगिरसौ । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० ८।९२।२१)

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
शं यत् गवे न शाकिने ॥ २१ ॥

(वः) तुम लोग (सचा) मिलकर (सुते) सोमके निचोडनेपर (सत्वने शाकिने पुरुहूताय) सत्त्वगुण युक्त शक्तिमान् तथा बहुतोंद्वारा बुलाये हुए इन्द्रके लिए (यत् शं) जो सुखकारक हो, (गवे न) गायके लिए तृण जैसे (तत् गाय) उसका गायन करो ।

गवे शं = गायके लिये सुख हो ।

[१०] भोजनके लिये गायको बुलाना ।

प्रगाथः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० ८।६५।३)

आ त्वा गीर्भिर्महामुरुं हुवे गामिव भोजसे ।
इन्द्र सोमस्य पीतये ॥ २२ ॥

हे इन्द्र ! (महां उरुं त्वा) बडे एवं विशाल तुमको (सोमस्य पीतये) सोमके पानके लिए (भोजसे गां इव) भोजनके लिए गायको जैसे बुलाते हैं उसी प्रकार (गीर्भिः आ हुवे) भाषणोंसे बुला लेता हूँ ।

भोजसे गां आ हुवे = भोजनके लिये गौको बुलाते हैं । गौको खिलानेके समय प्रीतिपूर्वक नामका उच्चारण करके गौको बुलाना चाहिये ।

दीर्घतमा औचथ्यः । मित्रावरुणौ । जगती । (ऋ० १।१५१।५)

मही अत्र महिना वारमृण्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्मन् धेनवः ।
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषसस्तक्ववीरिव ॥ २३ ॥

हे मित्र एवं वरुण देवो ! तुम अपने पराक्रमसे (मही अत्र) विस्तृत ऐसी इस पृथ्वीपर (वारं ऋण्वथः) स्वीकार करने योग्य गोधन देते हो (ताः अरेणवः तुजः) उन निर्मल दूध देनेवाली (धेनवः सद्मन् आ) गौएं घरमें गोष्ठमें आकर रहती हैं और (उपर-ताति) अन्तरिक्ष मेघोंसे दूर जानेपर (सूर्यं) सूरजको देखनेकी इच्छासे (निम्रुचः उषसः) सायंकाल और प्रातःकाल (तक्ववीः इव) चोरके पीछे दौडनेवाले मानवके समान वे (स्वरन्ति) रँभाती हैं ।

पुष्टिके साथ बहुत बढती हुई तथा (जीवन्तीः वः जीवाः उपसदेम) जीवित रहनेवाली तुम्हें हम सभी जीवित रहते हुए प्राप्त करते हैं।

हे गायो ! गोपतिना सधन्वं अयं पोषयिष्णुः गोष्ठः, रायस्पोषेण बहुला भवन्तीः = हे गौओं ! गोपालकके साथ रहो, इधर उधर न भागो यह गोशाला ऐसी की है कि यहाँ तुम्हारा उत्तम पोषण होगा। इस पोषणसे तुम बहु संख्यामें बढ जाओगी।

इस तरहका प्रबंध गोपालकके विषयमें करना उचित है।

मथितो यामायनः। गावः, गावो वा। अनुष्टुप्। (ऋ० १०।१९।३)

पुनरेता नि वर्तन्तामस्मिन्पुष्यन्तु गोपतौ ।
इहैवाग्ने नि धारयेह तिष्ठतु या रयिः ॥ ३७ ॥

हे अग्ने ! (एताः पुनः नि वर्तन्तां) ये गायें फिर लौट आवें, (अस्मिन् गोपतौ पुष्यन्तु) इस गोपालकके रहते पुष्ट हों (इह एव नि धारय) यहींपर उन्हें रख दो और (या रयिः) जो तेरा धन है वह (इह तिष्ठतु) इधर रहे।

गायें पुनः लौट आजांय।

मथितो यामायनः। आपः गावो वा। अनुष्टुप्। (ऋ० १०।१९।८)

आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि ।
जीवाभिर्भुनजामहै ॥ ३८ ॥

हे इन्द्र ! (आ निवर्त) हमारे पास लौट आओ (पुनः गाः निवर्तय) फिर गायोंको लौटाओ तथा (नः देहि) हमें देदो ताकि (जीवाभिः) उन जीवन देनेहारी गायोंसे हम (भुनजामहै) भोगोंको प्राप्त कर सकें।

घोषा काक्षीवती। अश्विनौ। जगती। (ऋ० १०।३९।१३)

ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वतमपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना ।
वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्यायुवं शचीभिर्ग्रसितामभुञ्चतम् ॥ ३९ ॥

हे अश्विनौ ! (ता) वे तुम दोनों (जयुषा पर्वतं वियातं) जयशील रथसे पहाडको लाँघकर चले गये और (शयवे धेनुं अपिन्वतं) शयुके लिए गायको पुष्ट करडाला। (युवं) तुम दोनों (शचीभिः) शक्तियोंसे (वृकस्य आस्यात् अन्तः) वृकके मुँहके अन्दरसे (ग्रसितां वर्तिकां चित्) निगली हुई चिडियाको भी (अमुञ्चतं) छुडा चुके।

धेनुं अपिन्वतं = गौको पुष्ट करो।

[१९] गाइयोंसे भोजन मिलता है।

विमद ऐन्द्रः। इन्द्रः। पुरस्ताद्बृहती। (ऋ० १०।२३।१)

अस्मे ता त इन्द्र सन्तु सत्याऽहिंसन्तीरुपस्पृशः ।
विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः ॥ ४० ॥

हे इन्द्र ! (ते ताः उपस्पृशः) तेरी ये प्रशंसायें (अस्मे अहिंसन्तीः सत्याः सन्तु) हमारे लिए

जुवाणः) जलोंके साथ मित्रता करता हुआ (यथावशं तन्वः) इच्छाके अनुसार शरीरके विषयमें (कः कल्पयाति ?) कौन समर्थ करता है ?

सुदुघां नित्यवत्सां पृश्निं धेनुं कल्पयाति = सहजहीसे जिसका दोहन होता है, जिसके बछडे जीवित रहते हैं मरते नहीं ऐसा क्योंकि जो सुभूषित रहती है जिसका अनुरंग चित्रकबरा होता है उस गौको अधिक सामर्थ्य वाली बनाना योग्य है अर्थात् उसका दूध बढाना गौकी मात्रा दूधमें बढानी, इसी तरह अन्यान्य गुणोंमें उस गौका सामर्थ्य बढाना चाहिये ।

[१४] दिनमें तीन बार दोहन ।

भृग्वङ्गिराः । अनड्वान् इन्द्रः । अनुष्टुप् । (अथर्व ४।११।१२)

> दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मध्यंदिनं परि ।
> दोहा ये अस्य संयन्ति तान्विद्मानुपदस्वतः ॥ २७ ॥

(सायं दुहे प्रातः दुहे) मैं सायंकाल और प्रातःकाल दोहन करता हूं, (मध्यंदिनं परि दुहे) दुपहरके समय भी दोहन करता हूं, (ये अस्य दोहाः संयन्ति) जो इसके निचोडे हुए रस इकट्ठे होते हैं (तान् अनुपदस्वतः विद्म) उन्हें हम अविनाशी मानते हैं ।

प्रातःकाल मध्य दिनमें और सायंकाल ऐसा एक दिनमें तीन बार गौका दोहन होना योग्य है । जिस गौका दूध अधिक होता है उस गौका तीन बार दोहन करना उचित है । यज्ञमें तीन सवन होते हैं, प्रत्येक सवनमें गौका दोहन किया जाता है । इस तरह यज्ञकी गौ बहुत दूध देनेवाली और दिनमें तीनवार दुही जानेवाली होती है ।

[१५] उत्तरोत्तर गायका दूध बढे ।

अथर्वा । अष्टका धेनुः । अनुष्टुप् । (अथर्व ३।१०।१)

> प्रथमा ह व्युवास सा धेनुरभवद्यमे ।
> सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥ २८ ॥

(प्रथमा ह वि उवास) पहली उषाकी वेला उदयको प्राप्त हुई तब (सा यमे धेनुः अभवत्) वह नियममें रहनेवाली गाय प्रकट हुई बाहर आयी (सा पयस्वती) वह दूध देनेवाली गौ (नः उत्तरां उत्तरां समां दुहां) हमारे लिए उत्तरोत्तर आने आनेवाले वर्षोंमें अधिकाधिक दूध देती रहे।

सा पयस्वती धेनुः नः उत्तरां उत्तरां समां दुहां = वह बहुत दूध देनेवाली गौ हमें उत्तरोत्तर वर्षोंमें अधिक अधिक दूध देती रहे । प्रत्येक प्रसूतीमें गौका दूध बढता जाय ।

[१६] गौवें नीरोग हों ।

परुच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्रवायू । अष्टिः । (ऋ० १।१३५।८)

> अत्राह तद्वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त
> जायवोऽस्मे ते सन्तु जायवः । साकं गावः सुवते पच्यते
> यवो न ते वाय उप दस्यन्ति धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ॥ २९ ॥

(जायवः) विजयी वीर (यं अश्वत्थं) जिस अश्वत्थ जैसे पवित्र सोमके समीप (उप तिष्ठन्त) जाकर रहते हैं (तत् मध्वः) उस मधुर सोमकी आहुति (अत्र अह) इस यज्ञमें (वहेथे) तुम स्वीकार करते हो (अस्मे) हमारे समीप (ते जायवः) वे वीर हमेशा (सन्तु) हों (गावः साकं

सुवते) गायें सब मिलकर प्रसूत होती हैं (पयः पच्यते) धान्य तैयार हो रहा है। हे वायुदेव ! (धेनवः) गायें (ते) तेरे लिए हैं इसलिए (न उपदस्यन्ति) दुबली नहीं होती हैं उसी तरह (धेनवः) गायें कभी (न अपदस्यन्ति) चुराई नहीं जाती हैं।

सभी गायें दूध दे रही हैं और धान्य पककर तैयार हो रहा है। यह सारी वायुकी शिक्षा है। वायुके लिए गौएँ हैं इसलिए उन्हें पुष्ट रखना चाहिए। सावधानता रखनी चाहिए कि कभी इनकी चोरी न हो। और इनकी रक्षा सदैव करें।

गावः सार्कं सुवते धेनवः न उपदस्यन्ति धेनवः न अपदस्यन्ति = ये गौवें साथ साथ प्रसूत होती हैं साथ साथ दूध देती हैं ये कभी रोगी होकर क्षीण नहीं होतीं वे नीरोग रहती हैं। इनका अपहरण भी कोई नहीं करता।

अन्यत्र गौओंको अघ्न्या कहा है। उत्तम गौवें वे हैं कि जो यक्ष्मरोग रहित होती हैं।

[१७] गौओंके रक्षक देव।

विश्वामित्रः। अश्विनौ। अनुष्टुप् (अथर्व ३।१४।१)

वायुरेनाः समाकरत् त्वष्टा पोषाय ध्रियताम्।

इन्द्र आभ्यो अधि ब्रवत् रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु ॥ २० ॥

(वायुः एनाः सं आकरत्) वायु इन गायोंको इकट्ठा करे (त्वष्टा पोषाय ध्रियतां) त्वष्टा पुष्टिके लिये इन्हें धारण करे (इन्द्रः आभ्यः अधिब्रवत्) इन्द्र इन्हें पुकारे और (रुद्रः भूम्ने चिकित्सतु) रुद्र बहुलताके लिए चिकित्सा करे।

वायु त्वष्टा इन्द्र और रुद्र गौओंकी रक्षा करते हैं।

ब्रह्मा। अर्यमा पूषा बृहस्पतिः इन्द्रः; गावः। अनुष्टुप्। (अथर्व ३।१४।२)

स वः सृजत्वर्यमा स पूषा स बृहस्पतिः।

समिन्द्रो यो धनञ्जयो मयि पुष्यत यद् वसु ॥ २१ ॥

अर्यमा (वः सृजतु) तुम्हें मिलावे पूषा तथा बृहस्पति भी (सं) तुम्हें ठीक मिलावे (यः धनञ्जयः इन्द्रः) जो धन प्राप्त करनेवाला प्रभु है वह (सं सृजतु) तुम्हें धनसे युक्त करे। (यत् वसु) जो धन तुम्हारे समीप है उसे (मयि पुष्यत) मुझमें पुष्ट करो।

गावः ! पुष्यत = हे गौओ ! तुम पुष्ट बनो। अर्यमा बृहस्पति इन्द्र ये देव तुम्हारे अन्दरका जो दुग्धरूपी धन है, (वसु) मानवोंके निवासके लिये उत्तम सहायक है उसे पुष्ट करें।

[१८] गौओंका पुष्ट करो।

गोतमो राहूगणः। अग्नीषोमौ। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।९३।१२)

अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः।

अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् ॥ २२ ॥

हे (अग्नीषोमा) अग्नि तथा सोम ! (नः अर्वतः) हमारे घोड़ोंको (पिपृतम्) पुष्ट बनाओ; हमारी (हव्यसूदः) हविर्भाग उत्पन्न करनेहारी (उस्रियाः) गौओंको (आप्यायन्तां) हृष्टपुष्ट करो, (मघ-वत्सु) धन समीप रखनेवाले (अस्मे) हम लोगोंको (बलानि धत्तं) विविध

वृद्धिके साथ बहुत बढती हुई तथा (जीवन्तीः वः जीवाः उपसदेम) जीवित रहनेवाली तुम्हें हम सभी जीवित रहते हुए प्राप्त करते हैं।

हे गावः ! गोपतिना सचध्वं अयं पोषयिष्णुः गोष्ठः, रायस्पोषेण बहुला भवन्तीः = हे गौओं ! गोपालकके साथ रहो, इधर उधर न भागो यह गोशाला ऐसी की है कि, यहाँ तुम्हारा उत्तम पोषण होगा इस पोषणसे तुम बहु संख्यामें बढ जाओगी।

इस तरहका प्रबंध गोपालनके विषयमें करना उचित है।

मथितो यामायनः । आपः, गावो वा । अनुष्टुप् । (ऋ० १०।१९।३)

पुनरेता नि वर्तन्तामस्मिन्पुष्यन्तु गोपतौ ।
इहैवाग्ने नि धारयेह तिष्ठतु या रयिः ॥ ३७ ॥

हे अग्ने ! (एताः पुनः नि वर्तन्तां) ये गायें फिर लौट आयें (अस्मिन् गोपतौ पुष्यन्तु) इस गोपालकके रहते पुष्ट हों (इह एव नि धारय) यहींपर उन्हें रख दो और (या रयिः) जो तेरा धन है वह (इह तिष्ठतु) इधर रहे।

गायें पुनः लौट आजांय।

मथितो यामायनः । आपः गावो वा । अनुष्टुप् । (ऋ० १०।१९।६)

आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि ।
जीवाभिर्भुनजामहै ॥ ३८ ॥

हे इन्द्र ! (आ निवर्त) हमारे पास लौट आओ (पुनः गाः निवर्तय) फिर गायोंको लौटाओ तथा (नः देहि) हमें देदो ताकि (जीवाभिः) हम जीवन देनेवाली गायोंसे हम (भुनजामहै) भोगोंको प्राप्त कर सकें।

घोषा काक्षीवती । अश्विनौ । जगती । (ऋ० १०।३९।१३)

ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वतमपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना ।
वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्याद्युवं शचीभिर्ग्रसिताममुञ्चतम् ॥ ३९ ॥

हे अश्विनौ ! (ता) वे तुम दोनों (जयुषा पर्वतं वियातं) जयशील रथसे पहाडको लांघकर चले गये और (शयवे धेनु अपिन्वतं) शयुके लिए गायको पुष्ट करडाला। (युवं) तुम दोनों (शचीभिः) शक्तियोंसे (वृकस्य आस्यात् अन्तः) वृकके मुंहके अन्दरसे (ग्रसितां वर्तिकां चित्) निगली हुई चिडियाको भी (अमुञ्चतं) छुडा चुके।

धेनुं अपिन्वतं = गौको पुष्ट करो।

[१९] गाइयोंसे भोजन मिलता है।

विमद ऐन्द्रः । इन्द्रः । प्रस्तारपङ्क्तिः । (ऋ० १०।२२।१३)

अस्मे ता त इन्द्र सन्तु सत्याऽहिंसन्तीरुपस्पृशः ।
विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः ॥ ४० ॥

हे इन्द्र ! (ते ताः उपस्पृशः) तेरी ये मर्यादायें (अस्मे अहिंसन्तीः सत्याः सन्तु) हमारे लिए

अहिंसक एवं सच्ची हों। हे (वज्रिवः) वज्रधारी! (धेनूनां न) गायोंके समान, (यासां भुजः चिधाम) जिनके कारण हम भोगोंको प्राप्त करें।

धेनूनां भुजः चिधाम = गौओंसे हमें भोजन मिलता है।

[२०] अरण्यमें गायें चरती रहें।

देवमुनिरैरम्मदः। अरण्यानी। अनुष्टुप्। (ऋ. १०।१४६।३)

उत गाव इवादन्त्युत वेश्मेव दृश्यते।

उतो अरण्यानिः सायं शकटीरिव सर्जति ॥ ४१ ॥

इस अरण्यमें (उत गावः इव अदन्ति) या तो गायें चर रही हैं ऐसा भान पड़ता है (उत) या (वेश्म इव दृश्यते) घर जैसा कुछ दिखाई दे रहा है। (उत) और यह (अरण्यानिः) वन (सायं) सायंकालके समय (शकटीः सर्जति इव) मानो गाड़ियोंको भेज रही है ऐसा भान पड़ता है।

गौवें अरण्यमें चरती हैं सायंकालमें गोठेमें लौटी आती हैं वहां गाड़ियों द्वारा उनके लिये सब पदार्थ मिलते रहते हैं।

[२१] पर्वत पर गायोंका चरना।

अयास्य आङ्गिरसः। बृहस्पतिः। त्रिष्टुप्। (ऋ. १०।६८।२)

साध्वर्या अतिथिनीरिषिराः स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः।

बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥ ४२ ॥

(अतिथिनीः) सतत घूमनेवाली (साधु अर्याः) सज्जनोंके समीप जानेवाली (इषिराः स्पार्हाः) इच्छा करने योग्य, स्पृहणीय (सुवर्णाः अनवद्यरूपाः) अच्छे वर्णवाली प्रशंसनीय स्वरूपवाली (गाः पर्वतेभ्यः) गायोंको पहाड़ोंको भीतरसे बृहस्पतिने (वितूर्य) बाहर निकालकर (स्थिविभ्यः यवं इव) ध्यान देनेवालोंसे जौ खरीदकर जैसे बोते हैं, वैसे ही (निः ऊपे) देवोंके निकट पहुँचाया।

(अतिथिनीः) सतत घूमनेवाली अथवा अतिथिका जिससे सत्कार होता है (साधु-अर्याः) सज्जनोंके पास रहनेके लिये योग्य (इषिराः स्पार्हाः) दूध आदि अन्न देनेवाली अतएव स्पृहणीय (सु-वर्णाः) सुंदर रंगोंसे युक्त, तेजस्वी रंगवाली (अन्-अवद्य-रूपाः) उत्तम रंगरूपवाली अत्यंत शोभायमान (गाः) गौवें हैं। वे (पर्वतेभ्यः) पर्वतोंपरसे चराकर वापस लाई जाती हैं।

उत्तम गौओंके गुण यहां कहे हैं।

[२२] गायको चारों ओर घुमाना।

शिरिम्बिठो भारद्वाजः। विश्वेदेवाः (इन्द्रः) अनुष्टुप् (अथर्व ६।२८।१)

भृगुः। यमः निर्ऋतिः। त्रिष्टुप्। (ऋ. १०।१५५।५, वा. य. ३५।१८)

परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत। देवेष्वक्रत भयः क इमान् आ दधर्षति ॥ ४३ ॥

(इमे) ये (गां परि अनयत) गायको चारों ओर लेगये तथा अग्निको (परि अहृषत) चारों ओर घुमाचुके (देवेषु भयः अक्रत) देवोंमें भयका उत्पादन किया अतः (इमान् कः आ दधर्षति) इन्हें कौन भला आक्रान्त कर सकता है।

इमे गां परि अनेषत = गायको चारों ओर घुमाते हैं।

कपोतो नैर्ऋतः। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप् (ऋ० १०।१६५।५)

ऋच्या कपोत नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयध्वम्।
संयोपयन्तो दुरितानि विश्वा हित्वा न ऊर्जं प्र पतात्पतिष्ठः ॥ ४४ ॥

(प्रणोदं कपोत) प्रकर्षसे प्रेरणीय कबूतरको (ऋच्या नुदत) ऋचासे प्रेरित करो और (मदन्तः) हर्षित होते हुए (इषं गां परि नयध्वं) अन्न देनेवाली गायको चारों ओर ले चलो, (विश्वा दुरितानि) सभी बुराइयोंको (संयोपयन्तः) मिटाते हुए रहो; (पतिष्ठः) खूब उडनेवाला कबूतर (नः ऊर्जं हित्वा) हमारे बलदायक अन्नको छोडकर (प्र पतात्) खूब उडना शुरु करे।

इषं गां परि नयध्वं = अन्न देनेवाली गौको चारों ओर लेजाकर घुमाओ।

[२३] गायोंको उत्तम वायु, घास और जल मिले।

शबरः काक्षीवतः। गावः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।१६९।१)

मयोभूर्वातो अभि वातूस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ताम्।
पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृळ ॥ ४५ ॥

(वातः मयोभूः) वायु सुखकारक होकर (उस्राः अभि वातु) गायोंके समीप बहता रहे और वे (ऊर्जस्वतीः ओषधीः आ रिशन्तां) बलयुक्त वनस्पतियोंका आस्वाद या भक्षण चारों ओरसे करती रहें एवं (पीवस्वतीः जीवधन्याः पिबन्तु) पुष्टिकारक और जीवोंको धन्य करनेवाले जल प्रवाहोंका पान कर लें। हे (रुद्र) वैद्य (पद्वते अवसाय मृळ) पैरोंसे युक्त इस गोरूप धनको सुख दे दो। इस मन्त्रमें निम्न लिखित उपदेश है-

१ मयोभूः वातः उस्राः अभिवातु = सुख देनेवाला वायु गौओंपर बहता रहे, अर्थात् बुरे वायुमें गौवें न रखी जांय।

२ ऊर्जस्वतीः ओषधीः आ रिशन्तां = बल देनेवाली औषधियोंको गौवें खावें। अर्थात् गायोंको उत्तम घास खानेके लिये मिले।

३ पीवस्वतीः जीवधन्याः पिबन्तु = पुष्टिकारक तथा जीवको धन्य करनेवाले जल गायें पीवें। अर्थात् उत्तम शुद्ध जल गौओंको पीनेके लिये मिलें।

४ अवसाय पद्वते मृळ = दूध आदि अन्न देनेवाले पशुओंको सुखी कर। इनको किसी तरहके कष्ट न हों। गायोंकी पालना इस तरह होनी चाहिये।

[२४] ग्वाले गोसमूहको इकट्ठा करते हैं।

विमद ऐन्द्रः। इन्द्रः। जगती। (ऋ० १०।२३।६)

स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्नपूर्व्यं पुरुतमं सुदानवे।
विद्मा ह्यस्य भोजनमिनस्य यदा पशुं न गोपाः करामहे ॥ ४६ ॥

हे इन्द्र! (विमदाः) विमद परिवारमें उत्पन्न लोग (ते) तेरे लिए जो कि (सु-दानवे) अच्छा दानी है (अपूर्व्यं पुरुतमं) अभूत पूर्व अत्यन्त अधिक स्तोत्रका (अजीजनन्) उत्पन्न कर रखा है (अस्य इनस्य) इस प्रभुके (भोजनं विद्म हि) भोजनको हम जानते हैं, (यत्) जब (गोपाः पशुं न) ग्वाले गोसंघको जिस तरह इकट्ठा करते हैं वैसे ही (आ करामहे) चारों ओरसे उसे बटोर लेते हैं।

[२५] गौको पुष्ट करनेहारा दीर्घ जीवन पाता है ।

गोतमो राहूगणः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।८४।१६)

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून्हृत्स्वसो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥ ४७ ॥

(अद्य) आज (ऋतस्य धुरि) यज्ञकी धुरामें (शिमीवतः) बलिष्ठ (भामिनः) तेजस्वी (दुर्हृणायून्) अत्यधिक उत्साहसे युक्त (आसन्-इषून्) जिनके मुँहमें शत्रुपर फेंकनेके लिए बाण रखे हों ऐसी (हृत्सु असः) शत्रुओंपर पादाघात करनेवाली तथा (मयः भून्) सुखदायक (गाः) गौएँ (कः युङ्क्ते) कौन भला जोत सकता है ? (यः एषां भृत्यां) जो इन गौओंका पोषण (ऋणधत्) कर सकता है (सः जीवात्) वही जीवित रह सकता है ।

यज्ञमें जो लोग गौओंको प्रमुख स्थानमें रखते हैं और उनका भलीभाँति पोषण करते हैं वे दीर्घ जीवन अवश्य पाते हैं।

आसन् इषुम् = गौके मुँहमें बाण रहते हैं अर्थात् गौएँही शत्रुओंका पराजय करती हैं अथवा गौओंके संरक्षक बाणोंसे गौकी रक्षा करते हैं ।

मयोभूम् गाः भृत्यां ऋणधत् स जीवात् = सुख देनेवाली गौओंके पोषणकी व्यवस्था जो करते हैं वे ही जीवित रहते हैं ।

वामदेवो गौतमः । क्षेत्रपतिः । अनुष्टुप् (ऋ० ४।५७।१)

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृळातीदृशे ॥ ४८ ॥

(वयं) हम (हितेन इव) मानो हितके समान (क्षेत्रस्य पतिना) क्षेत्रके मालिककी सहायतासे (जयामसि) विजयी बनते हैं । (सः) वह (गां अश्वं) गाय और घोडेका (पोषयित्नु) पोषण कर्ता होकर (नः) हमें (ईदृशे) ऐसे अवसरपर (आ मृळाति) पूर्णतया सुख देता है ।

गां पोषयित्नु मृळाति = गौका पोषणकर्ता सुख देता है ।

[२६] यहाँ गौवें बढें ।

त्रिष्टुप् । (अथर्व २ ।।२६।।२)

इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः ।
इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदति ॥ ४९ ॥

(इह गावः प्रजायध्वं) इधर गौएँ उत्पन्न हों (इह अश्वाः इह पुरुषाः) इधर ही घोडे तथा वीर पुरुष अस्तित्वमें आ जायँ । (सहस्रदक्षिणः पूषा अपि) हजारों दक्षिणा देनेवाला पूषा भी (इह निषीदति) इधर बैठता है ।

इह गावः प्रजायध्वं = यहां गौओंकी प्रजा वृद्धिको प्राप्त हो यहां गौवें संख्यामें बढें ।

[२७] गोस्थानमें गायें उत्पन्न हों ।

ब्रह्मा । वास्तोष्पतिः । पञ्चपदा ककुम्मत्यतिजगती (अथर्व १२।१।११)

वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि ॥ ५० ॥

(वाचस्पते) हे वाणीके पति ! हमारा (मनः सौमनसं) मन उत्तम शुभ संकल्पसंयुक्त हो । (नः गोष्ठे गाः जनय) हमारी गोशालामें गायोंकी निर्मिति कर और (योनिषु प्रजाः) घरोंमें सन्तानोंको

स्पष्ट कर। यहाँ हमारी मित्रतामें यह प्राण रहे, हे परमेष्ठिन्! इस पुरुषको (अहं आयुषा वर्चसा धामि) मैं आयु और तेजके साथ धारण करता हूँ।

गोष्ठे गा जनय = गोशालामें गायें उत्पन्न हों।

[२८] गौओंका निवास कराओ।

ब्रह्मा। अध्यात्म। त्रिष्टुप् (अथर्व १३।१।२)

उद्राज आगन् यो अप्स्वन्तर्विश आ रोह त्वद्योनयो याः।
सोम दधानोऽप ओषधीर्गाश्चतुष्पदो द्विपद आ वेशयेह ॥ ५१ ॥

(यः अप्सु अन्तः) जो आपोमय प्राणोंके अन्दर विद्यमान है वह (वाजः उत् आगन्) सामर्थ्य ऊपर आ गया है (याः त्वत्-योनयः विशः) जो तेरी जातिकी प्रजाएँ हैं उनमें तू (आरोह) उच्च स्थानमें विराजमान हो। (इह सोमं दधानः) इस राष्ट्रमें सोमादि वनस्पतियोंका पोषण करते हुए (अपः ओषधीः गाः चतुष्पदः द्विपदः) जल वनस्पतियाँ, गायें चौपाये तथा द्विपाद प्राणियोंको (आवेशय) निवास कराओ।

इह गाः आवेशय = यहां गौओंका निवास कराओ।

[२९] गोचर भूमि।

आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। वरुणः। गायत्री (ऋ. १।२५।१६)

परा मे यंति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु। इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥ ५२ ॥

(गावः गव्यूतीः न) गौएँ जिस प्रकार गोचर भूमिकी ओर चली जाती हैं उसी प्रकार (मे धीतयः) मेरी बुद्धियाँ (उरुचक्षसं) विशेष तेजस्वी देवको (अनु इच्छन्तीः) चाहती हुई उसीके समीप (परायन्ति) दौड़ती हैं।

गव्यूतिः - (गो-यूतिः) गौका रक्षण करनेहारी भूमि चरनेकी जगह गोचर भूमि pasturage ground Pasturage meadow or measure of distance egual to two koshas (कोस)

गौओंके चरनेकी जगहपर जैसी गौवें आनन्दसे जाती हैं वैसी भक्तकी बुद्धियां ईश्वरके पास जाती हैं। यहां ' गोचर भूमिमें गौओंके जानेकी उपमा है। उपमा उसकी होती है जो सबको प्रसिद्ध रहती है। अतः यह स्पष्ट है कि गोचर भूमि वैदिक सभ्यतामें एक प्रसिद्ध वस्तु थी।

अथर्वाङ्गिराः। सविता जातवेदाः। अनुष्टुप्। (अथर्व ७।११५।४)

एता एना व्याकरं खिले गा विष्ठिता इव।
रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम् ॥ ५३ ॥

(खिले विष्ठिताः गाः इव) गोचर भूमिपर बैठी हुई गायोंके समान (एताः एनाः वि-आकरं) इन इन मनोवृत्तियोंको मैं अलग अलग करता हूँ अर्थात् (याः पुण्याः लक्ष्मीः रमन्तां) जो पुण्य कारक सुविचाररूपी लक्ष्मियाँ हैं वे आनन्दसे मेरे अन्दर रहें। (याः पापीः ताः अनीनशं) जो पापी वृत्तियाँ हैं उनका मैं नाश कर चुका हूँ।

यहां गोचर भूमिमें गौओंके बैठनेका उल्लेख है। गोचर भूमिमें गौओंको रहने देना है और अन्य पशुओंको वहांसे दूर करना है। इसी तरह मनमें शुभ वृत्तियोंको रहने देना है और अशुभ वृत्तियोंको दूर करना है। गोचर भूमिमें केवल गौवें ही चरती रहें अन्य पशु वहांका नाम न जावें, इस विषयमें यह मंत्र देखने योग्य है।

[२०] गोचर भूमिपर जलसिंचन।

ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ । गायत्री। (ऋ. ८।५।६)

ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणीं । घृतैर्गव्यूतिं उक्षतं ॥ ५४ ॥

(सुदेवाय दाशुषे) अच्छे देवोंकी भक्ति करनेवाले दाताके लिए (सुमेधां) अच्छी मेधावाली (अवितारिणीं गव्यूतिं) अविनाशी गोचर भूमिको (ता) वे तुम दोनों अश्विनौ (घृतैः उक्षतं) जलोंसे सींच दो।

गोचरभूमिमें उगनेवाला घास गौओंके लिये ही रखा रहता है वह पर्याप्त मात्रामें गौओंको खानेके लिये मिले इसलिये इस मंत्रमें देवोंसे प्रार्थना की है कि, वे इस गोचर भूमिपर जलसिंचन करें वृष्टि करें जिससे पर्याप्त प्रमाणमें जल मिलकर वहां उत्तम घास उगे, जो गायोंको खानेके लिये मिले।

गायोंकी समृद्धि करनेहारी भूमि।

विश्वामित्रो गाथिनः। अग्निः। त्रिष्टुप् (ऋ. ३।१।२३)

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५५ ॥

हे अग्ने! (हवमानाय) हवन करनेवालेके पास (पुरुदंसं) विविधतया अन्न देनेवाली और (गोः सनिं) गायोंकी समृद्धि करनेहारी (इळां) भूमि (शश्वत्तमं) हमेशाही रहे ऐसे ढंगसे (साध) साधना करो; (नः सूनुः तनयः) हमारा पुत्र वंशविस्तार करनेहारा होकर (विजावा स्यात्) पुत्र पौत्रोंसे युक्त बने हे अग्ने! (अस्मे) हमें (ते सा सुमतिः) तेरा वह अच्छा आशीर्वाद (भूतु) प्राप्त हो जाए।

गोःसनिं इळां साध = गौओंकी समृद्धि करनेवाली भूमिको प्राप्त करो। इससे प्रतीत होता है कि, भूमियाँ दो प्रकारकी होती हैं एकमें उगनेवाले घाससे गौओंका सुधार होता जाता है और दूसरी भूमिके घाससे गौओंका पतन चला जाता है अथवा घास न उगता है। अतः गृहस्थीका यह कर्तव्य होता है कि वह अपनी गौओंके लिये ऐसी भूमि प्राप्त करे कि जिसमें गौएँ पुष्ट होती जाय और जिनका दूध पीकर पुत्र पौत्र भी हृष्टपुष्ट होते रहें।

जौके खेतकी ओर गाय जाती है।

देवातिथिः काण्वः। इन्द्रः पूषा वा। सतो बृहती (ऋ. ८।४।१८)

परा गावो यवसं कच्चिदाघृणे नित्यं रेक्णो अमर्त्य ।
अस्माकं पूषन्नविता शिवो भव मंहिष्ठो वाजसातये ॥ ५६ ॥

हे (अमर्त्य!) अमरत्वशील! (आघृणे) प्रदीप्त तेजवाले देव! (यवसे गावः परा) जौके खेतकी ओर गायें भागती जाती हैं उसी प्रकार यह हमारा गोधन हमारे पास (नित्यं रेक्णः) स्थायी संपत्ति बनकर रहे। हे (पूषन्) पोषणकर्ता! (अस्माकं वाजसातये) हमारे अन्नके दानके लिए (अविता शिवः मंहिष्ठः भव) तू संरक्षक कल्याणकर्ता एवं महान दानी बन जा।

जौके खेत गौओंके खानेके लिये बनाये जाते थे ऐसा इससे पता लगता है। जौके तिनके खानेसे गौका उत्तम पोषण होता होगा। जौके खेतमें गायें जाती हैं, ऐसे वर्णन वेदमंत्रोंमें अनेकवार आते हैं इस विषयके कई मंत्र देखिये—

विश्वामित्रो गाथिनः। इन्द्रः। बृहती। (ऋ० ३।४५।३)

गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥ ५७ ॥

हे इन्द्र! (गम्भीरान् उदधीन् इव) गहरे समुद्रके समान गंभीर या (गाः इव) गायोंके समान पोषक (क्रतुं) कर्मको (पुष्यसि) तू परिपूर्ण करता है। (सु-गोपाः धेनवः) भली भाँति पालन की हुई गौएँ (यवसं) जिस तरह जौके खेतकी ओर चली जाती हैं या (यथा कुल्याः ह्रदं इव) जिस प्रकार छोटे स्रोत बडे तालाबमें मिल जाते हैं वैसे ही सोमरस (प्र आशत) तुझको प्राप्त होते हैं।

सुगोपा धेनवः यवसं = उत्तम पालन की हुई गौएँ जौके खेतमें जाती हैं जैसे स्रोत तालाबमें पहुँचते हैं। गौओंका जौके खेतमें जाना स्वाभाविक है यह इससे प्रतीत होता है। तथा—

श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः। इन्द्रः। गायत्री। (ऋ० ८।९२।१२)

वयमु त्वा शतक्रतो गावो न यवसेष्वा।
उक्थेषु रणयामसि ॥ ५८ ॥

हे (शतक्रतो) सौ कार्य करनेवाले! (वयं त्वा उ) हम तुझेही (यवसेषु गावः न) जौके खेतमें गायें जिस प्रकार रममाण होती हैं वैसे ही (उक्थेषु आ रणयामसि) स्तोत्रोंमें पूर्णतया रममाण कर देते हैं।

गायें जौके खेतमें रममाण होती हैं। और भी देखो—

गोतमो राहूगणः। सोमः। गायत्री। (ऋ० १।९१।१३)

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा।
मर्य इव स्व ओक्ये ॥ ५९ ॥

हे सोम! (नः हृदि) हमारे अंतःकरणोंमें तू (गावः यवसेषु न) गौएँ जिस प्रकार जौके खेतोंमें आनन्दपूर्वक संचार करती हैं उसी प्रकार और (स्वे ओक्ये मर्यः इव) अपने निजी घरमें मानव सुखी होता है वैसे ही (रारन्धि) रममाण बन।

इसमें भी जवके खेतमें गौओंका आनन्दित होना लिखा है, तथा—

त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः। इन्द्रावरुणौ। त्रिष्टुप्। (ऋ० ४।४२।१०)

राया वयं ससवांसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः।
तां धेनुमिन्द्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् ॥ ६० ॥

हे इन्द्र और वरुण! (वयं ससवांसः) हम धनका बँटवारा करनेवाले हैं, इसलिए (राया मदेम) धनसे हर्षित होते हैं जैसे (देवाः हव्येन) देवतागण हवनसे या (गावः यवसेन) गौएँ जवसे प्रसन्न होती हैं; (युवं) तुम दोनों (विश्वाहा) सदैव (नः) हमारे लिए (तां धेनुं) उस गायको (अनपस्फुरन्तीं धत्तं) स्थिर रूपसे रख दो अर्थात् जैसे वह हमें छोडकर चंचलतासे इधरउधर न चली जाय ऐसा प्रबंध कर डालो।

यवसेन गावः = जौके खेतसे गौएँ प्रसन्न होती हैं और पुष्ट भी होती हैं। इन गौओंमेंसे जो गौ 'अनपस्फुरन्ती धेनुं धत्त' = दूध देनेके समय न हिलती हुई जो स्थिर और शान्त रहती है ऐसी गौ हमारे घरमें रहे।

१

(श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । पंक्तिः । (ऋ. ५।५३।१६)

स्तुहि भोजान्त्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे ।

यतः पूर्वाँ इव सखीन् अनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥ ६१ ॥

(स्तुवतः अस्य यामनि) प्रशंसा करते हुए इसके प्रयाणमें (भोजान् स्तुहि) दानी लोगोंकी स्तुति करो (यवसे गावः न) जैसे खेतसे गायें जैसे हर्षित होती हैं वैसे ही ये (रणन्) हर्ष रममाण हों, (पूर्वान् सखीन् इव) पुरातन मित्रोंके समान (यतः अनु ह्वये) यात्रा करनेवाले वीर मरुतोंको मैं बुलाता हूँ। (कामिनः गिरा गृणीहि) ये प्रबल इच्छावाले हैं, अतः भाषणसे इनकी स्तुति करो।

गावः यवसे = गायें घासके खेतके लिये आतुर रहती हैं। यह भाव इस मंत्रमें स्पष्ट दीखती है। यथा—

[३३] अच्छे घासके साथ गायका दोहन।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (ऋ. ७।१८।४)

धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः ।

त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहाऽऽन इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छ ॥ ६२ ॥

(सूयवसे धेनु न) अच्छे जौके घाससे युक्त स्थानमें जैसी गायको जैसे दुहते हैं, वैसे ही वसिष्ठ (त्वा दुदुक्षन्) तुझको दुहनेकी इच्छा करता हुआ (ब्रह्माणि उप ससृजे) स्तोत्रोंका निर्माण कर चुका। (मे विश्वः) मेरे सभी लोग (त्वां इत्) तुझे ही (गोपतिं आह) गौओंके अधिपतिके नाते पुकारते हैं, (नः सुमतिं अच्छ) हमारी सुन्दर स्तुतिके प्रति (इन्द्रः आ गन्तु) प्रभु आ जाए।

सुयवसे धेनु दुदुक्षन् = उत्तम जौके खेतमें रहती अथवा उत्तम जौका घास जिसके पास रखा है ऐसी गौ दुही जाय। यह दोहन समयकी प्रथा देखने योग्य है। दोहनके समय उत्तम जौका घास गायके सामने रखना योग्य है। उत्तम चारा खाती हुई गाय दुही जाय।

[३४] पर्वतपर गौओंको चराना

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ. १।७।३)

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६३ ॥

इन्द्रने (दीर्घाय चक्षसे) दूरसे प्रकाश दीख पडे इसलिए (सूर्यं) सूर्यको (दिवि) द्युलोकमें (आरोहयत्) ऊपर प्रस्थापित किया और (गोभिः) गौओंके साथ (अद्रिं) पहाडपर (वि ऐरयत्) विशेष वेगसे प्रयाण किया।

यहाँपर सूचना दी है कि गौओंको चरानेके लिए पहाडोंपर भेजा जाय। पर्वत गोचर भूमि है इसीलिए पर्वतको गोत्र नाम दिया है। पर्वत गायोंका संरक्षण करनेवाला है। गोभिः अद्रिं व्यैरयत् = अनेक वीर गाय लेकर पर्वतपर गौओंको चरानेके लिये ले जाना वर्णित है।

[३५] गायोंको पानी पिलाना।

कुत्स आङ्गिरसः । अश्विनौ । जगती । (ऋ. १।११२।१८)

याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः ।

याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ६४ ॥

हे अंगिरस ऋषिवर ! हे अश्विनौ ! (याभिः मनसा निरण्यथः) जिन संरक्षण शक्तियोंसे तुमने उपासकोंको संतुष्ट किया और (गो-अर्णसः) गौओंको जल देनेके लिए उस (विवरे) गुहामें तुम

(अग्रम्) प्रथम ही (पश्चळ्या) घुस चुके हो (याभिः) जिन संरक्षक शक्तियोंसे (शूर मनुं) पराक्रमी मनुको (इषा) अन्न देकर समृद्ध किया और (सं आवतं) उसका भलीभाँति संरक्षण) किया, (ताभिः ऊतिभिः आगतं) उन्हीं संरक्षणक्षम शक्तियोंसे हमारे समीप पधारो।

गो-अर्णस् = गायोंका समूह गौओंके लिए जल।

गो-अर्णसः विवरे अग्रं गच्छन्तः = शत्रुओंने गायोंको पकडकर गुफामें बंद कर रखा तब सबसे पहले आश्विनीदेव वहाँ गये और उन्होंने उन गायोंको जल पीने दिया।

[३६] गायको घास और पानी शुद्ध मिले।

ब्रह्मा। गावः। त्रिष्टुप्। (अथर्व ७।७३।१०)

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्ती॑ शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्ती॑।
मा वस्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥ ९५ ॥

(प्रजावतीः) उत्तम बच्चोंवाली (सु-यवसे रुशन्तीः) उत्तम जौके घासके लिये भ्रमण करनेवाली, (सु-प्रपाणे शुद्धाः अपः पिबन्तीः) उत्तम जलस्थानमें शुद्ध जल पीनेवाली गौवों! (स्तेनः अघशंसः वः मा ईशत) चोर और पापी तुमपर अधिकार न करे। (वः रुद्रस्य हेतिः परि वृणक्तु) तुम्हारी रक्षा रुद्रके शस्त्रसे चारों ओरसे होवे।

गौवें उत्तम बछडोंसे युक्त हों। वे उत्तम घास खा और शुद्ध स्थानका पवित्र जल पीयें। कोई पापी या चोर उनका स्वामी न बने और वे सर्वदा सुरक्षित रहें।

गौवें (प्रजावतीः) उत्तम बछडोंसे युक्त हों (सु-यवसे रुशन्तीः) उत्तम जौके घासको प्राप्त करनेवाली हों और (सु-प्रपाणे शुद्धाः आपः पिबन्तीः) उत्तम तालाबमें शुद्ध जल पीती रहें। गायोंको उत्तम घास और शुद्ध जल मिले।

[३७] नदियोंका पानी पीनेवाली गौवें।

मेधातिथिः काण्वः। (पूर्वार्धस्य) आपः (उत्तरार्धस्य) अग्निः। गायत्री (ऋ. १।२३।१८)

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः। सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥ ९६ ॥

(नः गावः) हमारी गौएं जहाँका पानी (पिबन्ति) पीती हैं (ताः देवीः आपः) उन दिव्यगुण युक्त जलोंसे मैं (उप ह्वये) प्रार्थना करता हूँ कि वे समीप आजायें। उन (सिन्धुभ्यः हविः कर्त्वं) नदियोंको मैं हविर्भाग दे देता हूँ।

हमारी गौवें जिधर पानी पीती हैं उन नदियोंकी स्तुति की जाती है। गौओंके कारण नदियोंका महत्व बढ जाता है ऐसा यहाँ सूचित किया है। (नः गावः यत्र पिबन्ति ताः देवीः आपः) = हमारी गौवें जहाँ पानी पीती हैं वे दिव्य जलप्रवाह पवित्र हो।

[३८] जलके उत्तम गुणसे गौएं बलशाली होती हैं।

सिन्धुद्वीपः। आपः। गायत्री ४ पुरस्ताद् बृहती (अथर्व १।४।३, ४)

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः। सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥ ९७ ॥
अप्सु अन्तरमृत अप्सु भेषजम्। अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनः।
गावो भवथ वाजिनीः ॥ ९८ ॥

(यत्र नः गावः पिबन्ति) जहाँ हमारी गौएं जल पीती हैं उन दिव्य जलोंका हम (उपह्वये) यश गाते हैं। नदियोंके लिये हवि अर्पण करते हैं। (अप्सु अन्तः अमृत) जलोंमें अमृत है (अप्सु

भेषज) जलोंमें औषधिगुण हैं। (उत अपां प्रशस्तिभिः) इन जलोंके प्रशंसनीय गुणोंसे (अश्वाः वाजिनः) घोड़ बलवाली होते हैं और (गावः वाजिनीः) गौवें बलवती होती हैं।

उत्तम जलपान द्वारा गौओंका बल बढाना चाहिये।

[३९] गौओंके लिए उत्तम जलस्थान बने।

कण्वो घौरः। मरुतः। गायत्री (ऋ० १।३७।११)

उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत। वाश्रा अभिज्ञु यातवे॥ ६९॥

(त्ये गिरः सूनवः) ये वाणीके पुत्र अर्थात् वक्ता वीर (अज्मेषु) शत्रु पर हमला किये जानेवाले हमलोंमें (काष्ठाः) विभिन्न दिशाओंमें अपने आक्रमणोंकी सीमाएं बढा चुके हैं याने (वाश्राः) रँभानेवाली गौओंको (यातवे अभिज्ञु) चलते समय सिर्फ घुटनेतकके पानीमेंसे चलना पडे उसी प्रकार (उत् उ अत्नत) उन्होंने प्रयत्न किया।

इन वीरोंने भूमिपर विद्यमान ऊबडखाबड स्थान मिटा दिये जमीन समतल बना डाली सडकें चौडी कर रखी और भारी बाढ आनेपर भी गौओंके लिए वह पानी सिर्फ घुटनोंतक ही पहुँच जाए ऐसा प्रबंध कर रखा। दुश्मनों पर चढाई करनेके लिए प्रथम तो ऊँच नीच स्थान मिटादेने चाहिए समतल भूमि रहे ताकि सेनाओंको हमला करनेमें कोई कठिनाई न हो, इसलिए जमीनको साफ सुथरा करके उन्होंने आक्रमणका क्षेत्र बढा दिया। वे वीर गौओंके लिये पानीका उत्तम प्रबंध करते हैं।

अत्रिर्भौमः। पर्जन्यः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ५।८३।८)

महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात्।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः॥ ७०॥

(महान्तं कोशं) बडे भारी भाण्डारको (उत् अच) ऊपर उठाकर (नि सिञ्च) नीचे उँडेल दो (पुरस्तात्) हमारे सामनेसे (विषिताः कुल्याः स्यन्दन्तां) भरी हुई छोटी छोटी नदियाँ बहने लगें (द्यावापृथिवी घृतेन) आकाश और भूलोकको जलसे (वि उन्धि) विशेष ढंगसे आर्द्र कर तथा (अघ्न्याभ्यः सुप्रपाणं भवतु) गायोंके लिए सुन्दर पीनेकी जगह या अच्छी पियाऊ बन जाए।

अघ्न्याभ्यः सुप्रपाणं भवतु = गौओंके लिये सहज ही ये उत्तम पानी मिले ऐसा प्रबंध करना योग्य है। पानीके लिये किसी तरह गौओंको कष्ट न हो।

[४०] देवोंने गायोंकी उत्पत्ति की है।

वसुकर्णो वासुक्रः। विश्वेदेवाः। जगती। (ऋ० १०।६५।११)

ब्रह्म गामश्वं जनयन्त ओषधीर्वनस्पतीन्पृथिवीं पर्वताँ अपः।
सूर्यं दिवि रोहयन्तः सुदानव आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि॥ ७१॥

(गां अश्वं) गाय घोडे सदृश उपयुक्त पशु (ब्रह्म ओषधीः) ज्ञान औषधियाँ (वनस्पतीन्) पेडों (पृथिवीं पर्वतान् अपः) भूमि पहाड तथा जल (जनयन्त) पैदा करते हुए (दिवि सूर्यं रोहयन्तः) द्युलोकमें सूर्यको चढाते हुए (सु-दानवः) अच्छे दानी देव (अधि क्षमि) पृथ्वीपर (आर्या व्रता विसृजन्तः) अच्छे व्रतोंका सृजन करते हैं।

सुदानवः गां जनयन्त = देवोंने गायकी उत्पत्ति की है।

[४१] भूतोंके निर्माताने गायें बनायीं ।

ब्रह्मा । वशिनी । अतिजगतीगर्भा चतुष्पदाति जगती । (अथर्व ३।१८।१)

एकैकयैषा सृष्ट्या सं बभूव यत्र गा असृजन्त भूतकृतो विश्वरूपाः ।
यत्र विजायते यमिन्यपर्तुः सा पशून् क्षिणाति रिफती रुशती ॥ ७२ ॥

(यत्र भूतकृतः) जहाँ भूतोंको बनानेवालोंने (विश्वरूपाः गाः असृजन्त) अनेक रंगरूपवाली गायें बनायीं, वहाँ (एषा) यह गौ (एक एकया सृष्ट्या सं बभूव) एकएकके क्रमसे बछड़ा उत्पन्न करनेके लिए उत्पन्न हुई है, (यत्र) जहाँपर (अप ऋतुः यमिनी विजायते) ऋतुकालसे भिन्न समयमें जुड़े बच्चोंको जननेवाली गाय पैदा होती है, वहाँ (सा रुशती रिफती) वह गाय पीड़ा देती हुई और कष्ट उत्पन्न करती हुई (पशून् क्षिणाति) पशुओंको नष्ट करती है ।

भूतकृतः गाः असृजन्त = भूतोंके बनानेवाले देवोंने गायोंकी उत्पत्ति की है ।

[४२] गाय मानवको हीन समझती है ।

दीर्घतमा औचथ्यः । विश्वेदेवाः । जगती (ऋ० १।१६४।२९)

अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥ ७३ ॥

देखो (सः अयं शिङ्क्ते) यह बछड़ा चिल्ला रहा है (येन गौः अभिवृता) जो गायको घेरकर खड़ा है और वह गौ (ध्वसनौ अधि श्रिता) गोशालामें खड़ी रहकर रँभाती है, उस समय (सा हि) वह गौ सचमुच ही (चित्तिभिः मर्त्यं नि चकार) अपने ज्ञानपूर्वक कर्मोंसे मानवको भी कम उपयोगी मानती है यह जब (विद्युत् भवन्ती) तेजस्विनी बनती है, तब (वव्रिं प्रति औहत) अपना सुन्दर रूप प्रकट करती है ।

गौः मर्त्यं नि चकार = गाय मानवोंको अपनेसे कम मानती है अर्थात् गाय अधिक उपयोगी है ।

[४३] गौ और बैल यज्ञके लिये हैं ।

मृगारः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (अथर्व ४।२४।४)

यस्य वशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे ।
यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ७४ ॥

(यस्य वशासः ऋषभासः उक्षणः) जिसके कार्यके लिए गायें बैल और सांड होते हैं (यस्मै स्वर्विदे स्वरवः मीयन्ते) जिस आत्मिक बलवालेके लिए सब यज्ञ होते हैं (यस्मै ब्रह्म शुम्भित शुक्रः पवते) जिसके वेदोच्चारसे पवित्र हुआ सोम शुद्ध किया जाता है । वह (नः अंहसः मुञ्चतु) हमें पापसे छुड़ावे ।

यस्य वशासः ऋषभासः उक्षणः = गौवें बैल और सांड अथवा सोम जिसके लिये होते हैं वह इन्द्र है । अर्थात् गायें अपने दूधसे बैल बल उत्पन्न करके और उत्तम गौवें निर्माण करने द्वारा तथा सोम अपने रस द्वारा यज्ञ संपादन करते हैं, वह यज्ञ इन्द्रके लिये किया जाता है ।

[४४] यज्ञसे गौवें सुख पहुंचाती हैं।

ब्रह्मा । गावः । जगती (अथर्व ४।२१।३)

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ॥ ७५ ॥

(ताः न नश्यन्ति) वह यज्ञकी गौवें नष्ट नहीं होती (तस्करः न दभाति) चोर उनको दबाता नहीं (आसां व्यथिः अमित्रः न आ दधर्षति) इनको व्यथा करनेवाला शत्रु इनपर अपना अधिकार नहीं चलाता (याभिः देवान् यजते) जिनसे देवोंका यज्ञ किया जाता है। और (ददाति च) दान दिया जाता है, (गोपतिः ताभिः सह ज्योक् इत् सचते) गोपालक उनके साथ चिरकालतक रहता है।

इन गौवोंका नाश नहीं होता चोर उनको नहीं चुराता है। न इनको कोई कष्ट देता है। इनके दूधसे देवोंका यज्ञ किया जाता है। इस प्रकार गौवोंका पालनकर्ता गौवोंके साथ चिरकाल आनन्दमें रहता है।

१ याभिः देवान् यजते = जिन गौवोंसे देवोंका यज्ञ किया जाता है
२ ताः न नश्यन्ति = वे गौवें नष्ट नहीं होतीं
३ तस्करः ताः न दभाति = चोर उन गौवोंको नहीं दबाता
४ आसां अमित्रः व्यथिः न आदधर्षति = इन गौवोंका शत्रु भी इनको कष्ट नहीं पहुंचा सकता
५ ताः ददाति = गौवोंका स्वामी गौवोंका दान करता है
६ गोपतिः ताभिः सह ज्योक् सचते = गौवोंका स्वामी उन्हीं गौवोंके साथ चिरकाल सुखोपभोग करता है।

[४५] गौ अग्निके लिए दूध देती है।

विश्वामित्रो गाथिनः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् (ऋ० ३।५८।१)

धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानाऽन्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः ।
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः ॥ ७६ ॥

(धेनुः) गौ (प्रत्नस्य काम्यं) पुरातन अग्निका चाहा हुआ दुग्ध (दुहाना) देती हुई है (दक्षिणायाः पुत्रः) यह दक्षिणाका पुत्र (अन्तः चरति) भीतर यहीं संचार करता है (शुभ्रयामा) शुभ्र रथपर बैठनेवाली उषा (द्योतनिं आ वहति) तेजस्वी सूर्यको ले आती है (उषसः स्तोमः) उषाका स्तोत्र (अश्विनौ अजीगः) अश्विनौको जागृत कर रहा है।

धेनु प्रत्नस्य काम्यं दुहाना = गौ पुरातन कालसे (हमारे साथ रहनेवाले अग्निके लिये) प्रिय (आवश्यक हविष्य पदार्थ अर्थात् दूध घी आदि) देती है।

कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । स्वनयस्य दानस्तुतिः । जगती (ऋ० १।१२५।४)

उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः ।
पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उपयन्ति विश्वतः ॥ ७७ ॥

(सिन्धवः मयः भुवः) नदियोंके समान सुखप्रद (धेनवः) गौवें (ईजानं यक्ष्यमाणं च) यज्ञ करनेहारे और यज्ञ करनेकी इच्छा रखनहारेके समीप (उप क्षरन्ति) जाकर पर्याप्त दूध देती हैं और (पृणन्तं च पपुरिं च) संतुष्ट करनेहारे और परिपूर्ण करनेहारे मानवको (श्रवस्यवः) अन्नसे समृद्ध हुए (घृतस्य धाराः) घीकी धारायें (विश्वतः उप यन्ति) चारों ओरसे समीप प्राप्त होती हैं।

यज्ञके निवासके समीप गायें रहती हैं जिनका दोहन यज्ञके लिए किया जाता है और जल तथा घृत पयस इसमें मिल जाता है।

धेनवः मयोभुवः घृतस्य धाराः उपयन्ति = गायें सुख देनेवाली हैं और घृतका प्रवाह गोपालकके पास जाती हैं अर्थात् पर्याप्त घी देती हैं।

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। अन्नं। अनुष्टुप् बृहती वा। (ऋ. १।१८७।११)

तं त्वा वयं पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुषूदिम।

देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम्॥ ७८॥

हे (पितो) पालनकर्ता! (गावः न हव्या) गायोंको हविष्य चीजें पानेके लिए जैसे दुहते हैं उसी प्रकार (वयं) हम (तं त्वा वचोभिः) ऐसे प्रसिद्ध तुमको भाषणोंसे प्रशंसित कर, (देवेभ्यः सधमादं त्वा) देवोंके साथ रह आनंदित होनेवाले तुमको तथा (अस्मभ्यं सधमादं त्वा) हमारे लिए हर्षित होनेवाले तुमको (सु सूदिम) भली भाँति निचोड लेते हैं।

गावः हव्या = गौवें हवनके लिये दूध और घी प्रदान करती हैं।

गोतमो राहूगणः। अग्निः मध्यमोऽग्निर्वा। त्रिष्टुप्। (ऋ. १।७९।३)

यदीमृतस्य पयसा पियानो नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः।

अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनौ॥ ७९॥

(यत्) जब (ईं) यह अग्नि (ऋतस्य पयसा) यज्ञके दूधसे (पियानः) तृप्त होकर (ऋतस्य रजिष्ठैः पथिभिः नयन्) यज्ञके सरल मार्गोंसे लोगोंको ले चलता है। उस समय अर्यमा मित्र और (परि-ज्मा) सभी जगह जानेवाला वरुण (उपरस्य योनौ) मेघमें जल निर्माण होनेके स्थलमें (त्वचं पृञ्चन्ति) चमडीको सींच देते हैं पर्याप्त बारिश करके भूमिको जलपूर्ण कर डालते हैं।

ऋतस्य पयसा पियानः = यज्ञका दूध पीकर तृप्त होनेवाला। त्वक् = चमडी चमडेकी थैली।

ऋतस्य पयः = यज्ञके लिये दूध है जो गाय देती है।

सिन्धुद्वीपः। अग्निः। अनुष्टुप्। (अथर्व ७।८९।१)

अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि।

पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा॥ ८०॥

(दिव्याः आपः) दिव्य जलोंका (अ अचायिषं) मैं संचय कर चुका हूँ (रसेन सं अपृक्ष्महि) रसके साथ हम मिला चुके हैं (अग्ने!) हे अग्नि! (पयस्वान् आगमं) मैं दूध लेकर तेरे समीप आ गया हूँ (तं मा वर्चसा सं सृज) उस मुझको तेजके साथ युक्त कर।

पयस्वान् आगमं = दूध लेकर मैं अग्निके समीप आता हूँ।

[४६] गौओंसे यज्ञकी पूर्णता।

मेधातिथिः काण्वः। द्यावापृथिव्यौ। गायत्री। (ऋ. १।२२।१३)

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्।

पिपृतां नो भरीमभिः॥ ८१॥

(मही) गाय (द्यौः पृथिवी च) द्युलोक और पृथिवी इस (नः इमं यज्ञं) हमारे इस यज्ञको (मिमिक्षताम्) रसोंसे सींचनमय करें और (भरीमभिः) धारण पोषण आदिकोंसे हमें (पिपृताम्) परिपूर्ण करें।

(मही) गाय अपने दूधसे (द्यौः) द्युलोक-अर्थात् द्वारा (पृथिवी) भूलोक अर्थात् या अन्यसे यज्ञकी पूर्णता करते हैं। मही यह जैसे भूमि अन्तरिक्ष एवं द्युलोकको सूचित करता है वैसे ही यह गायको भी सूचना देता है। इसीसे गायकी महनीयता सिद्ध होती है।

[४७] गौएं अग्निकी सेवा करती हैं।

सोमाहुतिर्भार्गवः । अग्निः । गायत्री । (ऋ. २।७।५)

त्वं नो असि भारताऽग्ने वशाभिरुक्षभिः ।

अष्टापदीभिराहुतः ॥ ८२ ॥

हे (भारत) शोभायमान अग्ने ! (त्वं नः वशाभिः) तू हमारी गौओंसे (उक्षभिः) बैलोंसे तथा (अष्टा-पदीभिः) गर्भिणी गौओंसे (आहुतः असि) सेवनीय है।

वशा = वशमें रहनेवाली या जो चाहे जितना दूध देती हो और बछेतक जिसके समीप जाकर दूध पी सकते हैं।
अष्टापदी = गौके चार पैर और गर्भस्थ बछड़ेके चार पैर। इस तरह गौ आठ पैरोंवाली बनजाती है।
गौ दूधसे बैल आन्नसे और गर्भिणी गौ आगे दिये जानेवाले घीरससे अग्निकी सेवा करते हैं।

सोमाहुतिर्भार्गवः । अग्निः । अनुष्टुप् । (ऋ. २।५।५)

ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः ।

कुवित्तिसृभ्य आ वरं स्वसारो या इदं ययुः ॥ ८३ ॥

(याः) जो (इदं) इस कर्मको (ययुः) प्राप्त होती हैं याने इस कर्मको करती हैं (ताः आयुवः) वे गतिशील (धेनवः) गौएं (स्वसारः) स्वयं ही आगे होकर (अस्य नेष्टुः) इस याजकके (आ तिसृभ्यः) तीनों सवनोंमें (वरं वर्णं) उत्कृष्ट शोभाको (कुवित्) हमेशा (सचन्त) प्राप्त करती हैं।

धेनवः इदं सचन्त = गौएं इस यज्ञको प्राप्त करती हैं। यज्ञकी संपूर्णता करती हैं।

वामदेवो गौतमः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ४।२।५)

गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः ।

इळावाँ एषो असुर प्रजावान् दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् ॥ ८४ ॥

हे (असुर) प्राणोंके दाता अग्ने ! (एषः यज्ञः) यह यज्ञ (गोमान्) गायोंसे युक्त (अविमान्) भेड़ोंसे पूर्ण (अश्वी) घोड़ोंसे युक्त (इळावान्) अन्नसे युक्त (प्रजावान्) सन्तानसे भरा हुआ (सभावान्) सभा समाजोंसे परिपूर्ण (दीर्घः) बहुत कालतक प्रचलित अर्थात् स्थायी (पृथु-बुध्नः) विस्तीर्ण नींववाला (रयिः) धनसंपन्न (नृवत्सखा) नेताओंसे युक्त जनताकी मित्रता प्राप्त करने वाला (सदमित्) हमेशाके लिए (अप्रमृष्यः) अनाक्रमणीय बना रहे।

एषः गोमान् यज्ञ = यह यज्ञ गायोंसे युक्त है अर्थात् यह गायोंसे संपन्न होता है।

[४८] गायें अग्निके लिये घी देती हैं।

शौनकः (संपत्कामः)। अग्निः । त्रिष्टुप् (अथर्व ७।८२।६)

घृतं ते अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वां मनुरद्या समिन्धे ।

घृतं ते देवीर्नप्त्य आ वहन्तु घृतं तुभ्यं दुह्रतां गावो अग्ने ॥ ८५ ॥

हे अग्ने ! (ते घृतं दिव्ये सधस्थे) तेरा घृत दिव्य स्थानमें है (मनुः त्वां घृतेन अद्य सं इन्धे) मानव तुझे आज घीसे प्रज्वलित करता है। (नप्त्यः देवीः ते घृतं आवहन्तु) न गिरानेवाली दिव्य गौएं तेरे घृतको ले आवें। हे अग्ने ! (गावः तुभ्यं घृतं दुह्रतां) गायें तेरे लिए घीको दे दें।

१ गावः घृतं दुदुह्रतां = गायें अग्निके लिये घी देवें
* न पद्याः देवीः घृतं आवहन्तु = मनुष्यको न गिरानेवाली दिव्य गौवें अग्निके लिये घी ले आवें,
३ मनुः घृतेन स इन्धे = मानव अग्निको घीसे प्रदीप्त करता है

[४९] यज्ञमें गोमाताका सत्कार ।

मेधातिथिः काण्वः। आप्रीसूक्तं—तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः । गायत्री (ऋ. १।१३।९)

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ८६ ॥

(इळा) मातृभाषा (सरस्वती) मानससंस्कृति और (मही) गोमाता या मातृभूमि (तिस्रः देवीः) तीनों देवियाँ हैं और (मयोभुवः) सुख देनेवाली हैं तथा (अस्रिधः) भूल न करती हुईं (बर्हिः सीदन्तु) यज्ञके आसनोंपर बैठें ।

इस मन्त्रमें मही शब्दसे गोमाता या मातृभूमिका बोध होता है । यज्ञमें इन देवियोंका सत्कार हो । गौ यज्ञमें अत्यन्त आवश्यक है ही । दूध और घृत गौका ही लेना यज्ञमें आवश्यक है इसलिए यज्ञभूमिमें गौ रहनी चाहिए । गौसे उत्पन्न होनेवाले बैल भी धान्योत्पादन कर यज्ञको सहायता पहुँचाते हैं ।

[५०] यज्ञमें गौको रखना ।

कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । विश्वेदेवा इन्द्रो वा । त्रिष्टुप् (ऋ. १।१२१।७)

स्विध्मा यद्वनधितिरपस्यात्सूरो अध्वरे परि रोधना गोः ।
यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यूननर्विशे पश्विषे तुराय ॥ ८७ ॥

(सु इध्मा) तेजस्वी (वनऽधितिः) पेड़ तोड़नेवाले हथियार (अपस्यात्) अपना कर्म करनेकी इच्छा करे, उस समय (सूरः) प्रेरणा करनेवाला याजक (अध्वरे) यज्ञमें (गोः रोधना) गौओंका निरोधन करनेमें (परि) समर्थ होता है (कृत्व्यान्) कर्मोंसे किये हुए (द्यून् अनु) दिनोंके अनुसार (यत् ह प्र भासि) जब तू प्रकाशमान होता है तब (अनः-विशे) गाड़ीमें बैठनेवालेके लिए (पशु-इषे) पशुओंको प्रेरणा करनेवालेके लिए और (तुराय) त्वरा पूर्वक कार्य करनेवालेके लिए इष्टकामनाओंकी सिद्धि होती है, अनुकूलता मिलती है ।

अपस् = कर्म अपस्यात् = कर्म करनेकी चाह करेगा । (स्विध्मा वनधीतिः अपस्यात्) = तेजस्वी कुल्हाड़ी वन तोड़ने लगती है समिधा तोड़ने लगती है तब (अध्वरे गोः रोधनाः परि) यज्ञमें गायें रोक दी जाती हैं गायोंको खड़ी करके दोहन किया जाता है । पश्चात् समिधा और गोदुग्ध अन्न (घृत) घीका हवन होता है ।

[५१] अग्नि गायें प्राप्त करता है ।

सुतम्भर आत्रेयः । अग्निः । गायत्री (ऋ. ५।१४।३, ४)

तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता । अग्निं हव्याय वोळ्हवे ।
अग्निर्जातो अरोचत घ्नन्दस्यूञ्ज्योतिषा तमः । अविन्दद् गा अपः स्वः ॥ ८८ ॥

(तं देवं अग्निं हि) उस प्रकाशमान अग्निको ही (हव्याय वोळ्हवे) हविर्भाग पहुँचा देनेके लिए (घृतश्चुता स्रुचा) घी टपकानेवाली स्रुवासे (शश्वन्तः ईळते) बहुतसे लोग प्रशंसित करते हैं । (जातः अग्निः) उत्पन्न होनेपर अग्नि (ज्योतिषा) प्रकाशसे (तमः दस्यून् घ्नन्) अंधेरेका और

वसुओंको विनष्ट करता हुआ (अरोचत) जगमगाने लगा और (गाः अपः स्वः) गायें जल तथा स्वर्गीय प्रकाशको (आविन्दत्) प्राप्त कर चुका।

१ अग्निः गाः आविन्दत् = अग्नि गौएँ प्राप्त करता है अर्थात् जिस अग्निके समीप गौएँ आती हैं।

२ अग्निं घृतप्रयुता धुषा ढळते = अग्निकी पूजा घीसे भरपूर भरी जुहूसे करते हैं।

वसुश्रुत आत्रेयः। अग्निः। पङ्क्तिः (ऋ ५।६।१)

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः।

अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ८९ ॥

(यो वसुः) जो सबको बसाता है उपनिवेश करनेमें सहायता देता है, (यं अस्तं) जिसे घरके समान मानकर निःशंक अन्तःकरणसे (धेनवः) गौएँ (आशवः अर्वन्तः) शीघ्रगामी घोडे तथा (नित्यासः वाजिनः) हमेशा अन्न हविर्भाग धारण करनेवाले लोग (यन्ति) समीप चले जाते हैं, (तं अग्निं मन्ये) उसे अग्निरूप मैं मानता हूँ, (स्तोतृभ्यः) स्तोताओंके लिए (इषं आभर) अन्न लाकर दे दो।

सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः।

समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ९० ॥ (ऋ० ५।६।२)

(यः वसुः) जो लोगोंको उपनिवेश बसानेमें सहायता देता है (सः अग्निः) वह सचमुच अग्रगन्ता नेता है (यं) जिसके समीप (धेनवः) गौएँ (रघुद्रुवः अर्वन्तः) जल्द दौडनेवाले घोडे (सुजातासः सूरयः) अच्छे परिवारमें उत्पन्न विद्वान (सं-आयन्ति) सभी इकट्ठे चले आते हैं, उसकी मैं (गृणे) सराहना करता हूँ (स्तोतृभ्यः) प्रशंसा करनेवालोंको (इषं आभर) अन्न दे दो।

१ यं धेनवः यन्ति = जिस अग्निके पास गौएँ आती हैं।

१ यं धेनवः सं आयन्ति = जिस अग्निके पास गौएँ मिलकर आती हैं।

[५२] इन्द्रके लिये गाय दूध देवे।

दुर्मित्रः (सुमित्रो वा) कौत्सः। इन्द्रः। उष्णिक् (ऋ १ ।। ५।१)

श्रिये ते पृश्निरुपसेचनी भूच्छ्रिये दर्विररेपाः। यया स्वे पात्रे सिञ्चस उत् ॥ ९१ ॥

हे इन्द्र! (ते श्रिये) तेरी शोभाके लिए (पृश्निः उपसेचनी भूत्) गाय दूध देनेवाली बने तथा (दर्विः) कलछी (यया स्वे पात्रे उत् सिञ्चसे) जिससे अपने बर्तनमें तू सोमरस उंडेलता है (अरेपाः श्रिये) निर्दोष एवं शोभादायक हो।

गौ इन्द्रके लिये दूध देती है अर्थात् इन्द्रकी तृप्तिके लिये यज्ञसंपादन करनेके लिये गौ दूध देती है।

वत्सकर्णी सर्पे ऐरावतः। मरुतः। जगती (ऋ १ ।०६।१)

तदिद्ध्यस्य सवनं विवेरपो यथा पुरा मनवे गातुमश्रेत्।

गोअर्णसि त्वाष्ट्रे अश्वनिर्णिजि प्रेमध्वरेष्वध्वराँ अशिश्रयुः ॥ ९२ ॥

(अस्य) इसके (तत् इत् सवनं अपः) वह ही सवनरूपी कर्म (विवेः) व्याप्त हों (यथा मनवे) जैसे मनुके लिए (पुरा गातुं अश्रेत्) पहले गमन आया था, (गो-अर्णसि अश्वनिर्णिजि) गायों तथा घोडोंसे घेरे हुए (त्वाष्ट्रे) त्वष्टाके पुत्रके हननमें (ईं अध्वरान्) इन अहिंसकोंको (अध्वरेषु प्र अशिश्रयुः) हिंसारहित कार्योंमें आश्रय देचुके हैं।

कुत्सः सुवर्णाङ्गिरसः । विश्वे देवाः । जगती (ऋ० १।१ १।१)

ऊर्जं गावो यवसे पीवो अत्तन ऋतस्य याः सदने कोशे अङ्ग्ध्वे ।

तनूरेव तन्वो अस्तु भेषजमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥ ९३ ॥

हे (गावः) गौओ ! (याः ऋतस्य सदने) जो तुम यज्ञके स्थानमें तथा (कोशे अङ्ग्ध्वे) भाण्डारमें सुशोभित होती हो, (यवसे ऊर्जं पीवः अत्तन) तृण जैसे बल एवं पुष्टिकारक वस्तुका सेवन करो, (तन्वः भेषजं) शरीरका औषध (तनूः एव अस्तु) शरीर ही रहे अर्थात् शरीरकी शक्तिहि स्वयं रोगोंका प्रतिकार करे। हम (सर्वतातिं अदितिं आ वृणीमहे) सबको सुख देनेवाली गौका स्वीकार करते हैं ।

१ गावः ऋतस्य सदने अङ्ग्ध्वे = गायें यज्ञके स्थानमें रहती हैं

२ यवसे ऊर्जं पीवः अत्तन = घासका घास खाकर पुष्ट और बलिष्ठ बनें

३ तन्वः भेषजं तनूः एव अस्तु = शारीरिक रोगोंकी चिकित्सा शारीरिक शक्तिसे ही होती रहे । अर्थात् शरीरमें इतना ओज रहे की रोग दूर करनेके लिये किसी बाह्य उपचारकी आवश्यकता न पडे ।

४ सर्वतातिं अदितिं आवृणीमहे = सबको सुख देनेवाली गौका हम स्वीकार करते हैं ।

[५३] मूर्खोंका यज्ञ ।

अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः) । आत्मा । त्रिष्टुप् (अथर्व० ७।५।५)

मुग्धा देवा उत शुनायजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधायजन्त ।

य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥ ९४ ॥

(मुग्धाः देवाः) मूढ याजक (उत शुना अयजन्त) कुत्तेसे यजन करते हैं (उत गोः अङ्गैः पुरुधा अयजन्त) और गायके अवयवोंसे भाँति भाँतिके प्रकारोंसे यजन करते हैं (यः इमं यज्ञं) जो इस यज्ञको (मनसा चिकेत) मनसे करना जानता है वह (इह नः प्रवोचः) यहाँ हमें उसका ज्ञान देवे और (इह तं ब्रवः) इधर उसका उपदेश करे ।

मूढ याजक ही गौओंके अंगोंसे अर्थात् गौओंको काटकर यज्ञ करते हैं अर्थात् ज्ञानी पुरुष गौके दूध घी आदिसे यज्ञ करते हैं और गौको सुरक्षित रखते हैं ।

[५४] दूधमें सोम मिलाना ।

गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । इन्द्रो मरुत्वान् । जगती (ऋ० २।३६।१)

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट गा अपोऽधुक्षन् त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः ।

पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोम प्रथमो य ईशिषे ॥ ९५ ॥

हे इन्द्र ! (तुभ्यं हिन्वानः) तेरे लिए ही तैयार हुआ यह सोम (गाः अपः) गौका दूध तथा जलमें (वसिष्ट) प्रविष्ट होता है (नरः सीम्) नेता लोग इसे (अद्रिभिः) पत्थरोंसे कूटते हैं और (अविभिः बकरीके लोमोंकी बनी छलनीसे (अधुक्षन्) छानकर तैयार कर चुके । (यः प्रथमः ईशिषे) जो पहलेसे सबपर सत्ता प्रस्थापित कर चुका है उस (स्वाहा प्रहुतं) स्वाहाकारके साथ आहुत (वषट्कृतं) तथा वषट्कारके साथ अर्पित (सोम) सोमको (होत्रात् आ पिब) इस यज्ञकी समाप्ति होनेपर पी लो ।

सोमरसमें गौका दूध और जल मिला देते सोमको पत्थरोंसे कूटते बकरीके लोमोंकी छलनीसे छानते हैं । इस छाने हुए सोमका हवन करते और पश्चात् पीते हैं ।

*

कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । विश्वेदेवा इन्द्रो वा । त्रिष्टुप् (ऋ. १।१२१।८)

अष्टा महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासाहमभि योधान उत्सम् ।

हरिं यत्ते मन्दिनं दुक्षन् वृधे गोरभसमद्रिभिर्वाताप्यम् ॥ ९६ ॥

(यत्) जिस समय (ते वृधे) तेरी अभिवृद्धिके लिए (हरिं मन्दिनं) आनन्ददायक (गोरभसं) गोदुग्धसे मिश्रित तथा (वाताप्यं) वायुसे मिलाकर बढाया हुआ सोमरस तैयार होता है उसके पहले (अद्रिभिः दुक्षन्) पत्थरोंसे कूटकर रस निचोडा जाता है उस समय (महः दिवः) बडे द्युलोकसे प्राप्त (अष्टा हरी) तेरे आठ घोडोंको (इह) इस यज्ञमें (आदः) खाने दो। पश्चात् (द्युम्नासाहं उत्सं) धन जिसपर रखा है ऐसा खजाना पानेके लिए शत्रुसे (योधानः) युद्ध करते समय तू उन शत्रुओंको (अभि भव) परास्त कर ।

पहाडकी चोटीसे (महः दिवः) सोमको लाना पत्थरोंसे कूटना रस निकालना गौके दूधके साथ मिलाना (वाताप्यं) वायुमें एक बर्तनसे दूसरे बर्तनमें उण्डेलनेसे सोमरस तैयार होता है ।

परुच्छेपो दैवोदासिः । वायुः । अत्यष्टिः (ऋ. १।१३४।२)

मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवोऽस्मत् क्राणासः सुकृता

अभिद्यवो गोभिः क्राणा अभिद्यवः ।

यद्ध क्राणा इरध्यै दक्षं सचन्त ऊतयः ।

सध्रीचीना नियुतो दावने धिय उपब्रुवत ईं धियः ॥ ९७ ॥

(वायो) हे वायु ! (त्वा अस्मत्) तुझे हमारे ये (मन्दिनः) आनन्ददायक (क्राणासः) हर्षोत्पादक (सुकृताः) भली भाँति तैयार किए हुए (अभिद्यवः) तेजस्वी तथा (गोभिः क्राणाः) दूधमें मिलाये हुए (अभिद्यवः) दिव्य (इन्दवः) सोमरस (मन्दन्तु) हर्ष दें। (यत् ह) जब तुझ (दक्षं इरध्यै) बल मिल जाय इसलिए (क्राणाः ऊतयः) कर्मके प्रवर्तक रक्षक शक्तियोंसे युक्त तथा सदैव (सध्रीचीनाः) तेरे साथ विद्यमान (नियुतः) घोडे (दावने) दान देते समय (ईं) तेरी (सचन्ते) सेवा करने लगते हैं ।

उस समय (धियः धियः उप ब्रुवते) बुद्धिमान् कर्ममें रममाण होनेवाले याजक तेरी प्रार्थना करने लगते हैं ।

गोभिः क्राणा इन्दव = गोदुग्धसे मिश्रित सोमरस ।

गृत्समदः [आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चात्] भार्गवः शौनकः । इन्द्रः । जगती (ऋ. २।१३।१)

ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद्यासु वर्धते ।

तदाहना अभवत्पिप्युषी पयोंऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥ ९८ ॥

(ऋतुः जनित्री) वर्षा ऋतु सोम पैदा करनेवाली है। (तस्याः परिजातः) उस वर्षाके कारण सोम पैदा हुआ। (यासु वर्धते) जिन जलोंमें वह बढता है उन (अपः) जलोंमें वह (मक्षु) तुरन्त (आ अविशत्) घुसता है फैल जाता है (तत् पिप्युषी) वह पर्याप्त रसवाली लता (आहना अभवत्) पत्थरोंसे कूटने योग्य मानी जाती है। (तत्) पश्चात् उस (अंशोः) सोमका (प्रथमं पीयूषं पयः) पहला अमृत सरीखा दूध (उक्थ्यं) सराहनीय पेय कहा जाता है ।

अंशोः प्रथमं पीयूषं पयः = सोमका प्रथम अमृतवत् दूध पहली बारके कूटनेसे जो पहला जाव निकलता है वह अमृत तुल्य पेय है। सोमरस दूधके समान बढिया पेय है ।

वामदेवो गौतमः । इन्द्रावरुणौ । त्रिष्टुप् (ऋ० ४।४१।८)

ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू ।

श्रिये न गाव उप सोममस्थुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥ ९९ ॥

हे (सुदानू) अच्छे दान देनेवाले ! (ता वां) उन विख्यात तुम दोनोंके प्रति (अवसे) रक्षाके लिए (युवयूः) तुम दोनोंको चाहते हुए लोग (आजिं न) लडाईमें जिस प्रकार जाते हैं वैसे ही (वाजयन्तीः धियः जग्मुः) अन्नकी कामना करती हुई बुद्धियाँ चली गयीं । (मे गिरः मनीषाः) मेरी वाणियाँ और इच्छायें (श्रिये) शोभाके लिए (इन्द्रं वरुणं) इन्द्र तथा वरुणके समीप (सोमं गावः न) सोमके समीप गौवें जिस प्रकार खडी रहती हैं, वैसे (उपतस्थुः) खडी हुईं ।

सोमं गावः = सोमके रसके साथ गौका दूध मिलाते हैं ।

वामदेवो गौतमः । इन्द्रः इन्द्रो वा । शक्वरी (ऋ० ४।२७।५)

अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तमापिप्यानं मघवा शुक्रमन्धः ।

अध्वर्युभिः प्रयतं मध्वो अग्रमिन्द्रो मदाय प्रति धत्पिबध्यै ॥ १०० ॥

(मघवा इन्द्रः) ऐश्वर्य संपन्न इन्द्रने (अध) पश्चात् (अध्वर्युभिः प्रयतं) यज्ञके कार्यकर्ताओंने दिया हुआ, (मध्वः अग्रं) मीठेपनका मानो अग्रभाग अर्थात् अत्यन्त मिठास भरा (गोभिः अक्तं) गोदुग्धसे पूर्णतया मिश्रित (शुक्रं अन्धः) तेजस्वी अन्न (आपिप्यानं) पूर्णतया तृप्त करनेकी शक्तिसे युक्त (श्वेतं कलशं) सफेद घडेमें रखे हुए सोमरसको (पिबध्यै) पीनेके लिए, (मदाय) आनन्द पानेके लिए (प्रति धत्) धारण करे ।

मध्वः अग्रं गोभिः अक्तं शुक्रं अन्धः = मधुर गोदुग्धसे मिश्रित हुआ श्वेत अन्न रस सोम है ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (ऋ० ६।४४।१२)

अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन् ।

तमु ते गावो नर आपो अद्रिरिन्दुं समह्यन्पीतये समस्मै ॥ १०१ ॥

हे (विरप्शिन् इन्द्र) विविध ढंगसे बोलनेवाले इन्द्र ! (यस्य) जिसके रसको (जज्ञानः) उत्पन्न करता हुआ तू (मदाय क्रत्वे) आनन्द एवं कार्यपटुताके लिए (अपिबः) पी चुका था उसी (अस्य पिब) इस सोमके रसको पी जा (ते) तेरे लिए (तं इन्दुं उ) उसी सोमको (अस्मै पीतये) इसके पानके लिए (गावः नरः) गायोंने दूधसे तथा मानवोंने (आपः अद्रिः) जल समूह एवं पत्थर सभीने (समह्यन्) मिलकर तैयार किया है ।

तं इन्दुं पीतये नरः गावः आपः, अद्रिः समह्यन् = इस सोमरसको पीनेके लिये मनुष्य गौवें, जल पत्थर इन सबकी सहायता की जाती है । मनुष्य सोम लाते, पत्थरोंसे कूटते जलसे और गोदुग्धसे मिश्रित करते हैं ।

अत्रिर्भौमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (ऋ० ५।३७।४)

न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्रस्तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम् ।

आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन् ॥ १०२ ॥

(यस्मिन्) जिसके घरमें (तीव्रं गोसखायं) तेज तथा गायके दूधसे मिश्रित (सोमं इन्द्रः पिबति) सोमरसको इन्द्र पी लेता है (सः राजा न व्यथते) वह नरेश दुःखी नहीं होता है ।

(सत्यैः मा भवति) अपनी प्रजाओंके साथ चारों ओर संचार करता है (सुभगः) अच्छे ऐश्वर्य वाला होकर (नाम पुष्यन्) अपने यशको बढाता हुआ (वृत्रं हन्ति) वृत्रका वध करता है, तथा (क्षितीः क्षति) प्रजाओंमें निवास करता है।

तीव्रं गो-सखाय सोम = तीव्र गोदुग्धके साथ मिश्रित सोमरस।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्रः। त्रिष्टुप् (ऋ ६।२३।७)

स नो बोधि पुरोळाशं रराणः पिबा तु सोम गोऋजीकमिन्द्र।

एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदोरुं कृधि त्वायत उ लोकम्॥ १०३॥

हे (इन्द्र) इन्द्र! (सः रराणः) वह तू रममाण होता हुआ (नः पुरोळाशं बोधि) हमारे दिये हुए पुरोडाशको जान ले। (गो-ऋजीकं सोमं तु पिब) गोदुग्धसे मिश्रित सोमका तो पान कर (त्वायतः यजमानस्य) तेरी कामना करते हुए यज्ञ कर्ताके (इदं बर्हिः) इस कुशासनपर (आसीद) बैठ और (लोकं उरु कृधि) भुवनको विशाल तथा विस्तृत कर।

गोऋजीकं सोमं पिब।= गोदुग्ध मिश्रित सोम पीओ।

विश्वामित्रो गाथिनः। अश्विनौ। त्रिष्टुप् (ऋ ३।५८।४)

आ मन्येथामा गतं कच्चिदेवैर्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते।

इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे॥ १०४॥

हे (अश्विना) अश्विनी देवो! (कत् चित् आ मन्येथां) भला क्या तुम इधर ध्यान दोगे? तुम (एवैः आगतं) घोड़ोंपरसे यज्ञ भूमीकी ओर आओ क्योंकि (विश्वे जनासः हवन्ते) सभी लोग तुम्हें पुकारते हैं (उस्रः अग्रे) उषः वेलाके पहले (इमा गो-ऋजीका मधूनि) ये गोदुग्धमिश्रित मधुरिमासे पूर्ण सोमरस (मित्रासः न) मित्रोंके समान ये लोग (वां ददुः हि) तुम्हें जरूर देते हैं।

गर्गो भारद्वाजः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ ६।४७।१४)

अध त्वे इन्द्र प्रवतो नोर्मिर्गिरो ब्रह्माणि नियुतो धवन्ते।

उरु न राधः सवना पुरूण्यपो गा वज्रिन् युवसे समिन्दून्॥ १०५॥

हे इन्द्र! (प्रवतः ऊर्मिः न) निम्नस्थलकी ओर जलसमूह जिस तरह दौड़ा चला जाता है वैसे ही (नियुतः गिरः ब्रह्माणि) स्तोताके स्तोत्र (त्वे अधधवन्ते) तुझमें समाविष्ट होनेके लिए दौड़े जाते हैं, (पुरूणि सवना) बहुतसे सवन (उरु राधः न) और विशाल धन तेरे लिए प्रवृत्त हैं, हे (वज्रिन्) वज्र धारण करनेवाले! तू (गाः अपः इन्दून्) गायोंके दूध जलसमूह तथा सोमवल्लीके रसोंको (सं युवसे) ठीक मिश्रित कर देता है।

गाः अपः इन्दून् संयुवसे = गोदुग्ध जल और सोमरसका मिश्रण करता है।

नारदः काण्वः। इन्द्रः। उष्णिक्। (ऋ ८।१३।१४)

आ तू गहि प्र तु द्रव मत्स्वा सुतस्य गोमतः।

तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं यथा विदे॥ १०६॥

(आ गहि तु) तू यहां आ तो (प्रद्रव तु) और दौड़ना भी तो शुरू कर (गोमतः सुतस्य मत्स्व) गोदुग्धमिश्रित निचोड़े हुए सोमसे आल्हादमय हर्षित बन, (यथा पूर्व्यं) जैसे पूर्वकालमें हुआ करता था वैसे ही (तन्तुं विदे तनुष्व) यज्ञरूपी सूत्रका-ज्ञान तन्तु उस ढंगसे विस्तृत कर।

श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ ८।९२।३०)

मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ १०७ ॥

हे (वाजानां पते) बलोंके अधिपति इन्द्र ! (ब्रह्मा इव तन्द्रयुः) ब्राह्मणके तुल्य आलसी (मो सु भुवः) न बन और (गोमतः सुतस्य मत्स्व) गायके दूधसे मिश्रित निचोडे हुए सोमरसके सेवनसे हर्षित बन ।

सोभरिः काण्वः । इन्द्रः । ककुप् । (ऋ ८।२१।५)

सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे ।
अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ १०८ ॥

हे इन्द्र ! (यथा वयः) जैसे पंछी किसी स्थानपर इकट्ठे हो बैठते हैं वैसे ही (विवक्षणे) बहुत पौष्ट (मदिरे) मदकारक (गोश्रीते मधौ) गायोंके दूधसे मिश्रित मीठे सोमरसके निचोडनेपर (सीदन्तः) बैठते हुए (त्वा अभि नोनुमः) तेरा वन्दन करने लगते हैं ।

कुसीदी काण्वः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ ८।८२।५-६)

तुभ्यायमद्रिभिः सुतो गोभिः श्रीतो मदाय कं । प्र सोम इन्द्र हूयते ॥ १०९ ॥

इन्द्र श्रुधि सु मे हवमस्मे सुतस्य गोमतः । वि पीतिं तृप्तिमश्नुहि ॥ ११० ॥

हे इन्द्र ! (अयं तुभ्य) यह सोमरस तेरे लिए (अद्रिभिः सुतः) पत्थरोंसे निचोडा गया और (मदाय गोभिः श्रीतः) आनन्द उत्पन्न हो इस हेतु गायके दूधसे मिश्रित किया है ऐसा (सोमः प्र कं हूयते) सोम अत्यन्त अधिक मात्रामें सुखपूर्वक बुलाया जाता है ।

हे इन्द्र ! (मे हवं) मेरी पुकारको (सु श्रुधि) ठीक तरह सुन लो; (अस्मे सुतस्य गोमतः) हमने निचोडे और गायके दूधसे मिलाये हुए सोमरसका (पीतिं तृप्तिं वि अश्नुहि) पान और पश्चात् तृप्तता यथेष्ट प्राप्त करो ।

त्रिशोकः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ ८।४५।२४)

इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे । सरो गौरो यथा पिब ॥ १११ ॥

(महे राधसे) बडी भारी सम्पदा पानेके लिए (इह) इधर (गो परीणसा) गायके दूधसे मिश्रित सोमसे (त्वा मन्दन्तु) तुझे हर्षित करें। (यथा गौरः सरः) जैसे हिरन तालाबके पास आकर पानी पीता है उसी प्रकार तू भी इस सोमरसको (पिब) पी जा।

प्रियमेध आंगिरसः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ ८।६९।६)

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥ ११२ ॥

(वज्रिणे इन्द्राय) वज्रधारी इन्द्रके लिए (गावः मधु आशिरं दुदुह्रे) गायोंने मीठे दूधका दोहन किया (यत्) जब कि (उपह्वरे) समीप विद्यमानको (सीं विदत्) सभी तरह प्राप्त करता है।

आ यत्पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः ।
अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥ ११३ ॥ (ऋ० ८।६९।१०)

(यत्) जब (सुदुघाः) अच्छी तरह दोहन की जानेवाली (अनपस्फुरः) न हिलती हुई (एन्यः) सफेद गौएँ (आपतन्ति) आती हैं तो (इन्द्राय पातवे) इन्द्रके पीनेके लिए (अनपस्फुरं सोम गृभायत) स्थिर सोमको पकड लो ।

मत्स्याविथिः काण्वः । बृहती । (ऋ० ८।३।१)

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥ ११४ ॥

हे इन्द्र ! (नः सुतस्य) हमारे निचोडे हुए (गोमतः रसिनः पिब मत्स्व) गायोंके दूधसे मिश्रित तथा रसमय सोमको तू पीले और हर्षित बन तू (नः) हमारा (आपिः सधमाद्यः) आप्त और एक स्थानमें सबके साथ आनन्दित होनेवाला है इसलिए (बोधि) हमारे कथनको तू समझ ले, (ते धियः) तेरे कर्म (अस्मान् वृधे अवन्तु) हमें बढनेके लिए सुरक्षित रखें ।

विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ३।४८।१)

सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य ।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य ॥ ११५ ॥

(सद्यः जातः वृषभः) तुरन्त प्रकट हुआ बलिष्ठ एवं (कनीनः) सुन्दर रूपवाला इन्द्र (सुतस्य अन्धसः) निचोडे हुए सोमरसका जो (प्र भर्तुं) अर्पण करनेवाला उपासक है उसका (आवत् ह) संरक्षण करे । (प्रति कामं) हर इच्छाके समय (यथा ते) तेरी आकांक्षाके अनुकूल (साधोः रस-आशिरः) सुन्दर दूध मिलाये (सोम्यस्य) सोमके रसको (प्रथमं पिब) पहले तू पी ला ।

रसाशिरः = विभिन्न रसोंको एक बर्तनमें मिलाकर तयार किया हुआ सोम दूध-गोरस डालकर मिश्रित सोमरस ।

परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ । अत्यष्टिः । (ऋ० १।१३७।१)

सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे ।
आ राजाना दिविस्पृशाऽस्मत्रा गन्तमुप नः ।
इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ ११६ ॥

(राजाना दिविस्पृशा) राजाके समान प्रभावी तथा आकाश व्यापनेवाले और (अस्मत्रा मित्रा वरुणा) हमारे रक्षण करनेहारे मित्र तथा वरुण ! तुम (आ यातं) इधर आओ (अद्रिभिः सुषुम) पत्थरोंकी सहायतासे कूटकर यह सोमरस निचोड रखा है (इमे सोमासः गोश्रीताः मत्सराः) ये सोमरस गायदुग्धकी मिलावटसे आनन्द बढानेवाले हैं, (इमे सोमासः) ये सोमरस (मत्सराः) तृप्ति देनेवाले हैं इसलिए (नः उप आ गन्तं) तुम हमारे समीप आओ (इमे गो-आशिरः) ये सोमरस गोदुग्धसे मिश्रित तथा (शुक्राः) सफेद (सोमाः) सोम (वाम्) तुम्हारे लिए ही हैं ।

गायका दूध सोमरसमें मिलाया जाता है ।

नाभाग काण्वः । इन्द्रः । सतो बृहती । (ऋ० ८।५२।१)

समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥ ११७ ॥

(शुक्रासः) प्रदीप्त (शुचयः) निर्दोष (गवाशिरः सोमाः) गायोंके दूधसे मिलाए हुए सोमरस (इन्द्रं अमन्दिषुः) इन्द्रको हर्षित कर चुके तब इन्द्रने (क्षोणीः सूर्यं) द्यावापृथिवी और सूर्यको तथा (बृहतीः रायः) बहुतसी प्रचण्ड धनराशियोंको (सं अधूनुत) ठीक प्रकार हिलाया ।

विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ३।३२।२)

गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय ।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥ ११८ ॥

हे इन्द्र ! (गवाशिरं गो आशिर) गायके दूधसे मिश्रित (शुक्रं) वीर्यवर्धक तथा (मन्थिनं) छानकर तैयार किया हुआ (सोमं पिब) सोमरस पी जा (ते मदाय) तेरे आनन्दके लिए हम इसे (ररिम) दे देते हैं, और (तृपत्) तृप्त होकर तू (ब्रह्मकृता-मारुतेन गणेन) स्तोत्र करनेवाले वीर मरुतोंके संघके साथ तथा (रुद्रैः सजोषाः) रुद्रोंके साथ मिलजुलकर (आ वृषस्व) अपना बल बढा दे ।

विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० ३।४२।१)

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥ ११९ ॥

हे इन्द्र (नः सुतं) हमारे निचोडे हुए तथा (गो-आशिर) गायके दूधसे मिश्रित सोमको पीनेके लिए (उप आ गहि) समीप आ जा क्योंकि (यः ते) जो तेरा रथ है वह (हरिभ्यां अस्मयुः) घोडोंसे युक्त हो हमारे समीप आनेकी इच्छा कर रहा है ।

वामदेवो गौतमः । वायुः । सतो बृहती । (ऋ० ४।४६।१)

वेत्यध्वर्युः पथिभी रजिष्ठैः प्रति हव्यानि वीतये ।
अधानियुत्व उभयस्य नः पिब शुचिं सोमं गवाशिरम् ॥ १२० ॥

(रजिष्ठैः पथिभिः) अत्यन्त सरलतम मार्गोंसे (वीतये) आस्वादनके लिए (अध्वर्युः हव्यानि प्रति वेति) अध्वर्यु हवनीय वस्तुओंको ले चलता है (नियुत्वः) हे नियुत्से युक्त वायो ! (नः) हमारे (गवाशिरं शुचिं सोमं) गायोंके दूधसे मिश्रित तथा पवित्र सोमको (उभयस्य अध पिब) दोनों प्रकारके सोमको अब सेवन करो ।

[५४] दुग्ध और सत्तुका आटा सोमरसमें मिला दो ।

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अन्नं । गायत्री । (ऋ० १।१८७।९)

यत्ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वातापे पीव इद्भव ॥ १२१ ॥

हे (सोम) सोम ! (ते यत्) तेरा जो (गवाशिरः) दुग्धमिश्रित और (यवाशिरः) सत्तुका आटा मिलाया हुआ सोमरस है उसका हम (भजामहे) सेवन करते आये हैं उस रससे (वातापे) हे शरीर ! (पीवः इत् भव) तू पुष्ट बन ।

विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० ३।४२।७)

इमं इन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब । आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ १२२ ॥

हे इन्द्र ! (नः इमं गवाशिरं यवाशिरं च) हमारे इस गोदुग्धमिश्रित एवं आटा सत्तु मिलाये हुए तथा (वृषभिः सुतं) पत्थरोंकी मददसे कूटकर निचोडे हुए सोमको (आगत्य पिब) आकर पी जा ।

मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० ८।२।६)

सं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः । इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे ॥ १२३ ॥

हे इन्द्र ! (अस्मिन् सधमादे) इस स्थानमें जहाँपर सब एकसाथ हर्षित होते हैं, हम (तं गोभिः श्रीणन्तः) उस सोमको गायके दूधसे मिलाते हुए (यथा यवं) जैसे जौको स्वादु बनाते हैं, उसी प्रकार (स्वादुं अकर्म) मधुर तथा आस्वादनीय बना चुके हैं।

सोभरिः काण्वः । इन्द्रः । सतो बृहती । (ऋ० ८।२१।८)

विद्मा सखित्वमुत शूर भोज्य१मा ते ता वज्रिन्नीमहे ।

उतो समस्मिन्ना शिशीहि नो वसो वाजे सुशिप्र गोमति ॥ १२४ ॥

हे (वज्रिन्) वज्रधारी ! (सुशिप्र) अच्छी पगडीवाले ! (वसो शूर) सबके बसानेहारे वीर प्रभो ! (ते सखित्वं उत भोज्यं विद्म) तेरी मित्रता और सेवनीय चीज हमें विदित है। (ता ईमहे) उन्हें हम चाहते हैं (अस्मिन् गोमति वाजे) इस गोधनसे पूर्ण अन्नमें (सं आ शिशीहि) भली भाँति तीक्ष्ण करो।

त्रिशोकः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० ८।४५।२८)

तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः । समानमु प्र शंसिषम् ॥ १२५ ॥

(वः जनानां) तुम लोगोंके (तरणिं) तारण कर्ता (गोमतः वाजस्य) गायोंसे युक्त अन्नके दानकर्ता तथा (त्रदं) शत्रुविनाशक इन्द्रकी (समानं प्र शंसिषं) समान ढंगसे सराहना करता हूँ।

[५५] दहीमें मिलाया हुआ सोमरस ।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० १।५।५)

सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये । सोमासो दध्याशिरः ॥ १२६ ॥

निचोडकर तैयार किये हुए (शुचयः) पवित्र तथा विशुद्ध (दध्याशिरः) दहीसे मिश्रित (इमे सोमासः) ये सोमरस (सुतपाव्ने) सोमपान करनेहारेके समीप (वीतये) उसकी प्रीतिके लिए या भक्षणके लिए (यन्ति) चले जाते हैं।

इससे ज्ञात होता है कि दहीमें सोमरस मिलाकर पी लेनेकी प्रथा प्रचलित थी। सोम पीनेसे आनन्द बढता था। यहाँ दही गौके दूधसे ही बनाया हुआ है क्योंकि वसतमें गाय ही रखी जाती थी और इसीलिए दुग्ध एवं दहीका उपयोग बहुधा हुआ करता था।

परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ । अत्यष्टिः । (ऋ० १।१३७।२)

इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः ।

उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।

सुतः मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥ १२७ ॥

हे मित्र एवं वरुण ! (आ यातं) तुम इधर आओ (इमे इन्दवः) ये शांति देनेवाले (दध्याशिरः सुतासः) दही मिलाये हुए (सोमासः दध्याशिरः) सोमरस दहीमें डालकर तैयार किये गये हैं (उत) और (वां उषसः) तुम्हारी उषाका (सूर्यस्य रश्मिभिः साकं) सूर्यके किरणोंके साथ (बुधि) ज्ञान होनेपर (मित्राय वरुणाय पीतये) मित्र एवं वरुणके पानके लिए (चारुः सुतः) अच्छे ढंगसे यह रस निचोडा जा चुका है।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । बृहती । (ऋ० ७।३२।४)

इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।

तान् आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥ १२८ ॥

(इमे दध्याशिरः सोमासः) ये दही मिलाये हुए सोम (इन्द्राय सुन्विरे) इन्द्रके लिए निचोडे गये हैं । हे (वज्रहस्त) वज्र धारण करनेवाले ! (तान् मदाय पीतये) उन्हें आनन्दके लिए पीनेके हेतु (हरिभ्यां ओके आयाहि) घोडोंसे घरपर आ जाओ ।

स्वस्त्यात्रेयः । इन्द्रवायू । उष्णिक् । (ऋ० ५।५१।७)

सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः ।

निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ॥ १२९ ॥

(दध्याशिरः सोमासः) दहीमें मिलाये हुए सोम (इन्द्राय वायवे सुताः) इन्द्र और वायुके लिए निचोडे गये हैं और (सिन्धवः निम्नं न) नदियां निचली जगह जैसी चली जाती हैं वैसे ही (प्रयः अभि यन्ति) अन्नरूप ये सोमरस बहते हैं ।

मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० ८।२।९)

शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः । दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य ॥ १३० ॥

हे सोम ! (क्षीरैः मध्यतः आशीर्तः) दूधोंके बीचमें मिलाया हुआ और (शूरस्य दध्ना मन्दिष्ठः) शूर पुरुषको दहीसे मिश्रित होनेपर अत्यन्त आनन्द देनेवाला तू (पुरुनिःष्ठाः शुचिः असि) बहुतोंमें रहनेवाला एवं पवित्र है ।

[५६] गौके चमडेपर सोम रखो ।

शुनःशेप आजीगर्तिः । प्रजापतिः हरिश्चन्द्रः चर्म सोमो वा । गायत्री । (ऋ० १।२८।९)

उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज । नि धेहि गोरधि त्वचि ॥ १३१ ॥

(चम्वोः शिष्टं सोमं उद्भर) बर्तनोंमें छनाकर भरनेके पश्चात् शेष रहा सोम फिरसे इकट्ठा करो और (पवित्रे आ सृज) उसे पवित्र छलनीपर रख दो, इसके पहिले उसे (गोः त्वचि अधि निधेहि) गायके चमडे पर रख दो ।

छाननेके बाद सोमको गोचर्मपर रखा करते थे । कुछ लोगोंकी धारणा है कि 'गोः त्वचि' पदोंसे बैलका चमडा लेना इष्ट है, गौका नहीं । तथा दूसरे विचारकोंका मत है कि 'गोचर्म' का अर्थ विशेष लंबाई चौडाईकी भूमि है ।

[५७] दूधमें पकाया भात ।

कुरुसुतिः काण्वः । इन्द्रः । बृहती (ऋ० ८।७७।१०)

विश्वेत्ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेषितः ।

शतं महिषान्क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम् ॥ १३२ ॥

(त्वा-इषितः विष्णुः उरुक्रमः) तुमसे प्रेरित विष्णु विशाल क्रमणवाला होकर (ता विश्वा इत् आभरत्) उन सभी वस्तुओंको ला चुका है (इन्द्रः एमुषं वराहं) इन्द्र इस जलको छिपाये रखने वाले बडे भारी मेघको तोड देता है और (क्षीरपाकं ओदनं शतं महिषान्) दूधमें पकाये भातको और सौ महिषोंको देता है । यहां महिष और वराह ये शब्द हैं ।

यदी घृतेभिराहुतो वाशीमग्निर्भरत उच्चाव च । असुर इव निर्णिजम् ॥ १४२ ॥

(यदि अग्निः) जब यह अग्नि (घृतेभिः आहुतः) घृतोंकी आहुति दे डालनेपर (उत् च अव च) ऊपर और नीचे (असुरः निर्णिज इव) सूर्य अपनी स्वच्छ आभाको जिस तरह ऊपर नीचे प्रेरित करता है, वैसे ही (वाशीं भरते) गरजनेवाली ज्वालाको ऊपर नीचे प्रसृत करता है ।

घृतेभिः आहुतः = घीकी आहुतियाँ जिसपर दी जाती हैं ।

विरूप आंगिरसः । अग्निः । गायत्री । (ऋ ८।७५।११)

उदग्ने तव तद् घृतादर्ची रोचत आहुतं । निसानं जुह्वो३मुखे ॥ १४३ ॥

हे अग्ने! (तव तद् आहुतं) तेरा यह आहुतिका दाम (जुह्वः मुखे निसानं) जुहूके मुँहको चाटता हुआ (घृतात्) घीके कारण (अर्चिः उत् रोचते) ज्वालाके रूपमें ऊपर उठकर जग-मगाता है ।

(ऋ ८।७४।११)

तं ईळिष्व य आहुतोऽग्निर्विभ्राजते घृतैः । इमं नः शृणवत् हवम् ॥ १४४ ॥

(यः) जो अग्नि (घृतैः आहुतः) घीकी आहुतियाँ डालनेपर (विभ्राजते) जगमगाता है, (तं ईळिष्व) उसकी स्तुति करो क्योंकि यह (नः इमं हवं शृणवत्) हमारी इस प्रार्थनाको सुन ले ।

१ घृतात् अर्चिः उत् रोचते = घीकी आहुति देनेसे अग्निकी ज्वाला अधिक दीप्तिमान होती है ।

२ घृतैः आहुतः विभ्राजते = घीकी आहुतियोंसे अग्नि विशेष जगमगाता है ।

गोतमो राहूगणः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ १।८४।१८)

को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः ।

कस्मै देवा आ वहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः ॥ १४५ ॥

(कः अग्निं ईट्टे) कौन भक्त अग्निकी पूजा करता है ? (स्रुचा ध्रुवेभिः ऋतुभिः) घीके चमचसे और स्थिर पर्वोंसे कौन भक्त (घृतेन हविषा) घीकी आहुतियोंसे (यजाते) हवन करता है ? (देवाः) देवोंने (होम) हवन (आशु) शीघ्रतया (कस्मै आवहान्) किसके लिए भर दिया, दे दिया ? (कः) कौन भक्त (वीतिहोत्रः सुदेवः) हवन कर्ता और देवोंका भली भाँति यजन करने हारा (मंसते) इन्द्रको जानता है ?

घृतेन हविषा कः यजाते ? = घृतरूप हविसे कौन भक्त अग्निमें यजन करता है ?

गोतमो राहूगणः । अग्नीषोमौ । जगती त्रिष्टुब्वा (ऋ १।९३।८)

यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद्देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।

तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥ १४६ ॥

हे अग्नि तथा सोम ! (यः) जो तुम्हारे लिए (देवद्रीचा मनसा हविषा घृतेन) देवता विषयक भावसे पूर्ण मनसे हविर्द्रव्य युक्त घी लेकर (सपर्यात्) पूजा करेगा, (तस्य व्रतं) उसके कर्मको तुम (रक्षत) बचाओ और उसे (अंहसः पातं) पापसे बचाओ । वैसे ही (विशे जनाय) जनताको (महि शर्म यच्छतं) बहुतसा सुख दे दो ।

घृतेन हविषा मनसा सपर्यात् = घीसे युक्त हविर्द्रव्यसे मन लगाकर हवन करो ।

अथर्वा । इन्द्रः, विश्वे देवाः । विराट् । (अथर्व ७।९८।१)

सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन समिन्द्रेण वसुना सं मरुद्भिः ।

सं देवैर्विश्वदेवेभिरक्तमिन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा ॥ १४७ ॥

(घृतेन हविषा) घी और हवनसामग्रीसे (बर्हिः सं अक्त) आसन भलीभाँति पूर्ण है (इन्द्रेण वसुना मरुद्भिः सं अक्त) इन्द्र वसु मरुतोंके साथ (विश्वदेवेभिः देवैः सं) सब अन्य देवोंके साथ भरपूर हो। (हविः इन्द्रं गच्छतु) यह हवन मुख्य प्रभुको पहुँचे। (स्वा-हा) यह आत्मसमर्पण है।

घृतेन हविषा सं अक्तं = घीसे मिश्रित हविसे यह सम्यक् तथा युक्त हुआ है।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ ७।१४।२)

वयं ते अग्ने समिधा विधेम वयं दाशेम सुष्टुती यजत्र ।

वयं घृतेनाध्वरस्य होतर्वयं देव हविषा भद्रशोचे ॥ १४८ ॥

हे (अध्वरस्य होतर्) हिंसारहित कार्यके दाता ! देवतारूपी अग्ने ! (वयं ते समिधा विधेम) हम तेरे लिए समिधासे यजन करेंगे। हे (यजत्र) पूजनीय ! (सुष्टुती वयं दाशेम) अच्छी स्तुतिके साथ हम दान देंगे; हे (भद्र शोचे) अच्छी कान्तिवाले ! (वयं घृतेन हविषा) हम घीसे भरपूर हविर्भागसे यजन करेंगे।

वयं घृतेन हविषा विधेम = हम घीके हवनसे तेरा यज्ञ करेंगे।

अङ्गिराः । आप्रदेवाः । त्रिष्टुप् (अथर्व ५।१२।१)

उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।

वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥ १४९ ॥

(त्मन्या समञ्जन्) स्वयं प्रकट होता हुआ तू (देवानां पाथः हवींषि ऋतुथा उप अवसृज) देवोंके लिए अन्न तथा हवन ऋतुके अनुसार दे (वनस्पतिः शमिता देवः अग्निः) समिधासे उत्पन्न शांतिकर्ता अग्निदेव (मधुना घृतेन) मीठे घृतके साथ (हव्यं स्वदन्तु) हव्यका आस्वाद ले ले।

मधुना घृतेन हव्यं स्वदन्तु = देवतायें मधुर घीसे युक्त हविका स्वाद लेवें।

चातनः । अग्निः । त्रिष्टुप् (अथर्व १।७।१)

अन्तर्दावे जुहुता स्वेतद् यातुधानक्षयणं घृतेन ।

आराद् रक्षांसि प्रति दह त्वमग्ने न नो गृहाणामुप तीतपासि ॥ १५० ॥

(एतत् यातुधान क्षयणं) यह पीडा देनेवालोंका नाश करनेवाला हवि (दावे अन्तः) प्रदीप्त अग्निमें (घृतेन सु जुहुत) घीसे ठीक प्रकार हवन करो। हे अग्निदेव ! (त्वं रक्षांसि आरात् प्रति दह) तू राक्षसोंको समीपसे और दूरसे जला दे और (नः गृहाणां न उप तीतपासि) हमारे घरोंको न ताप दे।

१ यातुधान-क्षयणं दावे अन्तः घृतेन सुजुहुत = शारीरिक यातना जिनसे होती है उन रोगबीजोंका नाश करनेवाला हवन प्रदीप्त अग्निमें घीके साथ हवन रीतिसे करो।

२ त्वं रक्षांसि आरात् प्रतिदह = तू राक्षसोंको दूरसे तथा समीपसे जला दे।

यातुधान और (रक्षांसि) राक्षस ये सब यहां रोगबीजोंके वाचक हैं। अग्निमें घीका हवन करनेसे ये रोगबीज नष्ट होते हैं, हवा शुद्ध होती है, और रोग दूर होते हैं

अथर्वा । देवाः । अनुष्टुप् (अथर्व ३।१।११)

इळया जुह्वतो वयं देवान् घृतवता यजे ।
गृहानलुभ्यतो वयं सं विशेमोप गोमतः ॥ १५१ ॥

(इळया घृतवता जुह्वतः) गौ द्वारा प्राप्त घीसे युक्त अर्पण द्वारा हवन करनेवाले (वयं देवान् यजे) हम देवोंका यजन करते हैं (अलुभ्यतः गोमतः गृहान्) लोभ रहित अर्थात् उदार एवं गायोंसे युक्त घरोंमें (वयं उप सं विशेम) हम प्रवेश करेंगे।

इळया घृतवता जुह्वतः = गौ द्वारा प्राप्त घीसे युक्त हवनसे हवन करनेवाले हम हैं।

अथर्वा । जातवेदः । त्रिष्टुप् (अथर्व ३।१।४)

इडायास्पदं घृतवत् सरीसृपं जातवेदः प्रतिहव्या गृभाय ।
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपास्तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्तु ॥ १५२ ॥

हे (जातवेदः) उत्पन्न वस्तुओंको जाननेवाले ! (इडायाः घृतवत् सरीसृपं पदं प्रति) गौके घीसे युक्त चलनेवाले स्थानके प्रति (हव्या गृभाय) हवनीय चीजोंका ग्रहण कर, (ये ग्राम्याः विश्वरूपाः पशवः) जो देहातोंमें रहनेवाले अनेक रूपवाले पशु हैं (तेषां सप्तानां रन्तिः मयि अस्तु) उन सातोंकी प्रीति मुझमें हो जाए।

इडायाः घृतवत् पदं = गौका स्थान घीसे युक्त है

[९१] घीयुक्त दूधका हवन ।

अथर्वा । यमः मन्त्रोक्ताः । अनुष्टुप् (अथर्व १८।२।२)

यमाय घृतवत् पयो राज्ञे हविर्जुहोतन ।
स नो जीवेष्वा यमेद्दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥ १५३ ॥

(यमाय राज्ञे) यमराजके लिए (घृतवत् पयः) घीसे मिश्रित दूध तथा (हविः जुहोतन) हविर्भागका प्रदान करो (सः) वह (प्रजीवसे) प्रकृष्टतया जीनेके लिए (जीवेषु नः दीर्घं आयुः आ यमेत्) जीवलोकमें हमें दीर्घ जीवन देवे।

अथर्वा । यमः । मन्त्रोक्ताः । अनुष्टुप् (अथर्व १८।२।१४)

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।
येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १५४ ॥

(एकेभ्यः) कइयोंके लिए (सोम पवते) सोमरस बहता है और (एके घृतं उपासते) कुछ लोग घीकी उपासना करते हैं, इन्हें तथा (येभ्यः मधु प्रधावति) जिनके लिए मधु धारारूपसे बहता है (तान् चित् अपि) उनको भी तू (गच्छतात्) प्राप्त हो जा।

१ घृतवत् पयः हविः जुहोतन = घृतमिश्रित दूधकी हविका हवन करो।
२ एके घृतं उपासते = कई घीकी उपासना करते हैं।

भृगुः । आज्यं अग्निः । त्रिष्टुप् । (अथर्व ४।१४।६)

अजमनज्मि पयसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥ १५५ ॥

(दिव्यं सुपर्णं पयसं) प्रकाशमान अत्यन्त पूर्ण तेजस्वी गतिमान और (बृहन्तं अजं घृतेन पयसा अनज्मि) बड़े अजन्मा परम आत्माको घृत और दुग्धसे बहुत पूजा करता हूँ (उत्तमं नाकं

नाभि मारोहन्तः) उत्तम स्वर्गके ऊपर चढते हुए (तेन सुकृतस्य लोकं स्वः गेष्म) उससे पुण्यके प्रकाशमय लोकको प्राप्त करेंगे ।

घृतेन पयसा समग्निम = घी और दूधसे मैं अग्निकी पूजा करता हूं, उपासना करता हूं ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । आपः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।४७।३)

शतपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः ।

ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवत् जुहोत ॥ १५६ ॥

(स्वधया मदन्तीः देवीः) स्वधासे हर्षित होती हुई दिव्य गुणयुक्त (शतपवित्राः) सौ पवित्र रूपवाली नदियों (देवानां पाथः अपि यन्ति) देवोंके मार्गपर ही चली जाती हैं (ताः इन्द्रस्य व्रतानि न मिनन्ति) वे इन्द्रके व्रतोंका विनाश नहीं करती हैं इसलिए (सिन्धुभ्यो घृतवत् हव्यं जुहोत) सिंधुओंके लिए घीसे युक्त हविर्भागकी आहुति दे दो ।

घृतवत् हव्यं जुहोत = घीसे युक्त हविका हवन करो ।

विश्वामित्रो गाथिनः । मित्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ३।५९।१)

मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।

मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥ १५७ ॥

(ब्रुवाणः मित्रः) आदेश देनेहारा सूर्य (जनान् यातयति) मानवोंको प्रयत्नशील बनाता है (मित्र पृथिवीं उत द्यां दाधार) मित्रसूर्यने भूमि तथा द्युलोकको धारण कर रखा है, (मित्रः अनिमिषा) सूर्य अनवरतरूपसे (कृष्टीः अभि चष्टे) मानवोंको देखता है (घृतवत् हव्यं) घीमें डुबोया हुआ हविर्द्रव्य (मित्राय जुहोत) मित्रके लिए अर्पण करो ।

घृतवत् हव्यं जुहोत = घृतमिश्रित हवनीय पदार्थोंका हवन करो ।

[६२] घृतमिश्रित मधु ।

ब्रह्मा । स्वर्गः ओदनः, अग्निः । पराबृहती । (अथर्व ११।१।२७)

आदित्येभ्यो अंगिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि ।

शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम् ॥ १५८ ॥

(इदं मधु) यह शहद (घृतेन मिश्रं) घीसे मिलाया हुआ आदित्य तथा अंगिरसोंके लिए है ऐसा (प्रति वेदयामि) कहता हूं (शुद्ध हस्तौ ब्राह्मणस्य अनिहत्य सुकृतौ) जो विशुद्ध हाथ ज्ञानी पुरुषका अहित नहीं करते वे पुण्यवान होते हैं वे (एतं स्वर्गं अपि इतं) इस स्वर्गको प्राप्त हों ।

(अथर्व ११।१।३१ [उत्तरार्धः])

आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ग्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र ॥ १५९ ॥

(घृतवत् सर्पिः आसिञ्च समङ्ग्धि) घीसे युक्त मधु यहाँ रख और मिला; (एष नः भागः अत्र अंगिरसः) यह हमारा अंगिरसोंका भाग है ।

१ इदं मधु घृतेन मिश्रं = यह शहद घीसे युक्त है वह सेवन करने योग्य है ।

२ घृतवत् सर्पिः आसिञ्च = घीसे युक्त हविर्द्रव्य यहां अर्पण कर ।

अत्रिर्भौमः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् (ऋ० ५।४२।३)

उदीरय कवितमं कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन ।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥ १९० ॥

(कवीनां कवितमं) क्रान्तदर्शियोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ को (उद् ईरय) ऊपरकी ओर प्रेरित कर (एनं मध्वा घृतेन) इसे मधु तथा घीसे (अभि उनत्त) पूर्णतया सींच दो (सः देवः सविता) वह दानी एवं उत्पादक प्रभु (चन्द्राणि हितानि) आनन्ददायक हितकारक (प्रयता वसूनि) निर्धारित धनोंको (नः सुवाति) हमारे लिए उत्पन्न करता है ।
मध्वा घृतेन अभि उनत्त = मधुर घीसे वर्धन कर ।

[६३] घीसे अग्निका बढना ।

(भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । गायत्री (ऋ० ६।१६।११)

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ १९१ ॥

हे (यविष्ठ्य) अत्यन्त युवक ! (अङ्गिरः) प्रत्येक अंगमें प्रदीप्त होनेवाले ! (बृहत् शोचा) तू बहुत कान्तिवाला है इसलिए (तं त्वा) उस प्रसिद्ध तुझको हम (समिद्भिः) समिधाओंसे और (घृतेन) घीसे (वर्धयामसि) बढाते हैं ।
घृतेन वर्धयामसि = अग्निको घीसे बढाते हैं ।

गृत्समद [आङ्गिरसः शौनहोत्र पश्चात्] भार्गवः शौनकः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० २।१०।४)

जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानं ॥ १९२ ॥

(विश्वा भुवनानि प्रति क्षियन्तं) सभी भुवनोंके प्रत्येक स्थानमें रहनेवाले (पृथुं) विस्तृत तथा (तिरश्चा वयसा बृहन्तं) टेढी चालसे जानेके कारण बहुत बढनेवाले (अन्नैः व्यचिष्ठं) अन्नोंसे युक्त होनेके कारण (रभसं दृशानं) पश्चात् दो सुगमतासे दिखाई देनेवाले (अग्निं) अग्निको (हविषा) हविद्रव्योंसे तथा (घृतेन) घीसे (जिघर्मि) प्रदीप्त करता हूं ।
अग्निं घृतेन जिघर्मि = अग्निको घीसे प्रदीप्त करता हूं ।

अथर्वा । सांमनस्यम्, वरुणसोमाऽग्निबृहस्पतिवसवः । त्रिष्टुप् (अथर्व० ६।७३।२)

यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तराकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा ।
तान्त्सीवयामि हविषा घृतेन मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥ १९३ ॥

(यः शुष्मः) जो बल (वः हृदयेषु अन्तः) तुम्हारे हृदयोंमें है, (या आकूतिः) जो संकल्प (वः मनसि प्रविष्टा) तुम्हारे मनोंमें घुस गया है (तान्) उन्हें (हविषा घृतेन) हविर्भाग एवं घीसे (सीवयामि) मैं जोड देता हूं । (सजाताः) हे उत्तम कुलमें उत्पन्न पुरुषो ! (वः रमतिः) तुम्हारी प्रसन्नता (मयि अस्तु) मुझपर रहे ।
तान् हविषा घृतेन सीवयामि = उनको मैं घीसे हवनसे जोड देता हूं । संयुक्त करता हूं ।

[६४] तीन वर्षोंतक गायके घृतका हवन ।

पराशरः शाक्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् (ऋ १।७२।३)

तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्वः सुजाताः ॥ १६४ ॥

हे अग्ने ! (शुचिं त्वा इत्) पवित्र ऐसे (तिस्रः शरदः) तीन वर्ष (घृतेन यत्) घृतकी आहुतियोंसे जब (शुचयः) तेजस्वी वीर मरुतोंने (सपर्यान्) पूजित कर रखा है, उस समय उन्होंने (यज्ञियानि नामानि दधिरे) पूज्य नाम धारण कर लिये और वे (सुजाताः तन्वः) भली भांति उत्पन्न हुए वीर शरीर सुशोभित कर (असूदयन्त) परिपक्व हुए, श्रेष्ठ बन गये ।

तीन वर्षोंतक गौके घृतका हवन करनेपर शरीर, मन और बुद्धि तीनों पवित्र होते हैं और उपासक पवित्रताके कारण श्रेष्ठ बनता है ।

स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर ये तीनों घृतके हवनसे निर्दोष होते हैं ।

वसुश्रुत आत्रेयः । इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा । गायत्री । (ऋ ५।५।१)

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥ १६५ ॥

(सुसमिद्धाय) भली भांति प्रज्वलित (शोचिषे जातवेदसे अग्नये) तेजस्वी बनी हुई चीजोंको जलानेवाले अग्निके लिए (तीव्रं घृतं जुहोतन) तीव्र घीकी आहुति डाल दो ।

अग्नये घृतं जुहोतन = अग्निके लिए घीका हवन करो ।

[६५] इन्द्र अग्निके लिये घी ।

अग्निर्भौमः । इन्द्राग्नी । विराट्पूर्वा (ऋ ५।८६।६)

एवेन्द्राग्निभ्यां अहावि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः ।
ता सूरिषु श्रवो बृहद्रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम् ॥ १६६ ॥

(इन्द्र-अग्निभ्यां एव) इन्द्र तथा अग्निके लिए ही (शूष्यं हव्यं घृतं) बलदायक, हवन योग्य घृतको (अद्रिभिः पूतं न) पत्थरोंसे निचोडे हुए शुद्ध सोमरसके तुल्य (अहावि) आहुतिके रूपमें डाल दिया है (ता) ऐसे ये तुम दोनों (गृणत्सु सूरिषु) प्रशंसा करनेवाले विद्वानोंमें (बृहत् रयिं इषं श्रवः दिधृतं) बडे भारी धन अन्न और यशको धर दो ।

शूष्यं घृतं हव्यं = बलवर्धक घी हवन करने योग्य है ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ ७।३।७)

यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः ।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि ॥ १६७ ॥

(वः अग्नये) तुम्हारे अग्निके लिए (घृतवद्भिः हव्यैः) घीयुक्त हवियोंसे (इळाभिः च) गायोंके दुग्धजन्य चीजोंसे (यथा परिदाशेम) जैसे हम सेवा करते हैं वैसे ही हे अग्ने ! (अमितैः तेभिः महोभिः) असीम उन तेजोंसे (आयसीभिः शतं पूर्भिः) लोहेकी बनी हुई सौ नगरियोंसे (नः नि पाहि) हमारी नितान्त रक्षा कर ।

घृतवद्भिः हव्यैः परिदाशेम = घीसे परिपूर्ण शुद्ध हुए हविद्रव्यसे हम अग्निकी सेवा करें ।

(भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।११।५)

वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्नावयामि स्रुग्घृतवती सुवृक्तिः ।

अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः ॥ १६८ ॥

(यत् नमसा) जो नमन पूर्वक (बर्हिः वृञ्जे ह) मैं कुशासनको ठीक प्रकार रखता हूं, (अग्नौ घृतवती स्रुक्) अग्निमें घीसे भरी हुई स्रुवाको जो कि (सुवृक्तिः) सुन्दर ढगसे बनी हुई है (अयामि) मैं प्रेरित करता हूं (पृथिव्या सदने) भूमिके स्थानमें (सद्म अम्यक्षि) घर बनाया गया है और (सूर्ये चक्षुः न) सूर्यमें दर्शनशक्ति जिस प्रकार टिकी हुई है वैसे ही (यज्ञः अश्रायि) यज्ञको आश्रय मिल चुका है।

अग्नौ घृतवती स्रुक् अयामि = अग्निमें हवन करनेके लिये घृतसे परिपूर्ण स्रुवाको मैं प्रेरित करता हूं।

[६६] घीमें भिगोये हुए लाजाओंका हवन।

मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ० १।१६।२)

इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः । इन्द्रं सुखतमे रथे ॥ १६९ ॥

(हरी) दोनों घोडे (सुखतमे रथे) अत्यन्त सुख देनेहारे रथमेंसे (इन्द्रं) इन्द्रको (इह) यहाँपर (इमाः घृतस्नुवः धानाः) इस घीमें भिगोये हुए लाजाओंके समीप (उप वक्षतः) ले जायें।

घृतस्नुवः धानाः = घीमें पूरी तरह भिगोयी हुई लाजाएँ हवनके लिए काममें लायी जाहिएँ।

[६७] घृतका प्रेरक अग्नि।

वसूयव आत्रेयाः । अग्निः । गायत्री (ऋ० ५।२६।२)

तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् । देवाँ आ वीतये वह ॥ १७० ॥

हे (घृतस्नो) घृतके प्रेरक ! तथा (चित्रभानो) विचित्र तेजस्वी किरणोंसे युक्त ! (स्वर्दृशं तं त्वा) तेजको देखनेवाले उस विख्यात तुझको (ईमहे) हम चाहते हैं। (वीतये) पवित्रता करनेके लिए तथा हविका उपभोग लेनेके लिए (देवान् आवह) देवोंको तू इधर ले आ।

घृतस्नुः = घीको प्रेरणा देनेवाला।

ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वेदेवाः । गायत्री (ऋ० ६।५२।८)

यो वो देवा घृतस्नुना हव्येन प्रतिभूषति । तं विश्व उप गच्छथ ॥ १७१ ॥

हे देवो ! (यः घृतस्नुना हव्येन) जो घी टपकानेवाले हविर्भागसे (वः प्रति भूषति) तुम्हें अलंकृत करता है (तं) उसके समीप (विश्वे उपगच्छथ) सभी चले जाओ।

घृतस्नुना हव्येन प्रतिभूषति = घी जिससे टपकता है ऐसे हवनीय पदार्थके हवनसे भूषित करते हैं।

[६८] घृतयुक्त यज्ञ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्य आङ्गिरसो वा । अग्निः । त्रिष्टुप् (ऋ० ६।१५।१६)

अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम् ।

कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥ १७२ ॥

हे अग्ने (स्वनीक) अच्छी सेना साथ रखनेवाले ! (प्रथमः) तू पहला है इसलिए (विश्वेभिः देवैः) सभी देवोंके साथ (ऊर्णावन्तं योनिं सीद) ऊनवाली मूल जगह पर बैठ जा (सवित्रे यज्ञ

मानाय) उत्पादक यजमानके लिए (कुलायिन घृतवन्तं यज्ञं) जनसमूहोंसे युक्त और घीसे पूर्ण यज्ञको (साधु नय) ठीक तरहसे ले जा।

घृतवन्तं यज्ञं नय = घीसे युक्त यज्ञको ले जा। समाप्त कर।

दीर्घतमा औचथ्यः। तनूनपात्। अनुष्टुप् (ऋ. १।१४२।२)

घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात्।

यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥ १७३ ॥

हे (तनू-न पात्) शरीरका पतन न करानेवाले अग्निदेव! तू (शशमानस्य) प्रशंसक (घृतवन्तं मधुमन्तं) घृतसे युक्त और मीठे अन्नोंसे युक्त (यज्ञं) यज्ञ को तू (उप मासि) समीप जाकर पूर्णता करता है।

घृतवन्तं यज्ञं उपमासि = अग्नि घतयुक्त यज्ञको परिपूर्ण कर देता है।

[६९] घीकी आहुति जिसके पृष्ठपर होती है ऐसा अग्नि।

अत्रिर्भौम। इन्द्र। त्रिष्टुप् (ऋ. ५।३७।१)

स भानुना यतते सूर्यस्याजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः।

तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान्य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥ १७४ ॥

(सूर्यस्य भानुना) सूर्यके किरणके साथ (स यतते) अच्छी भाँति प्रयत्न करता है अतः अग्नि भी (आजुह्वानः) हवनसामग्री लेता हुआ (घृतपृष्ठः स्वञ्चाः) घीसे पूर्ण होकर सुन्दर दीख पड़ता है। (यः आह) जो कहता है कि (इन्द्राय सुनवाम इति) इन्द्रके लिए सोमरस निचोड़ें (तस्मै उषसः) उसके लिए प्रातःकाल (अमृध्राः व्युच्छान्) किसी प्रकारकी क्षति न पहुँचाते हुए प्राप्त हों।

घृतपृष्ठः आजुह्वानः = जिसपर घीका हवन होता है ऐसा अग्नि है।

[७०] गायका घी पीनेसे दीर्घायुकी प्राप्ति।

अथर्वा। अग्निः। त्रिष्टुप् (अथर्व. २।१३।१)

आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने।

घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम् ॥ १७५ ॥

(अग्ने अग्ने!) हे अग्रगन्ता अग्नि! तू (घृत-प्रतीक) घृतवान्, तेजस्वी तथा (घृत-पृष्ठः) घीका सेवन करनेवाला है और (आयुः-दा जरसं वृणानः) जीवन देनेहारा एवं स्तुतिका स्वीकार करने वाला है इसलिए (मधु चारु) मीठा सुन्दर (गव्यं घृतं पीत्वा) गायका घी पीकर (पिता पुत्रान् इव) पिता पुत्रोंको जैसे सुरक्षित रखता है वैसे ही (इमं अभिरक्षताम्) इसकी रक्षा करो।

मीठा सुन्दर गायका घी पीनेसे दीर्घायु तथा नीरोगता मिलती है।

गव्यं घृतं पीत्वा इमं अभिरक्षतात् = गायका घी पीकर इसकी सुरक्षा करो।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। अग्निः। त्रिष्टुप् (ऋ. ७।२।४)

सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु प्र वृञ्जते नमसा बर्हिरग्नौ।

आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्वदध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम् ॥ १७६ ॥

(अभिज्ञु भरमाणाः) घुटने टेककर अन्न देनेवाले (सपर्यवः) पूजा करनेवाले लोग (अग्नौ) अग्निमें (नमसा बर्हिः प्र वृञ्जते) नमन पूर्वक बर्हि डाल देते हैं हे अध्वर्युओ! (घृतपृष्ठं) जिसकी

पीठपर घीकी आहुति दी जाती हो ऐसे तथा (घृतप्रुष्) मोटे धर्मोंसे युक्त अग्निमें (आ जुह्वाना) आहुतियाँ डालते हुए (हविषा मर्जयध्वं) उसे हविसे निर्दोष करो।

घृतपृष्ठ = घीकी आहुति जिसके पीठपर दी जाती है।

वसुश्रुत आत्रेयः। अग्निः। त्रिष्टुप् (ऋ. ५।४।३)

विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम्।
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे स देवेषु वनते वार्याणि॥ १७७॥

(मानुषीणां विशां) मानवी प्रजाओंके (विश्पतिं) नरेश (शुचिं कविं पावकं) विशुद्ध विद्वान, पवित्र करनेवाले (घृतपृष्ठं अग्निं) घीसे प्रज्वलित अग्निको जो (होतारं विश्वविदं) दानी एवं सब बातोंको जाननेवाला है उसे (नि दधिध्व) ठीक प्रकार रख दो, अच्छे पदपर बिठला दो क्योंकि (सः) वह (देवेषु वार्याणि वनते) विद्वानोंमें स्वीकारने योग्य चीजोंको बाँट देता है।

घृतपृष्ठं अग्निं = घीका हवन जिसपर होता है ऐसा अग्नि है।

सुतंभर आत्रेयः। अग्निः। गायत्री (ऋ. ५।१४।५-६)

अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत। वेतु मे शृणवद् हवम्॥ १७८॥
अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम्। स्वाधीभिर्वचस्युभिः॥ १७९॥

(ईळेन्यं) प्रशंसनीय (घृतपृष्ठं कविं) घृतयुक्त तथा क्रान्तदर्शी (अग्निं सपर्यत) अग्निकी पूजा करो (मे हवं) मेरी पुकारको (वेतु) वह चाहे और (शृणवत्) सुन ले।

(विश्व-चर्षणिं) सबके द्रष्टा तथा (स्वाधीभिः) अच्छे ध्यानवाले (वचस्युभिः) भाषणोंकी इच्छा करनेवाले देवोंके साथ रहनेवाले (अग्निं) अग्निको (घृतेन स्तोमेभिः वावृधुः) घी और स्तोत्रोंसे बढा चुके हैं।

१ घृतपृष्ठं अग्निं सपर्यत = जिसके पीठपर घीका हवन होता है ऐसे अग्निकी पूजा करो
२ अग्निं घृतेन वावृधुः = अग्निको घीसे बढाते हैं।

मेधातिथिः काण्वः। बर्हिः। गायत्री (ऋ. १।१३।५)

स्तृणीत बर्हिरानुषग्घृतपृष्ठं मनीषिणः। यत्रामृतस्य चक्षणम्॥ १८०॥

हे (मनीषिणः) बुद्धिमान लोगो! (यत्र अमृतस्य चक्षणं) जिस स्थानपर अमृतका दर्शन होता है ऐसे यज्ञस्थलमें (आनुषक् घृतपृष्ठं) घीमें तराबोर हवनद्रव्य (बर्हिः) कुशासनोंपर (स्तृणीत) फैला दो हवनके लिए तैयार रखो।

यह भूमिमें अमृत पाया जाता है वहाँपर हविर्द्रव्य हवनके लिए तैयार रखने चाहिए जो घीसे तरबतर हों।

बर्हिः = हविर्द्रव्य एवं दर्भासन

घृतपृष्ठं = जिसकी पीठपर घी है घीसे तरबोर समिधा आदि चीजें घीसे पूर्ण हों।

अथर्वा। यमः मन्त्रोक्ताः। अनुष्टुप्। (अथर्व. १८।४।४१-४२)

समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम्।
स वेद निहितान् निधीन् पितॄन् परावतो गतान्॥ १८१॥
य ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः॥ १८२॥

(अमर्त्यं) मरण धर्मसे रहित (घृतप्रियं) जिसे घी बहुत प्रिय है ऐसे (हव्यवाहं) हविर्भाग ढोनेवाले अग्निको (समिन्धते) भली भाँति प्रदीप्त करते हैं और (सः) वह अग्नि (निहितान्

निधीन्) छिपे हुए खजानोंकी तरह (परावतो गताम् पितृन्) दूर चले गये पितरोंको (वेद) जानता है ॥ ३१ ॥

(ते य मन्थ) तेरे जिस पिलोडनेसे प्राप्त पदार्थ मक्खन आदिको और (यं ओदनं) जिस भातको (यत् मांस) जिस मांसको (ते निपृणामि) तेरे लिए देता हूँ (ते) वे सभी (स्वधावन्तः मधुमन्तः घृतश्चुतः) स्वधावाले मधुरतासे युक्त तथा घीसे पूर्ण (ते सन्तु) तेरे लिए हों ॥

१ घतप्रियं हव्यवाहं समिन्धते = घी जिसे प्रिय है ऐसे हविर्भाग ढोनेवाले अग्निको प्रदीप्त करते हैं ।

२ ते घतश्चुता सन्तु = तेरे लिये घीसे भरपूर आहुतियाँ हों ।

सुपर्णः काण्वः । इन्द्रावरुणौ । जगती । (ऋ ८।५९।५)

अवोचाम महते सौभगाय सत्यं त्वेषाभ्यां महिमानमिन्द्रियं ।

अस्मान्त्स्विन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्त्रिभिः साप्तेभिरवत शुभस्पती ॥ १८३ ॥

(महते सौभगाय) बड़ा ऐश्वर्य प्राप्त करनेके लिये हम (सत्यं) सत्य (त्वेषाभ्यां) तेजस्विता (महिमानं) बड़ा सामर्थ्य और (इन्द्रियं) ऐश्वर्य तेरे पास है ऐसा (अवोचाम) कहते हैं । हे (शुभस्पती) श्रेष्ठ सामर्थ्यवाले इन्द्र और वरुण ! (घृतश्चुतः अस्मान्) घीकी आहुति देनेवाले हमको (त्रिभिः साप्तेभिः) इक्कीस वार (अवत) सुरक्षित रखो ।

घृतश्चुतः अवतं= घीकी आहुतियाँ देनेवालोंकी रक्षा कर ।

अथर्वा । यमः । अनुष्टुप् (अथर्व १८।४।१८)

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।

ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥ १८४ ॥

(यान् अपूपापिहितान्) जिन मालपुओंसे ढके हुए (कुम्भान् देवाः ते अधारयन्) घड़ोंको देवोंने तेरे लिए धारण किया है (ते) वे घड़े (ते मधुमन्तः घृतश्चुतः) तेरे लिए मधुरतायुक्त, घीसे लबालब भरे हुए और (स्वधावन्तः सन्तु) अन्नवाले हों ।

मधुर घीवाले घड़े भरे रहें ।

विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः । त्रिष्टुप् (ऋ ३।१।८)

बभ्राण सूनो सहसो व्यद्यौद्दधानः शुक्रा रभसा वपूंषि ।

श्चोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ॥ १८५ ॥

हे (सहसः सूनो) बलके पुत्र अग्ने ! (बभ्राणः) सबसे धारण किये जानेवाला (शुक्रा रभसा वपूंषि दधानः) तेजस्वी वेगवान् ज्वालाओंको धारण करता हुआ तू (वि अद्यौत्) ऊपर विशेष ढंगसे प्रोतमान हुआ है, जहाँपर (यत्र वृषा काव्येन वावृधे) बलवान् अभिमंत्रोंसे प्रज्वलित किया जाता है वहाँपर (मधुनः घृतस्य धाराः) मीठे घृतकी धारायें (श्चोतन्ति) टपकती हैं आहुतियोंके स्वरूपमें घीके प्रवाह अग्निमें आ गिरते हैं ।

(ऋ ३।१।१८)

नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन् ।

घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ॥ १८६ ॥

(अमृतः राजा) अमरत्व प्राप्त किया हुआ तथा विराजमान यह अग्नि (विदथानि साधन्) यज्ञोंकी सिद्धता करता हुआ (मर्त्यानां दुरोणे) मानवोंके घरमें (नि ससाद) निवास कर चुका

है; (विश्वानि काव्यानि विद्वान्) सभी तरहके काव्य जाननेहारा और (घृतप्रतीकः) घृतसे प्रज्वलित होनेवाला (उर्विया अग्निः) बृहदाकार शरीरवाला अग्नि (वि अद्यौत्) विशेष ढंगसे प्रकाशमान हो रहा है।

१ घृतस्य धाराः श्चोतन्ति = घी की धाराएं अग्निमें गिरती हैं

२ घृतप्रतीकः अग्निः वि अद्योत् = घीसे प्रज्वलित हुआ अग्नि अब विशेष प्रकाशने लगा।

वसुश्रुत आत्रेयः। अग्निः। त्रिष्टुप् (ऋ. ५।१५।१)

प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय।

घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः ॥ १८७॥

(वेधसे) विधाता (कवये) विद्वान् (वद्याय) स्तुत्य (पूर्व्याय) प्रमुख (यशसे) यशस्वीके लिए (गिरं प्र भरे) स्तुतिपूर्ण भाषण कर देता हूँ, क्योंकि यह (अग्निः) अग्रणी (घृतप्रसत्तः) घीके सेवनसे प्रसन्न (असुरः) बलवान्, (सुशेवः) अच्छी सेवा करने योग्य (रायो धर्ता) धनसंपदाका धारण करनेवाला (वस्वः) धनका (धरुणः) धारक है।

घृतप्रसत्तः अग्निः = घीका सेवन करनेसे प्रसन्न हुआ यह अग्नि है।

वामदेवो गौतमः। अग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ. ४।१०।२)

ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अद्य घृतनिर्णिजो गुः।

प्र वः सुतासो हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः ॥ १८८॥

(अद्य) आजके दिन (ते जुष्टासः घृतनिर्णिजः) वे सेवन किये हुए, घृतमें डुबाकर स्वच्छ किये हुए (यज्ञाः वः हृदे मनसे) यज्ञ तुम्हारे अंतःकरणोंमें तथा मनमें (सन्तु) रहें और (गुः) चले जाएँ (पूर्णाः सुतासः) संपूर्ण निचोडे हुए सोम (वः क्रत्वे दक्षाय) तुम्हारे कर्म एवं उत्साहके लिए (प्रहरयन्त) लाये गये हैं और (पीताः हर्षयन्त) पीनेपर हर्ष देते हैं।

घृतनिर्णिज यज्ञाः सन्तु = यज्ञ घीसे युक्त हों।

प्रस्कण्वः काण्वः। अग्निः। अनुष्टुप् (ऋ. १।४५।१)

त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत।

यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥ १८९॥

हे अग्ने! (त्वं) तू (इह) इस यज्ञमें (वसून् रुद्रान्) वसु, रुद्र (आदित्यान्) आदित्य (उत) और (घृतप्रुषं मनुजातं) घीसे भरी हुई आहुतियाँ देनेवाले मनुसे उत्पन्न और (स्वध्वरं) उत्तम यज्ञ करनेहारे (जनं यज) मानवका सत्कार कर।

घृत प्रुष = घीसे लबालब भरे हवनीय द्रव्योंकी आहुति देनी चाहिए। जिसकी आहुति अग्निमें डालनी हो उसे घृतमें सराबोर करके ही पश्चात् हवन करना ठीक है।

घृत घीसे (प्रुष) परिपूर्ण आहुतिको अग्निमें डालनेवाला।

विश्वामित्रो गाथिनः। तनूनपात्। त्रिष्टुप् (ऋ. ३।४।२)

यं देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते दिवे दिवे वरुणो मित्रो अग्निः।

सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस्तनूनपाद् घृतयोनिं विधन्तं ॥ १९०॥

हे (तनू-नपात्) शरीरको न गिरानेवाले अग्ने! वरुण मित्र तथा अग्नि (देवासः दिवेदिवे) द्योतमान या दानी होकर प्रतिदिन (अहन् त्रिः) दिनमें तीन बार (यं आयजन्ते) जिसका यजन

करते हैं (नः) ऐसा विख्यात तू (इमं न यज्ञं) इस हमारे यज्ञको (घृतयोनिं विधन्त) घृतयुक्त विधियुक्त तथा (मधुमन्तं कृधि) मधुर अन्नसे पूर्ण बना दे ।

घृतयोनिं कृधि = इसे घृतयुक्त बना दे ।

गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । स्वाहाकृतयः । त्रिष्टुप् (ऋ २।३।११)

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।

अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥ १९१ ॥

(घृतं) घीका मैं इस अग्निपर (मिमिक्षे) सेचन करता हूं क्योंकि (अस्य योनिः) इसका उत्पत्तिस्थान (घृतं) घी ही है- और (घृते श्रितः) उत्पन्न होनेके पश्चात् भी वह घीमें ही आश्रय लेकर रहता है इसलिए (अस्य धाम घृतं) इसका घर घी ही है । हे (वृषभ) बलिष्ठ अग्ने ! तुम (अनु स्वधं) अन्नके हवनके समान ही हविर्द्रव्य देवोंके लिए (आ वह) ले चलो और उन्हें (मादयस्व) हर्षित करो और (स्वाहाकृतं हव्यं) पश्चात् स्वाहाकारपूर्वक दिया हुआ हविर्द्रव्य (वक्षि) ले जाओ ।

घृतं मिमिक्षे अस्य योनिः घृतं घृते श्रितः अस्य धाम घृतं = मैं इस अग्निमें घीका हवन करता हूं इस अग्निका तेज घीसे बढता है घीके आश्रयसे वह रहा है इसका घर ही घृत है । अर्थात् घीसे ही अग्नि बढता है ।

दीर्घतमा औचथ्यः । विष्णुः । जगती (ऋ १।१५६।१)

भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः ।

अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥ १९२ ॥

(विष्णो !) हे व्यापक देव ! तू (मित्रः न शेव्यः) मित्रके समान सुख देनेवाला, (घृत-आसुतिः) जिसके लिए घृत दिया जाता है ऐसा (विभूत-द्युम्नः) विशेष तेजस्वी और (एवयाः) सहायताके लिए शीघ्र आनेवाला तथा (स प्रथाः उ) सभी ओर बडा (भव) हो जा । (अध ते स्तोमः) क्योंकि तेरा स्तोत्र जैसे (विदुषा) विद्वानोंसे (अर्ध्यः) बार-बार की जाती है उसी प्रकार तेरे लिए (यज्ञः च चित्) यज्ञ भी (हविष्मता) हविष्यान्न समीप रखनेवालेसे (राध्यः) किया जाता है ।

घृतासुतिः = (घृत-आसुतिः) = घी जिसको दिया जाता है ।

सोमाहुतिर्भार्गवः । अग्निः । गायत्री (ऋ २।७।६)

द्रवन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥ १९३ ॥

(द्रु-अन्नः) समिधारूपी अन्न खानेवाला (सर्पिः आ सुतिः) घृतकी आहुति लेनेवाला (प्रत्नः होता) पुरातन हवन करनेवाला (वरेण्यः) वरणीय (सहसः पुत्रः) बलसे उत्पन्न होनेवाला अग्नि सचमुच (अद्भुतः) अनूठा है ।

द्रु = पेड द्रु-अन्न = जिसका अन्न पेड ही है समिधारूपी अन्न खानेवाला । सर्पिः = घृत सर्पिरासुतिः=घृत तथा सोमरस की आहुति लेनेवाला ।

सहस पुत्रः = बलका पुत्र दो अरणियोंका मंथन करनेमें बडी भारी शक्ति लगती है, उस शक्तिसे अग्नि पैदा होता है, इसलिए वह बलका पुत्र है ।

अथर्वा । यमः मन्त्रोक्ता । त्रिष्टुप् (अथर्व० १८।२।५८)

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सम्प्रोर्णुष्व मेदसा पीवसा च ।

नेत्त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग् विधक्षन् परीङ्खयाते ॥ १९४ ॥

(गोभिः) गोदुग्धके निकाले घृतसे उत्पन्न हुई (अग्नेः वर्म) अग्निकी ज्वालारूप कवचसे (परि व्ययस्व) अपनेको चारों ओरसे ढक ले (सः) यह तू (पीवसा मेदसा) अपने सुन्दर चिकनाई स्थूल चर्बीसे (प्रोर्णुष्व) अपने आपको आच्छादित कर, (हरसा धृष्णुः) अपने तेजसे धर्षण करनेवाला (दधृक्) प्रगल्भ (जर्हृषाणः) अत्यन्त प्रसन्न हुआ (विधक्षन्) विविध रूपसे जलता हुआ अग्नि (त्वा) तुझे (नेत् परीङ्खयाति) नहीं इधरउधर बिखेर देगा ।

(अथर्व १८।३।११)

वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन[1] ।

चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु ॥ १९५ ॥

(सोम्यासः पितरः) सोम संपादन करनेवाले पितर (मां वर्चसा अञ्जन्तु) मुझे तेजसे भूषित करें (देवाः मधुना घृतेन) देव माधुर्योपेत घीसे मुझे व्यक्त करें (चक्षुषे मां प्रतरं तारयन्तो) देखनेके लिए मुझे समर्थ बनाते हुए (जरदष्टिं मा) जिसका खानपान शिथिल हो गया है ऐसे मुझको (जरसे वर्धन्तु) वृद्धापेतक बढायें यथासमय दीर्घायुवाला मुझे बनायें ।

१ गोभिः मेदसा प्रोर्णुष्व = गौओंके द्वारा प्राप्त मेदसे-घीसे अग्निको आच्छादित कर ।

२ देवाः घृतेन अञ्जन्तु = देव घीसे मुझे भूषित करें संयुक्त करें ।

दमनो यामायनः । अग्निः त्रिष्टुप् (ऋ. १०।१६।७)

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च ।

नेत्त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्षन्पर्यङ्खयाते ॥ १९६ ॥

(अग्नेः वर्म) अग्निके कवचको (गोभिः परि व्ययस्व) गौओंसे पूर्णतया ढकदो (पीवसा मेदसा च सं प्रोर्णुष्व) और पुष्ट करनेवाले घीसे भलीभाँति आच्छादित करो ऐसा करनेपर (त्वा) तुझको (हरसा धृष्णुः) तेजसे आक्रमण करनेवाला (जर्हृषाणः) अत्यन्त प्रसन्न (दधृक्) अत्यन्त साहसी (विधक्ष्यन्) विशेष रीतिसे जलानेवाला अग्नि (न परि अङ्खयाते इत्) सचमुच नहीं फैलायेगा ।

मेदसा सं प्रोर्णुष्व = मेदसे घीसे अग्निको आच्छादित करो अग्निमें मेदका हवन करो ।

वसुश्रुत आत्रेयः । अग्निः । पङ्क्तिः । (ऋ. ५।६।९)

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।

उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ १९७ ॥

हे (सुश्चन्द्र) अच्छे आनन्द देनेवाले ! (सर्पिषः) घीकी (उभे दर्वी) दोनों कड़छियाँ तू (आसनि श्रीणीषे) मुखमें डाल लेता है (उतो) और हे (शवसस्पते) बलके स्वामिन् ! (उक्थेषु) यज्ञोंमें (नः उत्पुपूर्याः) हमें दानसे पूर्ण कर दे और (स्तोतृभ्यः) सराहना करनेवालोंको (इषं आभर) अन्न दे डालो ।

सर्पिषः उभे दर्वी आसनि श्रीणीषे = घीकी भरी दोनों कड़छियाँ मुखमें डाल देता है । कड़छियोंसे इसका हवन होता है ।

[७१] घृत देवोंका अन्न है।

गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । अपांनपात् । त्रिष्टुप् (ऋ० २।३५।११)

तदस्यानीकमुत चारु नामापीच्यं वर्धते नप्तुरपाम् ।
यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य ॥ १९८ ॥

(अस्य अपां नप्तुः) इस देवका, जो जलको नहीं गिरने देता है (तत् अनीकं) वह तेज (उत चारु नाम) और वह सुन्दर नाम (अ-पीच्य) गुप्त स्थानमें (वर्धते) बढता है (यं हिरण्यवर्णं) जिस सुनहले रंगवाले देवको (युवतयः इत्था) स्त्रियां इस भाँति (स इन्धते) तेजस्वी करते हैं उस (अस्य) इस विख्यात देवका (अन्न घृतं) अन्न घीही है।

अस्य अन्नं घृतं= इसका भोजन घृत ही है।

सोमाहुतिर्भार्गवः । अग्निः । अनुष्टुप् (ऋ० २।५।६)

यदी मातुरुप स्वसा घृतं भरन्त्यस्थित ।
तासामध्वर्युरागतौ यवो वृष्टीव मोदते ॥ १९९ ॥

(यदि) जब (मातुः स्वसा) माताकी बहन स्वसा (घृत भरन्ती) घीको पूर्णतया लेकर (उप अस्थित) अग्नि के निकट चली आती है तब (तासां आगतौ) उनके समीप आनेसे वह (अध्वर्युः) प्रमुख अग्नि (वृष्टि-इव यवः) वारिशसे जैसे जौका खेत आनन्दित होता है वैसेही (मोदते) प्रसन्न हो उठता है।

मातुः स्वसा = माताकी बहन घीकी सुवा स्वसा = (सु-असा) भलीभाँति हवन करनेवाली।

अध्वर्यु = अकुटिल अहिंसामय।

मातुः स्वसा घृतं भरन्ती उप अस्थित=माताकी बहिन घीसे भरा चमस लेकर अग्निके समीप उपस्थित हुई।

[७२] यज्ञके लिए गौओंकी उत्पत्ति।

गोतमो राहूगणः । इन्द्रः । जगती । (ऋ० १।८३।५)

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातं अमृतं यजामहे ॥ २०० ॥

(अथर्वा) ऋषि अथर्वाने (प्रथमः) पहले पहल (यज्ञैः) यज्ञोंकी सहायतासे (पथः तते) पथ की राह चौडी कर दी (तत) पश्चात् (व्रतपाः) व्रतका रक्षण करनेवाला (वेनः) तेजस्वी (सूर्यः) सूर्य (आजनि) उसने बना दिया। (गाः आ आजत्) यज्ञमें यज्ञके लिए उसने गौएँ प्राप्त की पश्चात् (काव्यः उशना सचा) कविपुत्र उशना उसे सहायता देनेके लिए तैयार हुआ (यमस्य) वायुका नियमन करनेके लिए (जातं अमृतं) उत्पन्न अमर इन्द्रकी (यजामहे) हम सराहना करते हैं। ऋषि अथर्वाने यज्ञके लिए गौएँ प्राप्त कीं।

[७३] गौसे प्राप्त धनसे यज्ञ।

कवो भारद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।३५।३)

कर्हि स्वित्तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः ॥ २०१ ॥

हे इन्द्र! (तत् कर्हि स्वित्) वह घटना भला कब होगी कि (यत्) जब तू, हे (शविष्ठ)

अत्यन्त बलिष्ठ अग्ने ! (जरित्रे) स्तोताके लिए (विश्वासु क्षासु जोगुवे) बहुविध रूपवाले भवका निर्माण करता है, और (कदा) कब (धियः) कर्मोंको (मितुहः न पुवासे) तथा स्तुतियोंको भी अपनेमें जुड़ा लेता है (कदा) भला किस समय तू (गोमघा हवनानि) गोरूपी ऐश्वर्यसे पूर्ण हवनों के समीप (गच्छाः) चला आयेगा ?

गोमघा हवनानि गच्छाः = गायोंसे प्राप्त होनेवाला घीरूपी धन है उसकी आहुतियाँ लेकर अग्निके पास जा।

[७४] गाय हवनके लिये हविष्य देती है।

वसिष्ठः । अग्निः । उपरिष्टाद्विराड्बृहती (अथर्व ३।२१।६)

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।
वैश्वानरज्येष्ठेभ्यः तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ २०२ ॥

(उक्षान्नाय वशान्नाय) बैल जिसके लिये अन्न बनाता है तथा गौ जिसके लिए अन्न बनाती है तथा (सोमपृष्ठाय वेधसे) औषधियोंको पीठपर लेनेवाले ज्ञानीके लिए (तेभ्यः वैश्वानर ज्येष्ठेभ्यः) उन सब मनुष्योंके हितकारी श्रेष्ठ अग्नियोंके लिए (एतत् हुत मस्तु) यह हवन हो।

बैल हवनके लिये अन्न बनाता है और गाय हवनके लिये दूध घी देती है, औषधियोंका भी हवन होता है। इस हवनसे लाभ है।

[७५] पवित्र घी निर्दोष है।

वामदेवो गौतमः । अग्निः । त्रिष्टुप् (ऋ ४।१।७)

घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम् ।
तत्ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥ २०३ ॥

(स्वधावः) हे अपनी धारणा करनेकी शक्तिसे युक्त अग्ने ! (पूतं घृत न) शुद्ध किये हुए घीके तुल्य आभामय तेरा (तनूः) शरीर (अरेपाः) निर्दोष या निष्कलंक है (तत्) वह (शुचि) विशुद्ध (हिरण्य) सुवर्णतुल्य चमकीला (ते) तेरा तेज (रुक्मः न) सुवर्ण के बनाये गहनेके समान (रोचत) जगमगाने लगता है।

घृत पूतं = घी पवित्र है।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ ६।१।१२)

तमु द्युमः पुर्वणीक होतरग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः ।
स्तोमं यमस्मै ममतेव शूषं घृतं न शुचि मतयः पवन्त ॥ २०४ ॥

हे (द्युमः) घोतमान ! (पुरु-अनीक) बहुतसी सेनाओंसे युक्त ! (होतर् अग्ने) आहुति डालनेवाले अग्ने ! (मनुषः अग्निभिः इधानः) मानवी अग्नियोंके साथ प्रज्वलित होता हुआ तू (तं स्तोमं उ) उसी स्तोत्रको ग्रहण कर (य) जिसे (अस्मै) इसके लिए (ममता इव) ममताने जैसे किया था उसी प्रकार (मतयः) लोगोंकी बुद्धियाँ (घृतं शुचि घृतं न) बलवर्धक पवित्र घीके तुल्य (पवन्त) पवित्र बनाकर रखते हैं।

शुचि घृत शूषं = पवित्र घी बलवर्धक है।

[७६] घीसे साफ करना ।

बुधगविष्ठिरावात्रेयौ । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।१।७)

प्र णु त्य विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमीळते नमोभिः ।

आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥ २०५ ॥

(विप्रं) ज्ञानी (अध्वरेषु साधुं) हिंसारहित कार्योंमें सुयोग्य कार्यकर्ता तथा (होतारं) दानी (त्यं अग्निं) उस अग्निको (नमोभिः) नमनोंसे (नु प्र ईळते) अभी यथेष्ट प्रशंसा करते हैं (यः) जो (ऋतेन) सत्यकी सहायतासे (रोदसी आ ततान) भूलोक तथा द्युलोकको फैला चुका है और (वाजिनं) बलिष्ठको (घृतेन नित्यं मृजन्ति) घीसे हमेशा साफसुथरा करते हैं ।

[७७] घी टपकानेवाला रथ ।

अत्रिर्भौमः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।७७।३)

हिरण्यत्वङ्मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम् ।

मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥ २०६ ॥

हे अश्विनौ ! (वां) तुम दोनोंका (हिरण्यत्वक्) सुनहली कान्तिवाला (मधुवर्णः घृतस्नुः) मधुके तुल्य रंगवाला और घृत टपकानेवाला (रथः पृक्षः आ वहन्) रथ अन्न ढोता हुआ (वर्तते) रहता है और वह (मनोजवाः) मनके तुल्य वेगवाला (वातरंहाः) वायुके समान गतिवाला है (येन) जिसकी सहायतासे (विश्वा दुरिता) सभी बुराइयोंको (अति याथः) पार कर चले जाते हो ।

घृतस्नुः रथः = घीसे परिपूर्ण रथ जिससे घी टपक रहा है ऐसा रथ, घीसे रथ भरा है और रथके बाहर भी घी चू रहा है ऐसा रथ ।

[७८] घीसे तृप्ति ।

ब्रह्मा । अध्यात्मम् । त्रिष्टुप् । (अथर्व० १३।१।३३)

वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम् ।

घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥ २०७ ॥

(विराजः वत्सः) विराट्का बच्चा (मतीनां वृषभः) मतियोंको बढानेवाला (शुक्रपृष्ठः अन्तरिक्षं आ रुरोह) चमकीले पीठवाला बनकर अन्तरिक्षपर चढा है (घृतेन वत्सं अर्कं अभि अर्चन्ति) घीसे बछडेके तुल्य सूर्यकी पूजा करते हैं यह स्वयं (ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति) ब्रह्म होता हुआ भी लोग उसे स्तुतियोंसे बढाते हैं ।

घृतेन वत्सं अर्चन्ति = घीसे बछडेका सत्कार करते हैं ।

[७९] दूध और घीवाली धेनु ।

ब्रह्मा । अध्यात्मम् । (अथर्व० १३।१।२०)

वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुरनपस्पृगेषा ।

इन्द्रः सोमं पिबतु क्षेमो अस्त्वग्निः प्र स्तौतु वि मृधो नुदस्व ॥ २०८ ॥

(पयस्वतीं घृताचीं विमिमीष्व) दूधवाली और घीवाली गायको सिद्ध करो (एषा देवानां धेनुः अनपस्पृक्) यह देवोंकी गौ इनकार न करनेवाली है (इन्द्रः सोमं पिबतु) इन्द्र सोमरसका पी

क्षेमे (क्षेमः अस्तु) सबका क्षेम हो (अग्निः प्रस्तौतु) अग्नि स्तुति करे, (मृधः वि नुदस्व) शत्रुओंको दूर कर।

दूध और घी देनेवाली गाय।

ब्रह्मा। अध्यात्मम्। त्रिष्टुप्। (अथर्व १३।१।१८)

वि रोहितो अमृशद् विश्वरूपं समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च।

दिवं रूढ्वा महता महिम्ना स ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन ॥ २०९ ॥

(रोहितः प्ररुहः रुहः च समाकुर्वाणः) सूर्यदेव ऊँची और नीची सारी दिशाओंको इकट्ठा करके (विश्वरूपं वि अमृशत्) विश्वरूपको बनानेका विचार करता है, (महता महिम्ना) वह अपने बड़े सामर्थ्यसे (दिवं रूढ्वा) द्युलोकपर चढकर (ते राष्ट्र) तेरे राष्ट्रको (पयसा घृतेन सं अनक्तु) घी और दूधसे परिपूर्ण करे।

[८०] घीकी नदी।

अथर्वा। यमः मन्त्रोक्ताः। अनुष्टुप्। (अथर्व १८।३।७२)

ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः।

तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती ॥ २१० ॥

(ये च जीवाः) जो जीवित हैं और (ये च मृताः) जो मर गये हैं (ये जाताः) जो उत्पन्न हुए हैं, (ये च यज्ञियाः) और जो कि पूजनीय संगति करने योग्य हैं (तेभ्यः) उनके लिए (मधु धारा) मधुर धारावाली (व्युन्दती) उमडती हुई (घृतस्य कुल्या एतु) घीकी छोटी नदी चली आए।

अथर्वा। यमः। अनुष्टुप्। (अथर्व १८।३।७३)

ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये।

तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥ २११ ॥

(ये पूर्वे परागताः) जो पूर्वकालीन पितर परे चले गये हैं और (च ते अपरे पितरः) जो वे दूसरे अर्वाचीन पितर परलोकवासी हुए हैं (तेभ्यः) उनके लिए (शतधारा व्युन्दती) सैकडों धाराओंवाली उमडती हुई (घृतस्य कुल्या एतु) घृतकी छोटी नदी प्राप्त होवे।

[८१] घी और दूध।

अथर्वा। यमः। त्रिपदा भुरिग् महाबृहती। (अथर्व १८।४।१९)

अपूपवान् क्षीरवांश्चरुरेह सीदतु।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २१२ ॥

(अपूपवान् क्षीरवान्) मालपूए और दूधसे युक्त (चरुः इह आसीदतु) यज्ञके लिए तैयार किया गया पाक यहाँ यज्ञमें स्थिर होवे (लोककृतः पथिकृतः) लोक एवं मार्ग बनानेवालोंकी हम (यजामहे) उस यज्ञद्वारा पूजा करते हैं (ये देवानां इह हुतभागाः स्थ) जो कि देवोंके बीचमें इस यज्ञ में जिनके लिए कि भाग दिया गया है ऐसे स्थित हो।

अपूपवान् घृतवान् चरुरेह सीदतु। (अथर्व १८।४।१६)

मालपूए आदिसे युक्त तथा (घृतवान्) घीसे मिश्रित (चरुः इह आसीदतु) चरु इधर स्थिर हो।

दूध घी और मालपूए सेवन करने योग्य हैं।

[८२] घृतमिश्रित वसुधारा ।

यमः । स्वर्गः ओदनः अग्निः । त्रिष्टुप् । (अथर्व १२।३।४१)

वसोर्या धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः ।

सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्गः षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् ॥ २१३ ॥

(याः मधुना प्रपीनाः घृतेन मिश्राः) जो मधुसे भरपूर और घीसे मिश्रित (अमृतस्य नाभयः वसोः धाराः) अमृत केन्द्रभूत धनकी धाराएं हैं, (ताः सर्वाः स्वर्गः अवरुन्धे) उन सबको स्वर्ग अपने पास रखे (निधिपाः षष्ट्यां शरत्सु अभीच्छात्) निधिपा एकक साठ वर्षोंकी आयुमें इसकी इच्छा करे ।

[८३] गौएं प्राप्त करना ।

गृत्समदः आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्भार्गवः शौनकः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ. २।३०।७)

अव क्षिप दिवो अश्मानमुच्चा येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वाः ।

तोकस्य सातौ तनयस्य भूरेरस्माँ अर्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम् ॥ २१४ ॥

हे इन्द्र ! (मन्दसानः) स्तुतिके उपरान्त तू (येन शत्रुं निजूर्वाः) जिस वज्रसे शत्रुका वध कर चुका था (अश्मानं) पत्थरकी नाईं कठिन वज्र तू (उच्चा दिवः) ऊँचे द्युलोकसे ही हमारे शत्रुपर (अवक्षिप) फेंक डालो (तोकस्य तनयस्य भूरेः) बालबच्चोंके पोषणके लिए (गोनां सातौ) गौएं पानेके लिए (अस्मान् अर्धं कृणुतात्) हमारी समृद्धि करो ।

अस्मान् गोनां अर्धं सातौ कृणुतात् = हमें गौओंकी समृद्धिमें भागी कर ।

[८४] हमारे निकट सहस्रों गौएं रहें ।

शुनःशेप आजीगर्तिः । इन्द्रः । पङ्क्तिः । (ऋ० १।२९।१)

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २१५ ॥

हे (सत्य सोमपाः) सोमके पान करनेहारे सत्यमती इन्द्र ! (यत् चित् हि अनाशस्ताः इव स्मसि) यद्यपि हम अप्रसिद्ध हों, तोभी हे (तुवीमघ इन्द्र) बहुत धनोंसे युक्त इन्द्र ! (सहस्रेषु तु गोषु अश्वेषु शुभ्रिषु) सहस्रों तथा कोटिके गौओं तथा सुन्दर घोडोंमें (नः) हमें रखकर (आशंसय) प्रशंसित कर ।

जिसके पासमें सहस्रों गौएं रहती हैं वह मनुष्य निर्धन होता है । घर घर अनगिनती गौएं रहने चाहिएं ।

सहस्रेषु गोषु नः आशंसय = हजारों गौओंमें हम रहें ऐसा आशीर्वाद हमें दे दो । (यही मन्त्रभाग भिन्न भिन्न सात मंत्रोंमें है)

आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । इन्द्रः । पङ्क्तिः । (ऋ. १।२९।१-७)

शिप्रिन्वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २१६ ॥

हे (वाजानां पते शिप्रिन् शचीवः) अन्नके स्वामी, हे शक्तिमान एवं सुन्दर ठुड्डीवाले इन्द्र ! (तव दंसना) तेरी [हमपर] सदैव कृपा रहा है [इसलिए सहस्रों गौएं देकर हमें प्रसिद्ध करो]

नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २१७ ॥

हे इन्द्र ! (मिथू दृशा) सदैव साथ रहनेवाले यमदूतोंको बहुत समयतक सुला रखो (अबुध्यमाने सस्तां) और फिरसे जागनेके पहलेही उन्हें (नि ष्वापय) नींद आजाय [हमें सहस्रों गायें दो]

ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २१८ ॥

हे शूर इन्द्र ! (त्या अरातयः) हमारे वे सभी शत्रु (ससन्तु) नींदमें पड़े रहें और (रातयः बोधन्तु) हमारे दानी बांधव जाग उठें (हमें हजारों गायें दे दो)

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २१९ ॥

हे इन्द्र ! (अमुया पापया नुवन्तं) इस भाँति पापी वाणीसे सराहना करनेहारे अर्थात् निन्दक (गर्दभं संमृण) गधे जैसे शत्रुको मारडालो [और हमें हजारों गायें देदो]

पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २२० ॥

अनुकूल न रहता हुआ (वातः) वायु (कुण्डृणाच्या) अपनी कुटिल गतिसे (वनात् अधि दूरं) वनसे भी बहुत दूर स्थानमें (पताति) जा गिरे [हमें सहस्रों गायें देदो]

सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २२१ ॥

हे इन्द्र (परिक्रोशं जहि) हमारे संबधमें चिल्लानेवाले लोगोंको मारडालो (कृकदाश्वं जम्भय) हमारी निन्दा करनेवालेको भी मारडालो [और हमें हजारोंकी संख्यामें गायें देदो]

त्रिशोकः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ. ८।४५।११)

[८५] सौ गायोंसे युक्त हम बनें ।

वृज्याम ते परि द्विषोऽरं ते शक्र दावने । गमेमेदिन्द्र गोमतः[1] ॥ २२२ ॥
शनैश्चिद्यन्तो अद्रिवोऽश्वावन्तः शतग्विनः । विवक्षणा अनेहसः[2] ॥ २२३ ॥

हे (शक्र इन्द्र) शक्तिमन् इन्द्र ! (ते द्विषः परि वृज्याम) तेरे शत्रुओंको हम छोडकर आगे निकलें (गोमतः ते दावने) गायोंसे युक्त होकर जब तू दान देने लगता है, तब (अरं गमेम इत्) पर्याप्त रूपमें हम प्राप्त हों।

हे (अद्रिवः) वज्रधारी ! (शतग्विनः अश्वावन्तः) सौ गायोंको लेकर घोडोंसे युक्त होकर (अनेहसः) निर्दोष हम (शनैः चित् यन्तः) धीरे धीरे जाते हुए (विवक्षणाः) विशेष रूपसे बोल रहें।

[1] गोमतः अरं गमाम = गायोंसे युक्त होकर हम पूर्ण बनें।
[2] शतग्विनः = हम सौ गायोंसे युक्त बनें।

वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ० ४।३२।१८)

सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि ।
अस्मत्रा राध एतु ते ॥ २२४ ॥

(वयं) हम (गवां शता सहस्रा) गायोंको सैकडों तथा हजारोंकी संख्यामें (ते) तुमसे (आच्यावयामसि) पाते हैं (ते राधः) तेरा धन (अस्मत्रा एतु) हमारी ओर आ जाय।

वयं गवां शता सहस्रा ते आच्यावयामसि— हम गायें सैकडों और सहस्रों तुमसे प्राप्त करते हैं।

[८६] हम गौओंके साथ रहें।

(अवस्युरात्रेयः । अग्निः । पङ्क्तिः) (ऋ० ५।१८।४)

इत्था यथा त ऊतये सहसावन्दिवेदिवे ।
राय ऋताय सुक्रतो गोभिः ष्याम सधमादो वीरैः स्याम सधमादः ॥ २२५ ॥

हे (सहसावन्) बलिष्ठ ! (दिवे दिवे) प्रतिदिन (यथा ते ऊतये) जिस प्रकार तेरी रक्षाके लिए हम योग्य बनें (इत्था) उस प्रकार तू प्रबंध कर। हे (सुक्रतो) अच्छे कर्म करनेहारे ! (राये) धनके लिए (ऋताय) यज्ञके लिए हम योग्यता प्राप्त करें और (गोभिः) गायोंके साथ तथा (वीरैः) वीर पुरुषोंके साथ (सधमादः स्याम) हर्षपूर्वक हम रहें।

गोभिः सधमादः स्याम= गायोंके साथ हर्षसे हम रहें।

[८७] गायें हमारे पास आवें।

अत्रिर्भौमः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।४३।१)

आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा ।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति ॥ २२६ ॥

(अमर्धन्तीः धेनवः) हिंसा न करती हुई गौएँ (पयसा) दूधके साथ (तूर्ण्यर्थाः) त्वरासे गमन करती हुई (नः उप) हमारे समीप (मध्वा आ यन्तु) मधुके साथ आ जायँ। (जरिता विप्रः) स्तुति करनेवाला ज्ञानी पुरुष (महः राये) बडे भारी धनके लिए (मयोभुवः बृहतीः सप्त) सुख देनेवाली बडी सात नदियोंको (जोहवीति) बुलाता है।

अमर्धन्तीः धेनवः पयसा नः उप आयन्तु= किसीकी हिंसा न करती हुई गायें दूधके साथ हमारे पास आ जायँ।

अथर्वा । इन्द्रः । अनुष्टुप् । (अथर्व० १।१०।२)

अर्वाची गौरुपेतु ॥ २२७ ॥

गौवें हमारे पास इधर होकर आ जायें।

वामदेवो मैत्रावरुणिः । वास्तोष्पतिः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।५४।२)

वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो ।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व ॥ २२८ ॥

हे (इन्दो वास्तोष्पते) चन्द्रके समान आनन्ददायक घरके मालिक ! (नः प्रतरणः गयस्फानः) हमारी वृद्धि करनेहारा और घरका बढानेहारा (एधि) तू बन (गोभिः अश्वेभिः) गायों तथा

नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ... अताहीन हों और (पुनाव
आ तू न इन्द्र शंसय गो...) हमारी सेवा तू कर।

हे इन्द्र! (मिथू दृशा ...
माने सस्तां) ...
गायें दो।

[८८] हमें गौओंसे युक्त बनाओ।

... । ... । त्रिष्टुप्। (अथर्व ३।१६।३)

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्त' स्याम ॥ २२९ ॥

हे (सत्यराधः प्रणेतः भग) सत्य सिद्धि देनेवाले तथा बडे नेता भग! (इमां धियं ददत् नः उदव) इस बुद्धिको देता हुआ तू हमारी रक्षा कर (गोभिः अश्वैः नः प्रजनय) गौओं तथा घोडोंके साथ संतान वृद्धि कर (नृभिः नृवन्तः स्याम) हम वीरोंके साथ रहकर वीरोंवाले हों।
गोभिः नः प्रजनय= गौओंके साथ हमारी संतान वृद्धि कर।

अथर्वा। इन्द्राग्नी। त्रिष्टुप्। (अथर्व ७।१ २।२)

समिन्द्र नो मनसा नेष गोभिः सं सूरिभिर्हरिवन्त्सं स्वस्त्या।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमतौ यज्ञियानाम् ॥ २३० ॥

हे (हरिवन् इन्द्र) किरण युक्त तेजस्वी प्रभो! (मनसा नः गोभिः सं) मन पूर्वक हमें गौओंसे युक्त कर, (सूरिभिः सं) विद्वानोंसे युक्त कर (स्वस्त्या सं) कल्याणसे युक्त कर और (नेष) ले चल (यत् देवहितं अस्ति) जो देवोंका हितकारी है उस (ब्रह्मणा सं) ज्ञानसे युक्त कर तथा (यज्ञियानां देवानां सुमतौ सं) पूजनीय देवोंकी उत्तम बुद्धिमें हमें ले चल।
नः गोभिः सं नेष= हमें गौओंसे युक्त कर।

ब्रह्मा। ऋतवः। त्रिष्टुप्। (अथर्व ६।५५।२)

ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद् वर्षाः स्विते नो दधात।
आ नो गोषु भजता प्रजायां निवात इद् वः शरणे स्याम ॥ २३१ ॥

वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरद्, हेमन्त तथा शिशिर ऋतु (नः स्विते दधात) हमें उत्तम अवस्थामें धारण करें। (नः गोषु प्रजायां आभजत) हमें गायों तथा प्रजाओंमें सुखका भागी कर, (वः इत् निवाते शरणे स्याम) तुम्हारे साथ निश्चयपूर्वक हम वात आदिके उपद्रवरहित घरमें रहें।
नः गोषु आभजत= हमें गायोंमें स्थान प्राप्त हो।

[८९] इन्द्र हमें गायोंसे युक्त करता है।

अत्रिर्भौमः। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप्। (ऋ ५।४२।४)

समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिर्हरिवः सं स्वस्ति।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम् ॥ २३२ ॥

हे (हरिवः इन्द्र) घोडोंसे युक्त इन्द्र! (नः मनसा) हमें मनःपूर्वक (गोभिः सं नेषि) तू गायोंसे युक्त करता है (सूरिभिः सं) विद्वानोंसे जोड देता है (स्वस्ति सं) कल्याणसे पूर्ण करता

है। (यत् देवहितं अस्ति) जो देवोंके हितका हो उसे (ब्रह्मणा सं) ज्ञानसे तू युक्त करता है और (यज्ञियानां देवानां सुमत्या) पूजनीय देवोंकी अच्छी बुद्धिसे (सं) हमें युक्त करता है।

नः गोभिः सं नेषि= हमें गायोंके साथ संयुक्त करके आगे बढाता है।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ. १।१२१।१५)

मा सा ते अस्मत्सुमतिर्वि दसद्वाजप्रमहः समिषो वरन्त ।
आ नो भज मघवन् गोष्वर्यो मंहिष्ठास्ते सधमादः स्याम ॥ २३३ ॥

हे (वाज-प्र-महः) अपने सामर्थ्योंसे विशेष श्रेष्ठ बने हुए देव! (ते सा सुमतिः) वह तेरी अच्छी बुद्धि (अस्मत्) हमारा हित करनेके समय (मा वि दसत्) नष्ट होने न दो और हमारे लिए (इषः, सं वरन्त) अन्नकी समृद्धि कर दे। हे (मघवन्) धनाढ्य इन्द्र! (नः गोषु) हमारी गौओंमें (आ भज) तू हमें रख बहुतसी गायें दे दे तथा (ते) तेरी कृपासे (मंहिष्ठाः) बडप्पनको प्राप्त हुए हम सदैव (सध मादः स्याम) पुरुषोंओंसे आमन्त्रित हों।

नः गोषु आ भज= हमें गौओंमें रख। हमें गौवें दे दो।

शंयुर्बार्हस्पत्यः। इन्द्रः। सतो बृहती। (ऋ. ६।४६।२)

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २३४ ॥

हे (चित्र) अद्भुत! (वज्रहस्त) हाथमें वज्र धारण करनेवाले! (अद्रिवः) शत्रुओंके किलोंके विदारणकर्ता इन्द्र! (धृष्णुया महः) तू साहसी तथा महत्त्वपूर्ण है (स्तवानः सः त्व) प्रशंसित होनेवाला वह तू (जिग्युषे सत्रा वाजं न) जयशील पुरुषको बडा भारी धन जिस प्रकार देता है, उसी प्रकार (नः गां रथ्यं अश्वं सं किर) हमें गाय एवं रथमें जोडने योग्य घोडा दे दे।

नः गां सं किर= हमको गाय दे।

मेधातिथिः काण्वः। इन्द्रः। गायत्री। (ऋ. ८।३२।९)

उत नो गोमतस्कृधि हिरण्यवतो अश्विनः । इळाभिः सं रभेमहि ॥ २३५ ॥

(उत) और (नः) हमें (गोमतः हिरण्यवतः अश्विनः) गायोंसे युक्त सुवर्णसे पूर्ण तथा घोडोंवाले (कृधि) बना दे। हम (इळाभिः) अन्नोंसे (सं रभेमहि) यज्ञ करनेका प्रारंभ करेंगे।

नः गोमतः कृधि= हमें गायोंसे युक्त कर।

अयास्य आंगिरसः। बृहस्पतिः। त्रिष्टुप्। (ऋ. १०।६८।१२)

इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् ॥ २३६ ॥

(यः पूर्वीः) जो प्राचीन काव्योंको (अनु आनोनवीति) लगातार कहता है उस (अभ्रियाय) मेघ मंडलमें रहनेवाले देवके लिए (इदं नमः अकर्म) यह नमन हम कर चुके हैं (स हि) वह बृहस्पति अवश्य ही (नः) हमें (गोभिः अश्वैः) गायों तथा घोडों (वीरेभिः नृभिः) वीरों और नेताओंसे युक्त (वयः धात्) अन्न दे डाले।

सः नः गोभिः धात्= वह हमें गौओंसे युक्त करे।

प्रस्कण्व काण्वः । उषाः । सतोबृहती । (ऋ १।४८।१६)

सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा ।
स द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥ २१७ ॥

हे उषे ! (बृहता विश्वपेशसा राया) बडे सभी सुन्दरतासे संपन्न धनसे (नः) हमें (सं मिमिक्ष्व) युक्त करो । हमें (इळाभिः सं आ मिमिक्ष्व) गौओंसे ठीक ठीक युक्त करो। (विश्वतुरा द्युम्नेन स मिमिक्ष्व) सब लोगोंपर विजयी बननेहारे यशसे युक्त करो और हे (महि वाजिनीवति) विपुल अन्नयुक्त देवि ! (वाजैः सं मिमिक्ष्व) अनेक प्रकारके अन्नोंसे भी युक्त करो ।

हमें सुन्दरता धन गायें विजय यश तथा भाँति भाँतिके अन्न प्राप्त हों। नः इळाभिः स आ मिमिक्ष्व हमें गौओंसे युक्त करो हमें गौवें दे दो ।

नोधा गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ १।६२।३)

इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत्सरमा तनयाय धासिम् ।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः समुस्रियाभिर्वावशन्त नरः ॥ २१८ ॥

(इन्द्रस्य आंगिरसां च इष्टौ) इन्द्र तथा अंगिरसोंके यज्ञमें (सरमा) सरमा नामक देवशुनीने (तनयाय) अपने पुत्रके लिए (धासिम् विदत्) अन्न प्राप्त किया (बृहस्पतिः) ज्ञानपतिने (अद्रिं भिनत्) शत्रुके पार्वतीय दुर्गका भेदन किया और (गाः विदत्) गायें प्राप्त कीं तब (नरः) वे नेता जन (उस्रियाभिः) गौओंके साथ (सं वावशन्त) आनन्दपूर्वक विजय गर्जना करने लगे।

शत्रु गायें चुरा के गये और उन्हें अपने दुर्गमें बंद कर रखा। इन्द्रने वह गढ तोड डाला तब गायें छूट गयीं। पश्चात् वह गायोंको साथ ले कर आया और सभी नेता लोग विजय घोषणा करने लगे ।

गाः विदत् नरः उस्रियाभिः सं वावशन्त गायें प्राप्त कीं तब सब नेता लोग उन गौओंके साथ विजय गर्जना करने लगे।

[९०] हमें गौओंकी आवश्यकता है ।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । अनुष्टुप् । (ऋ १।१०।८)

नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः ।
जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ॥ २१९ ॥

हे इन्द्र ! (ऋघायमाणं त्वा उभे रोदसी नहि इन्वतः) शत्रुओंके विनाशकर्ता तुझे द्युलोक तथा पृथ्वी लोक अपने अन्दर नहीं समा सकते हैं । तू (स्वर्वतीः अपः जेषः) तेजस्वी जलोंको जीतले और अपने अधीन रख तथा (गाः अस्मभ्यं सं धूनुहि) गौएँ हमें प्रदान कर ।

प्रभु इन्द्र द्युलोक तथा भूलोककी अपेक्षा बहुत ही बडा है और उसका सामर्थ्य अनन्त महान् है । ऋषिने ऐसी भावना की है कि वह हमें तेजस्वी जल एवं (अस्मभ्यं गाः सं धूनुहि) गौएँ दे दे ।

[९१] मेरे समीप अच्छी गौएँ रहें ।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् । (ऋ १।११६।२५)

प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः ।
उत पश्यन्नश्नुवन् दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥ २२० ॥

हे अश्विनौ ! (वां दंसांसि) तुम्हारे कर्मोंकी मैंने (प्रवोचम्) सराहना की है । मैं (सुगवः सुवीरः) उत्तम गायों एवं अच्छे वीरोंसे युक्त होकर (अस्य पतिः स्याम्) इस राष्ट्रका अधिपति बनूँ।

(उत् पश्यम्) और उत्तम दृष्टिसे तथा अन्य सभी शक्तियोंसे युक्त होकर, (दीर्घं आयुः) दीर्घ जीवन (अश्नुवम्) प्राप्त करूं और (मर्त्त इव) जैसे कोई अपने घरमें चला जाय, उसी प्रकार (जरिमाणं जगम्यां) बुढापेमें मैं प्रवेश करूं।

मेरे निकट बहुतसी गौएं हों पर्याप्त और सन्तान उत्पन्न हों। मैं स्वतंत्र राष्ट्रका स्वामी बनूं। सारे इन्द्रिय कार्यक्षम हों दीर्घ जीवन मिले और जिस प्रकार मालिक अपने मकानमें सहर्ष चला जाता है। वैसेही मैं बिना किसी विचारके उचित मौकेपर वृद्धावस्थामें प्रवेश करूं।

सु-गाव स्यां = मैं उत्तम गौओंसे युक्त बनूं।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः। स्वनय (इन्द्रः)। त्रिष्टुप्। (ऋ. १।१२५।२)

सुगुरससुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥ २४१ ॥

(यः) जो राजा (प्रातः-इत्वः आयन्तं त्वा) प्रातःकाल ही आनेवाले तेरे (पदिं) मार्गको (मुक्षी जया इव) पशुओंको बंधन रज्जुसे जिस प्रकार रोक देते हैं वैसे ही (वसुना उत् सिनाति) द्रव्यसे रोक देता है वह नरेश (सुगुः असत्) बहुतसी गायोंसे युक्त होता है, (सु-हिरण्यः) बहुतसे धनसे पूर्ण और (सु-अश्वः) अच्छे घोडोंसे युक्त बनता है (अस्मै) इसे (बृहत् वयः) बडा दीर्घ जीवन (इन्द्रः दधाति) इन्द्र दे देता है।

प्रातःकालकी शुभ वेलामें यदि कोई ब्राह्मण आ जाय तो उसका मार्ग विपुल धनसे रोकना चाहिए अर्थात् उसे इतना पर्याप्त धन देवे। गोधनका दान इतना हो कि फिर उसे आगे किसी अन्य स्थान या औरोंके पास जानेकी आवश्यकता न रहे। जैसे रस्सीसे पशुओंको आगे बढनेसे रोक दिया जाता है उसी प्रकार उस विद्वान्का मार्ग दानसे रोक देना चाहिये। ऐसे करनेसे दानी राजाको दीर्घ जीवन बहुत धन घोडे गायें प्राप्त होते हैं।

सु गुः असत् = वह उत्तम गौओंसे युक्त होता है।

इस मंत्रमें गौका स्थान प्रथम है।

[९२] मेरे पास गाय नहीं है।

प्रगाथो घौरः काण्वः पायकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा गृहपति-यविष्ठौ सहसः पुत्रोऽन्यतरो वा। अग्निः गायत्री। (ऋ. ८।१ २।१९)

नहि मे अस्त्यघ्न्या न स्वधितिर्वनन्वति। अथैतादृग् भरामि ते ॥ २४२ ॥

(मे अघ्न्या नहि अस्ति) मेरे निकट तो गाय नहीं है और (न वनन्वती स्वधितिः) न जंगल तोडनेवाला कुल्हाडी भी है (अथ) तो भी अब (एतादृक्) यह जो कुछ इस भाँति मेरे पास है, (ते भरामि) तेरे लिए अर्पण किये देता हूं।

मे अघ्न्या नहि अस्ति = मेरे पास गौ एक भी नहीं है।

कुरुसुतिः काण्वः। इन्द्र। गायत्री। (ऋ. ८।७८।९)

त्वामिद्यवयुर्मम कामो गव्युर्हिरण्ययुः। त्वामश्वयुरेषते ॥ २४३ ॥

(मम कामः) मेरा मन (गव्युः यवयुः हिरण्ययुः अश्वयुः) गाय चाहनेवाला जौ चाहनेवाला, सुवर्ण चाहनेवाला घोडे चाहनेवाला होकर (त्वां इत् आ इषते) तेरे समीप ही आता है।

मम कामः गव्युः = मेरी इच्छा गौवें प्राप्त करनेकी है

मेध्य काण्वः । इन्द्रः । सतो बृहती । (ऋ ८।५३।८)

अहं हि ते हरिवो ब्रह्म वाजयुराजिं यामि सदोतिभिः ।

त्वामिदेव तममे समश्वयुर्गव्युरग्रे मथीनाम् ॥ २४४ ॥

हे (हरिवः) घोड़ोंवाले इन्द्र ! (अहं सदा ते ऊतिभिः) मैं हमेशा तेरी रक्षाको आपोवबा-ओंसे युक्त होकर (वाजयुः) बलकी इच्छा करनेवाला बनकर (आजिं यामि) युद्धमें चला जाता हूँ (अश्वयुः गव्युः) घोड़ों तथा गायोंको पानेकी कामना करता हुआ मैं (मथीनां अग्रे) मथने वालोंके सामने (त त्वां इत् एव तममे) उस विख्यात तुझको ही ठीक तरह प्राप्त करता हूँ।

गव्युः त्वां सं अमे = गायोंकी प्राप्तिकी इच्छा करता हुआ मैं तेरे पास आता हूँ।

गोधा गौतमः । इन्द्रः । सतोबृहती । (ऋ ८।८८।२)

द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।

क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २४५ ॥

(द्युक्षं) द्युलोकमें रहनेवाले (सुदानुं) अच्छे दानी (तविषीभिः आवृतं) बलोंसे पूर्णरूपेण वेष्टित (गिरिं न पुरुभोजसं) पहाड़के तुल्य बहुतोंको भोग देनेवाले (क्षुमन्तं) सन्तानयुक्त (गोमन्तं शतिनं सहस्रिणं वाजं) गायोंसे युक्त सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें बलको (मक्षू ईमहे) शीघ्र हम चाहते हैं।

गोमन्तं वाजं मक्षू ईमहे = गायोंसे शीघ्र युक्त होना हम चाहते हैं।

सरमा देवशुनी ऋषिका । पणयो देवता । त्रिष्टुप् । (ऋ १०।१०८।१०)

नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरङ्गिरसश्च घोराः ।

गोकामा मे अच्छदयन्यदायमपात इत पणयो वरीयः ॥ २४६ ॥

(अहं न भ्रातृत्वं) मैं न भाईपन या (न स्वसृत्वं वेद) बहनपन जानती हूँ, केवल (घोराः) शत्रुओंके लिए भीषण अंगिरस तथा इन्द्र (विदुः) जानते हैं (यत् आयं) जो मैं यहाँसे निकल आयी तो (गोकामा मे अच्छदयन्) गायोंको चाहनेवाले वे मुझे आच्छादित कर चुके इसलिए हे पणियो ! (अतः वरीयः अप इत) यहाँसे दूर स्थानतक तुम भाग जाओ।

गोकामाः मे अच्छदयन् = गौओंकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवालोंने मेरे पास आगमन किया है।

पुरुमीळ्हः आजीगर्तः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ १।१३१।२)

नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु ।

गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥ २४७ ॥

(स्थूरि) जो एक ही बैलद्वारा खींचा जानेवाला वाहन है वह (ऋतुथा यातं नहि अस्ति) ठीक समयपर जा पहुँचता हो ऐसी बात नहीं (उत) और (संगमेषु) जब वीर पुरुष इकट्ठे हो जाते हैं तब (श्रवः न विविदे) अन्न या यश नहीं पाता है क्योंकि वह रथ बड़ी देरीसे इष्ट स्थानपर पहुँचता है, (वाजयन्तः) अन्न या बलकी इच्छा करनेवाले (अश्वायन्तः गव्यन्तः विप्राः) घोड़ों एवं गायोंको समीप रखनेकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी लोग (सख्याय) मित्रता प्रस्थापित करनेके लिए (वृषणं इन्द्रं) बलवान् इन्द्रको बुलाते हैं।

विप्राः गव्यन्तः = विप्र गायोंकी इच्छा करते हैं।

अथर्वा । सविता । अतिजगती गर्भा त्रिष्टुप् । (अथर्व ६।६८।३)

येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ।

तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् ॥ २४८ ॥

(विद्वान् सविता) ज्ञानी सविता (येन क्षुरेण) जिस छुरेसे (वरुणस्य राज्ञः सोमस्य अवपत्) वरणीय राजा सोमका मुण्डन कर चुका (ब्रह्माणः) हे ब्राह्मणो ! (तेन अस्य इदं वपत) उससे इसका यह सर मुंडित करो (अयं गोमान् अश्ववान् प्रजावान् अस्तु) यह गायोंवाला घोडोंसे युक्त एवं सन्तानवाला बने ।

अयं गोमान् अस्तु = यह गौओंसे युक्त बने ।

पूरणो वैश्वामित्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ. १०।१६०।५)

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।

आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥ २४९ ॥

(अश्वायन्तः) घोडोंकी कामना करते हुए (गव्यन्तः वाजयन्तः) गाय एवं अन्न पानेकी इच्छा करनेवाले हम (उप गन्तवै त्वा उ) समीप आनेके लिए तुमको ही (हवामहे) बुलाते हैं, (ते नवायां सुमतौ) तेरी नई सुबुद्धिमें, हे इन्द्र ! (वयं आ भूषन्तः) हम विभूषित होते हुए (त्वां शुनं हुवेम) तुमको सुखपूर्वक बुलायेंगे ।

गव्यन्तः त्वा हवामहे = गायोंकी इच्छा करनेवाले हम तेरीही सहायता चाहते हैं ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । सतोबृहती । (ऋ. ७।३२।२३)

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।

अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २५० ॥

हे (मघवन् इन्द्र) ऐश्वर्यसंपन्न प्रभो ! (त्वावान् अन्यः न) तेरे सदृश दूसरा कोई नहीं है (न दिव्यः पार्थिवः) न द्युलोकमें है न भूलोकमें है (न जातः) न उत्पन्न हुआ है और (न जनिष्यते) न आगे चलकर पैदा ही होगा इसलिए (वाजिनः) अन्नसे युक्त हम (अश्वायन्तः गव्यन्तः) घोडोंकी तथा गायोंकी कामना करते हुए (त्वा हवामहे) तुमको बुलाते हैं ।

गव्यन्तः त्वा हवामहे = गायोंकी कामना करनेवाले तुझे बुलाते हैं ।

दीर्घतमा औचथ्यः । मित्रः । जगती । (ऋ. १।१५१।१)

मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन् ।

अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः ॥ २५१ ॥

(गोषु गव्यवः) गौओंके समीप रहनेपर भी अधिक गायोंकी कामना करनेहारे तथा (सु आध्यः) उत्तम रूपसे ध्यान करनेवाले उपासक (जनुषां यजतं) मानवोंके यजन करने योग्य (विदथे अप्सु) अग्निरूपसे यज्ञमें और विद्युत् रूपसे अन्तरिक्षमें रहनेवाले (प्रियं मित्रं न यं) प्यारे मित्रके समान जिस अग्निको (शिम्या अवः प्रति) सत्कर्मसे सबके रक्षणार्थ (जीजनन्) उत्पन्न करते हैं, ऐसे उस अग्निके (पाजसा गिरा) बल तथा गरजनेवाले आवाजसे (रोदसी अरेजेतां) द्युलोक एवं भूलोक भी कॉंपने लगते हैं ।

इस मंत्रमें उस जनसमाजका वर्णन किया है जो गायें समीप रहनेपर भी अधिक गायोंकी इच्छा करता है ।

गोषु गव्यवः = गौवें पास रहनेपर भी अधिक गौवें प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले ।

भर्गः प्रागाथः । इन्द्रः । बृहती । (ऋ० ८।६१।७)

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।

उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ २५२ ॥

हे (मघवन्) ऐश्वर्यसंपन्न ! (त्वं हि) तू तो बडा दानी है इसलिए (एहि) आओ (वसुत्तये) हमें धन देनेके लिए (चेरवे भगं विदाः) संचरणशील अर्थात् उद्यमीको ऐश्वर्यका लाभ दो और (गविष्टये अश्वमिष्टये) गायों तथा घोडोंको पानेकी इच्छा करनेवालेको (उद् वावृषस्व) यथेष्ट वर्षा सी कर खूब गोधन तथा वाजि धनका दान दो।

गविष्टये उद् वावृषस्व = गायोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवालेके ऊपर गायोंकी वृष्टि कर अर्थात् उसे बहुत गौएं दे दो।

परुच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्रः । अत्यष्टिः । (ऋ० १।१३२।३)

तत्तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन् यज्ञे वारमकृण्वत क्षयमृतस्य वारसि क्षयम् ।

वि तद्वोचेरध द्वितान्तः पश्यन्ति रश्मिभिः ।

स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः ॥ २५३ ॥

(यस्मिन् यज्ञे) जिस यज्ञमें यजमान (वारं क्षयम्) बढिया स्वीकार करने योग्य सुन्दर स्थान (अकृण्वत) तैयार करते हैं (तत् तु) वहाँ तो (ते) तुझे ही (प्रत्नथा) पहलेसे (शुशुक्वनं प्रयः) तेजस्वी हविद्रव्य मिलता आरहा है। और तू (ऋतस्य क्षयं वा) यज्ञके लिए स्थान देनेवाला है ऐसा तूने ही (वि वोचेः) कह दिया है कि (अध) अब सभी लोक (द्विता अन्तः) द्यु एवं पृथिवी लोकके मध्य भागमें (रश्मिभिः) सूर्य किरणोंसे यह सारा (पश्यन्ति) देख लेते हैं (सः घा इन्द्रः) वह इन्द्र (गो-एषणः) गायें पानेकी चाह रखनेवाला है (बन्धु क्षिद्भ्यः) बन्धुओंके लिए निवासस्थान देनेहारेके लिए (गो-एषणः) गोदान करनेवाला है यह सबको (अनु विदे) परिचित या विदित है।

बन्धुक्षिद्भ्यः गवेषणः = बन्धुओंके सुखमय निवासके लिये गायें प्रदान करनेकी इच्छावाला।

इरिम्बिठिः काण्वः । इन्द्रः । सतोबृहती । (ऋ० ८।१७।१५)

पृदाकुसानुर्यजतो गवेषण एकः सन्नभि भूयसः ।

भूर्णिमश्वं नयत्तुजा पुरो गृभेन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ २५४ ॥

(गवेषणः यजतः) गायोंको ढूंढनेवाला पूजनीय (पृदाकुसानुः) सर्पके समान ऊँचे मस्तकवाला इन्द्र (एकः सन्) अकेला होता हुआ भी (भूयसः अभि) बहुतोंको पराभूत करता है ऐसे (इन्द्रं) इन्द्रको जो (भूर्णि अश्वं) भरणशील एवं गति तथा वेगसे युक्त है (सोमस्य पीतये) सोमपानके लिए (गृभा तुजा पुरः नयत्) मनको पकडनेवाले स्तोत्रसे शीघ्रतापूर्वक आगे ले चलता है।

गवेषण = गायोंकी खोज करनेवाला इन्द्र है।

वामदेवो गौतमः । इन्द्रावरुणौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० ४।४१।७)

युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी ।

वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शंभू ॥ २५५ ॥

(गविषः) गौ पानेकी इच्छा करनेवाला मैं (युवां इत् हि) तुम दोनोंको ही (प्रभूती) प्रभाव शाली (स्वापी = सु आपी) अच्छे बन्धुवत् (पितरा इव शंभू) मातापिताके तुल्य हितकर्ता

(महिष्ठा) अत्यन्त दानी होनेके कारण (अवसे) संरक्षण करनेके लिए तथा (प्रियाय सख्याय) प्यार भरे मित्रत्वके लिए भी (परि वृणीमहे) स्वीकार करते हैं ।

गविषः = गौकी इच्छा करनेवाला ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । गायत्री । इन्द्रः (ऋ. ७।३१।३)

त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो । त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥ २५६ ॥

हे (शतक्रतो) सैकडों कार्य करनेवाले ! (वसो इन्द्र) बसानेहारे प्रभो ! (नः) हमारे लिए (त्वं वाजयुः गव्युः) तूही अन्नकी कामना करनेवाला, गायोंकी इच्छा करनेवाला और (हिरण्ययुः) सुवर्ण चाहनेवाला है ।

गव्युः = गायोंकी इच्छा करनेवाला इन्द्र है ।

मधुच्छन्दसः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ. ८।४५।१८)

वृणाश सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते । अश्वो अश्वायते भव ॥ २५७ ॥

हे वीर इन्द्र ! (तव सख्यं) तेरी मित्रता (वृणाश) कभी न विनष्ट होनेवाली है (गव्यते गौः असि) गाय चाहनेवालेके लिए तू गाय लेकर उपस्थित होता है अब (अश्वायते अश्वः भव) घोडा चाहनेवालेके सम्मुख घोडा लेकर आ जा ।

गव्यते गौः असि = गायकी इच्छा करनेवालेके लिए गौ बनो ।

परुच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्रः । अत्यष्टिः । (ऋ. १।१३१।३)

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य
निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ २५८ ॥

हे इन्द्र ! (त्वा) तुझे सन्तुष्ट करनेके लिए वार (गव्यस्य व्रजस्य साता) गायोंके समूह मिल जायँ इसलिए (अवस्यवः) अपने संरक्षणकी इच्छा करनेहारे (निःसृजः) दोनों (सक्षन्त) भक्त जन (मिथुना) पतिपत्नी मिलकर (वि ततस्रे) यत्न करते आये हैं (यद् गव्यन्ता) जब गायों चाहनेवाले तथा (स्वः यन्ता) स्वर्ग जानेकी इच्छा करनेहारे (द्वा जना) दोनों पतिपत्नी (सं ऊहसि) तू अच्छी तरह से चलाता है । हे इन्द्र ! (वृषणं सचाभुवं) बलिष्ठ और सदैव समीप विद्यमान वज्रको (आविः करिक्रत्) तू प्रकट कर चुका है । शत्रुका वध करते समय तूने अपना वज्र प्रकट किया है ।

गव्यस्य व्रजस्य साता गव्यन्ता = गौओंके झुण्डका दान करनेवाले और हमी दानके लिये गायें पाने वाले हैं ऐसी इच्छा करनेवाले ।

[९२] गौपर मन रखता हूं ।

अङ्गिराः प्रचेता यमश्च । दुःष्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप् । (अथर्व. ६।४५।१)

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि ।
परेहि न त्वा कामये वृक्षाँ वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः ॥ २५९ ॥

हे (मनः पाप) मनके पाप (परः अप इहि) दूर हट जा (किं अशस्तानि शंससि) क्यों तू बुरी बातें कहता है (परा इहि) दूर जा (त्वा न कामये) तुझको मैं नहीं चाहता (वृक्षान् वनानि

से थर) पेडों तथा जंगलोंमें घूमता रह, (मे मनः पुष्टेषु गोषु) मेरा मन तो घरों तथा गौओंमें रममाण होता है।

मे मनः गोषु = मेरा मन गौओंमें रममाण हुआ है।

जातवा। जातवेदाः मन्त्रोक्ताः। त्रिष्टुप्। (अथर्व० ७।१११)

पुरस्ताद् युक्तो वह जातवेदोऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम्।

त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्वं पुरुषं सनेम ॥ २६० ॥

हे उत्पन्न हुए पदार्थोंको जाननेवाले अग्ने! (त्वं भिषक्) तू वैद्य और (भेषजस्य कर्ता असि) औषधनिर्माता है (पुरस्तात् युक्तः वह) पहलेसे सब कार्योंमें नियुक्त होकर कार्यके भारको उठा, (यथा इदं क्रियमाणं विद्धि) जैसे यह कार्य किया जा रहा है उसे तू जान, (त्वया गां अश्वं पुरुषं सनेम) तेरी सहायतासे गो घोड और मानवोंको निरोग दशामें हम प्राप्त करें।

गां सनेम = हमें गौवें प्राप्त हों।

सूर्या सावित्री। आत्मा। त्रिष्टुप्। (अथर्व १४।१।१२।६२)

इहेदसाथ न परो गमाथेमं गाव' प्रजया वर्धयाथ।

शुभं यतीरुस्रिया' सोमवर्चसो विश्वे देवाः क्रन्निह वो मनांसि ॥ २६१ ॥

हे (गावः) गौवो! (इह इत् असाथ) तुम यहीं ही रहो (न परः गमाथ) दूर न चली जाओ (इमं प्रजया वर्धयाथ) इसको उत्तम संतानके साथ बढाओ (उस्रियाः) हे गौवो! आप (शुभं यतीः सोमवर्चसः) शुभको प्राप्त करनेवाली और चन्द्रके समान तेजस्वितासे युक्त बनो (विश्वे देवाः वः मनांसि इह क्रन्) सभी देव तुम्हारे मनोंको यहां स्थिर करें।

इमं गाव प्रजया सं विशाथायं देवानां न मिनाति भागम्।

अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति ॥ २६२ ॥

हे (गावः) गौवो! (इमं प्रजया सं विशाथ) इसके घरमें अपनी सन्तानके साथ प्रवेश करो (अयं देवानां भागं न मिनाति) यह देवोंके भागका लोप नहीं करता है (सर्वे मरुतः पूषा) सभी मरुद् और पूषा (धाता सविता) विधाता एवं सविता (अस्मै अस्मै) इसी मानवके लिए (वः वा सुवाति) तुम्हें उत्पन्न करता है।

१ हे गावः! इह असाथ = गायें यहां रहें

२ न परः गमाथ = दूर न जावें

३ हे उस्रियाः! प्रजया वर्धयत = गौवें अपनी प्रजासे इसकी वृद्धि करें।

४ हे गावः! इमं प्रजया सं विशाथ = गौवें इसकी गोशालामें अपनी सन्तानोंके साथ प्रवेश करें।

विश्वामित्रः। सीता। पथ्यापंक्तिः। (अथर्व ३।१७।३)

लाङ्गलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु।

उदिद् वपतु गामविं प्रस्थावद् रथवाहनं पीवरीं च प्रफर्व्यम् ॥ २६३ ॥

(पवीरवत् सुशीमं) पत्थरवत् कठिन चलानेके लिए सुखकारक (सोम-सत्सरु लांगलम्) हल जौके मूठवाला हल (गां अविं) गाय तथा बकरी (प्रस्थावत् रथवाहनं) शीघ्रगामी रथके घोडे या बैल (पीवरीं प्रफर्व्यं च) और हृष्टपुष्ट अवस्थाको (इत् उद् वपतु) निश्चयसे दे देवे।

गां उद्वपतु = गौ प्राप्त होवे।

शंयुर्बार्हस्पत्यः। इन्द्रः। बृहती। (ऋ. ६।४६।१०)

ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया।

अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव॥ २६४॥

(गव्यता मनसा) गायें मिलें इस इच्छासे प्रभावित होकर (ये शत्रुं आ दभुः) जो लोग शत्रुको दबा चुके हों तथा (धृष्णुया अभि प्र घ्नन्ति) साहसी बनकर सामने दौडते हुए मारकाट मचाते हैं उनसे (अध स्म) इस अवसरपर (मघवन्) हे ऐश्वर्यसंपन्न इन्द्र! (गिर्वणः) भाषणोंद्वारा प्रार्थनीय प्रभो! (नः) हमें (तनूपाः अन्तमः भव) शरीरसंरक्षक तथा समीपवर्तीके रूपमें प्राप्त हो जा।

गव्यता मनसा शत्रुं आ दभुः = गायोंकी प्राप्तिकी इच्छासे शत्रुको दबा चुके हैं शत्रुको परास्त करके गौवें प्राप्त कर चुके हैं।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ. ६।३९।२)

अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्युजानः।

रुजदरुग्णं वि वलस्य सानुं पणीँर्वचोभिरभि योधदिन्द्रः॥ २६५॥

(अयं ऋतधीतिभिः युजानः) यह इन्द्र सत्य कर्मवालोंसे मिलकर (ऋत युक्) सत्यसे युक्त होकर (अद्रिं परि) पहाडके चारों ओर (उस्राः उशानः) गायोंकी कामना करता हुआ (वलस्य अरुग्णं सानुं) वल असुरके दूसरोंसे न तोडे हुए ऊंचे दुर्गको (विरुजत्) विशेष रूपसे तोड चुका और (वचोभिः) वाग्बाणोंसे (पणीन् अभि योधत्) पणि असुरोंको विद्ध किया।

उस्राः उशानः सानु विरुजत् = गायोंको प्राप्त करनेकी इच्छासे शत्रुके किलोंको तोड दिया।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्राग्नी। अनुष्टुप्। (ऋ. ६।५९।७)

इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वोः।

मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्क्तं गविष्टिषु॥ २६६॥

हे इन्द्र तथा अग्नि! (नरः) नेता लोग (बाह्वोः धन्वानि आ हि तन्वते) अपने बाहोंसे धनुष्य फैलाने लगे हैं इसलिए (अस्मिन् महाधने) इस बडे भारी युद्धमें जिसका उद्देश्य अधिक धन पाना है और (गविष्टिषु) गायोंको प्राप्ति करनेमें (नः मा परावर्क्तं) हमें न छोड दो।

गविष्टिषु नः मा परावर्क्तं = गायोंकी प्राप्तिके लिये युद्ध छिड जानेपर हमसे तुम दोनों पृथक् न हो।

विश्वमना वैयश्वः। इन्द्रः। उष्णिक्। (ऋ. ८।२४।५)

न ते सव्यं न दक्षिणं हस्तं वरन्त आमुरः।

न परिबाधो हरिवो गविष्टिषु॥ २६७॥

हे (हरिवः) घोडोंसे युक्त इन्द्र! (आमुरः परिबाधः) मरनेके पूर्णतया योग्य और सभी तरह कष्ट देनेवाले लोग (गविष्टिषु) गौओंके ढूंढनेमें (ते न सव्यं न दक्षिणं हस्तं) तेरा न बांये और न दाहिने हाथको (न वरन्त) नहीं रोक सके हैं।

गविष्टिषु ते न वरन्ते = गौओंकी खोजमें तुझे कोई नहीं रोक सकता।

तिरश्चीराङ्गिरसो द्युतानो वा मारुतः। इन्द्रः। त्रिष्टुप् (ऋ ८।९६।१७)

त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ।

त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ॥ २६८ ॥

हे (वज्रिन् इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र! (त्यत् त्वं ह) उस कार्यको तू ही कर सका (धृषितः) साहसी बनकर तूने (वज्रेण अप्रतिमानं ओजः) वज्रसे अप्रतिम बलशालीको (जघन्थ) मार डाला (त्वं वधत्रैः) तू हथियारोंसे (शुष्णस्य अवातिरः) शुष्णके गर्वको नीचा दिखा चुका है और (त्वं शच्या गाः इत् अविन्दः) तूने अपनी शक्तिसे गायोंको पा लिया है।

त्वं गाः अविन्दः— तूने गायें प्राप्त की।

[९४] गौएँ प्राप्त कीं।

गृत्समदः आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्भार्गवः शौनकः। इन्द्रः। जगती। (ऋ २।१९।३)

स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम्।

अजनयत् सूर्यं विदद् गा अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत् ॥ २६९ ॥

(अहि हा) अहिका वध करनेवाले (माहिनः) पूजनीय (सः इन्द्रः) उस इन्द्रने (अपां अर्णः) जलके प्रवाहको (समुद्रं अच्छ) समुद्रकी दिशामें (प्र ऐरयत्) बहने दिया (सूर्यं अजनयत्) सूर्यको बनाया (गाः विदत्) गौएँ प्राप्त कीं और (अक्तुना) तेजसे (अह्नां वयुनानि) दिनोंके कार्यकलाप (साधत्) कर डाले।

अह्नां वयुनानि साधत्= दिनके समय करने योग्य कर्मोंको पूर्ण कर दिया। सूर्योदयके पश्चात् गौएँ आगयीं और उनके दूधसे दैनिक कार्योंका या यज्ञोंका अनुष्ठान किया। गाः विदत् = गौएँ प्राप्त हुईं।

पराशरः शाक्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ १।७१।२)

वीळु चिद् दृळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण।

चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः ॥ २७० ॥

(नः पितरः अङ्गिरसः) हमारे पुरखा अंगिरसोंने (वीळु चित् दृळ्हा) अत्यन्त बलिष्ठ एवं सुदृढ (अद्रिं) पर्वतका आश्रय लेनेहारे शत्रुको (रवेण उक्थैः) जय जयकार रूपी शब्दों एवं घोषणाओंसे ही (रुजन्) मारडाला और (अस्मे) हमारे लिए (बृहतः दिवः) बडे स्वर्गके (गातुं) मार्गको तैयार (चक्रुः) कर रखा। पश्चात् उन्होंने (अहः स्वः केतुं) सुखदायक दिनका ध्वजरूपी सूर्य तथा (उस्राः) गौएँ (विविदुः) प्राप्त कर लीं या जान लीं या पहचान लीं।

उस्राः विविदुः= गौएँ प्राप्त कीं।

[९५] गौएँ घरमें बैठती हैं।

कबन्धः। मन्त्रः। अनुष्टुप् (अथर्व ६।७७।१)

असदन् गावः सदने अपप्तद् वसतिं वयः।

आस्थाने पर्वता अस्थु स्थाम्नि वृक्कावतिष्ठिपम् ॥ २७१ ॥

(गावः सदने असदन्) गौएँ घरमें बैठ चुकी हैं (वयः वसतिं अपप्तत्) पंछी घोसलेमें आते हैं (पर्वताः आस्थाने अस्थुः) पहाड अपने स्थानमें स्थिर हैं उसी प्रकार (वृक्कौ स्थाम्नि अतिष्ठिपं) दोनों मूत्राशयोंको यथास्थान स्थिर करता हूँ।

गावः सदने असदन्= गायें अपनी गोशालामें बैठी हैं।

कवष ऐलूषः अक्षो मौजवान् वा । कृषिः । त्रिष्टुप् (ऋ० १०।३४।१३)

अक्षैर्मा दीव्य कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।

तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः ॥ २७२ ॥

हे (कितव) जुआरी ! (अक्षैः मा दीव्य) पासोंसे न खेल (कृषिं इत् कृषस्व) खेतीबाडीका ही काम कर, (बहु मन्यमानः वित्ते रमस्व) मेरे कथनको खूब मानता हुआ जो धन खेतीसे मिलता हो उसीमें रममाण हो (अयं अर्यः सविता) यह प्रगतिशील सविता (मे तत् विचष्टे) मुझे यह बात बतलाता है, कि (तत्र गावः तत्र जाया) उस प्रकार खेती करनेसे ही गायों एवं पत्नीकी प्राप्ति होती है ।

तत्र गावः, तत्र जाया= खेतीसे गौवें प्राप्त होती हैं और पश्चात् पत्नी भी प्राप्त होती है ।

[९६] गायोंको ढूंढकर प्राप्त करना

कुत्स आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती । (ऋ० १।१३०।२)

त्वं मायाभिरनवद्य मायिनं श्रवस्यता मनसा वृत्रमर्दयः ।

त्वामिन्नरो वृणते गविष्टिषु त्वां विश्वासु हव्यास्विष्टिषु ॥ २७३ ॥

हे (अनवद्य) निर्दोष (मायिनं वृत्रं) मायावी वृत्रको (त्वं मायाभिः) तू मायाओंसे तथा (श्रवस्यता मनसा) यशको चाहनेवाले मनसे (अर्दयः) कष्ट दे चुका, (नरः गविष्टिषु) नेता लोग गायोंके ढूंढनेमें तथा (विश्वासु हव्यासु इष्टिषु) सभी हवनीय इष्टियोंमें (त्वां इत् वृणते) तुझको ही चुन लेते हैं ।

नरः गविष्टिषु त्वां वृणते= नेता लोग गौओंकी खोज करनेके समय तुझे सहायतार्थ बुलाते हैं ।

[९७] देव हमारे लिये गौ देनेकी इच्छा करें

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१२२।१४)

हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ।

अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ॥ २७४ ॥

(हिरण्य-कर्णं) कानमें सोनेके गहने और (मणिग्रीवं) गलेमें रत्नमाला धारनेपर दिखाई देनेवाली (तत् अर्णः) वह सुन्दरता (विश्वे देवाः) सभी देवता (नः वरिवस्यन्तु) हमें प्रदान करें और (अर्यः) सर्वश्रेष्ठ देव (सद्यः आजग्मुषीः) तुरन्त हमारे मुँहसे निकलनेवाले (गिरः) स्तोत्र तथा (उस्राः) गायें यानी उनसे मिलनेहारा घृत जैसे पदार्थ (अस्मे) हमारी (उभयेषु चाकन्तु) दोनों प्राप्त करनेकी इच्छा करें ।

१ अर्णस्- रूप जल धन (प्रावस), २ अर्यः= श्रेष्ठ, देव, ३ उभय= दोनों भी हमारी गौओंसे मिलनेहारे दुग्ध इत्यादि पदार्थोंकी इच्छा देव करते रहें; इतने वे चीजें बढिया हों ।

अस्मे उस्राः चाकन्तु = देव हमारे लिये गौवें देनेकी इच्छा करें ।

[९८] बहुत गौओंको पास रखनेवाला गौतम ।

मगाः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ४।२९।६)

यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ ।

यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ २७५ ॥

(यौ मित्रावरुणौ) जो दोनों मित्र और वरुण (मेधातिथिं त्रिशोकं, काव्यं उशनां अवथः) मेधातिथि त्रिशोक तथा काव्य उशनाकी रक्षा करते हो (यौ गोतमं उत मुद्गलं अवथः) जो

गौतम और मुद्गलकी रक्षा करते हो (तौ नो मुञ्चतं अंहसः) वे दोनों हमें पापसे बचावें।

गो-तमः- बहुत गौओंको अपने पास रखनेवाला गौतम कहलाता है।

[९९] गौओंको स्थिर करनेवाला गविष्ठिर।

मृगारः। मित्रावरुणौ। त्रिष्टुप्। (अथर्व ४।२९।५)

यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुणमित्र कुत्सम्।

यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ २७६ ॥

(यौ मित्रावरुण) जो मित्र और वरुण (भरद्वाजं गविष्ठिरं विश्वामित्रं कुत्सं अवथः) भरद्वाज गविष्ठिर, विश्वामित्र और कुत्स की रक्षा करते हो (यौ कक्षीवन्तं कण्वं प्र अवथः) जो कक्षीवान और कण्वकी रक्षा करते हैं, वे दोनों हमें पापसे बचावें।

जो गौओंको अपने पास स्थिर रूपसे रखता है अथवा गौओंमें स्थिर रूपसे रहता है उसको गविष्ठिर कहते हैं। यह एक ऋषिका नाम है। (गवि स्थिरः) गौओंमें स्थिर रहनेवाला।

[१००] गौओंको पास रखनेवाला अंगिरस ऋषि।

वामदेवो गौतमः। अग्निः। त्रिष्टुप् (ऋ ४।३।११)

ऋतेनाद्रिं व्यसन् भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः।

शुनं नरः परि षदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ॥ २७७ ॥

(अद्रिं भिदन्तः) पहाडको तोडते हुए (ऋतेन) यज्ञकी सहायतासे (अंगिरसः) अंगिरस ऋषियोंका (गोभिः सं नवन्त) गायोंसे ठीक मिलन हुआ (नरः) नेता बने हुए वे लोग (उषासं शुनं परि षदन्) उषा वेलामें सुखपूर्वक चारों ओर बैठ गये और (अग्नौ जाते) अग्निके उत्पन्न होनेपर (स्वः आविः अभवत्) सूर्यप्रकाश व्यक्त हुआ।

अंगिरसः गोभिः सं नवन्त = अंगिरस गौओंके साथ मिले।

[१०१] उषःकालमें गौओंकी प्राप्ति।

ब्रह्मपुत्र आत्रेयः। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप् (ऋ ५।४५।८)

विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः सं यद्गोभिरङ्गिरसो नवन्त।

उत्स आसां परमे सधस्थ ऋतस्य पथा सरमा विदद्गाः ॥ २७८ ॥

(अस्याः माहिनायाः व्युषि) इस पूजनीय उषाके उदय होनेपर (यत्) जब (विश्वे अंगिरसः गोभिः सं नवन्त) सारे अंगिरस कुलमें उत्पन्न लोग गौओंको प्राप्त कर चुके तब (आसां उत्सः) इनका दुग्धभाण्डार (परमे सधस्थे) श्रेष्ठ स्थानमें रखा हुआ था और (सरमा) सरमाने (ऋतस्य पथा) यज्ञ मार्गसे (गाः विदत्) गायोंको प्राप्त किया।

१ विश्वे अंगिरसः गोभिः सं नवन्त = सब अंगिरस गौओंसे संयुक्त हुए।

२ सरमा गाः विदत् = सरमाने गौओंको जान लिया प्राप्त किया।

कुशिकः सौभरः रात्रिर्वा भारद्वाजी। रात्रिः। गायत्री (ऋ १०।१२७।८)

उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः। रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥ २७९ ॥

हे रात्रि! (गाः इव) गौओंके सामने जैसे आते हैं वैसे ही (ते उप आकरं) तेरे समीप आकर प्रशंसा कर चुका हूं इसलिए हे (दिवः दुहितः) द्युलोक कन्ये! (जिग्युषे स्तोमं न) जयिष्णुके

लिए जिस प्रकार स्तोम रखा जाता है, वैसे ही मैंने रखे हुए इस हविर्भागका (पृष्ठीन्य) स्वीकार कर।

गाः ते उप आकर = गौवें तेरे पास पहुंचाई है।

अयास्य आङ्गिरसः। बृहस्पतिः। त्रिष्टुप्। (ऋ १।१०।१)

स गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय।

जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥ २८० ॥

(आंगिरसः नक्षमाणः) अंगिरसका पुत्र अपने तेजसे व्याप्त होता हुआ (भगः इव अर्यमणं) भगके समान अर्यमाको (गोभिः सं निनाय) गौओंसे ठीक तरह युक्त किया। (मित्रः न) मित्रके समान (जने दंपती अनक्ति) जनतामें पतिपत्नीको समीप लाता है हे बृहस्पते ! (आजौ आशून् इव) युद्धमें घोडोंको जैसे इकट्ठे करते हैं वैसे ही (वाजय) हमें बलवान करो।

गोभिः सं निनाय = गौओंसे युक्त हो गया है।

त्रिशिरास्त्वाष्ट्र। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ १।८।९)

भूरीदिन्द्र उदिनक्षन्तमोजोऽवाभिनत्सत्पतिर्मन्यमानम्।

त्वाष्ट्रस्य चिद्विश्वरूपस्य गोनामाचक्राणस्त्रीणि शीर्षा परा वर्क् ॥ २८१ ॥

(सत्पतिः) सज्जनोंके पालक इन्द्रने (भूरि ओजः इत् उदिनक्षन्तं) बहुत भारी ओजगुणको प्राप्त करते हुए और (मन्यमानं) अभिमानसे पूर्णको (अव अभिनत्) पूर्णतया भिन्न कर डाला। (विश्वरूपस्य त्वाष्ट्रस्य चित्) सभी रूप धारण करनेवाले त्वष्टा पुत्रके भी (गोनां आ चक्राणः) गौओंको पाता हुआ (त्रीणि शीर्षा परा वर्क्) तीन सिरोंको काटकर फेंक दिया।

गोनां आ चक्राणः = गौओंको प्राप्त किया।

कुशिक ऐषीरथिः, विश्वामित्रो गाथिनो वा। इन्द्र। त्रिष्टुप्। (ऋ ३।३१।९)

नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम्।

इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां येन मासाँ असिषासन्नृतेन ॥ २८२ ॥

(गव्यता मनसा) गौ पानेकी इच्छा मनमें रखते हुए (अर्कैः अमृतत्वाय गातुं कृण्वानासः) अर्क नीय स्तोत्रोंसे अमरपनके लिए मार्गका सृजन करते हुए, स्वामी लोग इकट्ठे होकर (नि सेदुः) बैठ गये (येन ऋतेन) जिस यज्ञसे वे इस तरह (मासान् असिषासन्) महिनोंके महिने बिताते हुए बैठे थे। (इदं एषां) यह उनका (सदनं) सत्रमें बैठना (भूरि नु चित्) सचमुच अत्यधिक था।

गव्यता मनसा नि सेदुः = गौओंकी प्राप्तिका विचार करते हुए कई ऋषि यही एक कार्य करनेके लिये बैठ गये। अर्थात् गौओंकी प्राप्ति और उनका सुधार करनेकी इच्छा ऋषियोंने की और यही कार्य वे करते रहे।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। इन्द्रः। बृहती। (ऋ ७।३२।१)

इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत्स गोमति व्रजे ॥ २८३ ॥

(यस्य अविता इन्द्रः) जिसका संरक्षक इन्द्र और (मरुतः) मरुद्वीर हैं (सः) वह (गोमति व्रजे गमत्) गायोंसे युक्त बाडेमें चला जाता है।

इन्द्र तथा वीर मरुतोंका संरक्षण प्राप्त होनेपर गायोंकी प्राप्ति सुगम होती है।

देवातिथिः काण्वः । कुशाः । पुर उष्णिक् । (ऋ. ८।४।२१)

वृक्षाश्चिन्मे अभिपित्वे अरारणुः । गां भजन्त मेहनाऽश्वं भजन्त मेहना ॥ २८४ ॥

(मे अभिपित्वे) मेरे घरके पासपर (वृक्षाः चित्) पेड़तक (अरारणुः) चिल्लाने लगे कि (मेहना गां भजन्त) बहुत संख्यामें गौओंको पा गये (मेहना अश्वं भजन्त) बहुत घोड़ोंको पा गये।

मेहना गां भजन्त = बहुत गौएँ प्राप्त हुईं।

ब्रह्मा । अग्निः । जगती । (अथर्व ६।७१।१)

यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम् ।

यदेव किं च प्रतिजग्रहाहमग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥ २८५ ॥

(बहुधा विरूपं) बहुत करके विविध रूपवाला (यत् अन्नं अद्मि) जो अन्न मैं खाता हूँ, तथा (हिरण्यं अश्वं गां अजं उत अविं) सोना घोड़ा गौ बकरा भेड़ (यत् एव किं च अहं प्रतिजग्रह) जो कुछ मैंने ग्रहण किया है (होता अग्निः तत् सुहुतं कृणोतु) हवन करनेवाला अग्नि उसे भली भाँति हवन किया हुआ कर दे।

अहं गां प्रतिजग्रह = मैंने गायका दानमें स्वीकार किया।

श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ. ८।९२।२५)

अरमश्वाय गायति श्रुतकक्षो अरं गवे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ २८६ ॥

श्रुतकक्ष ऋषि (अश्वाय गवे) घोड़े और गौको पानेके लिए (इन्द्रस्य धाम्ने) इन्द्रका पद भी मिले इसलिए (अरं गायति) पर्याप्त मात्रामें स्तुतिमय काव्यका गायन करता है।

गवे अरं गायति = गायको रिझानेके लिये पर्याप्त गाता है।

सुकक्ष आंगिरसः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ. ८।९३।१७)

अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत । यत्सोमेसोम आभवः ॥ २८७ ॥

हे (पुरुणामन्) बहुत नामोंसे युक्त तथा (पुरुष्टुत) बहुतोंसे प्रशंसित इन्द्र ! (यत्) जो (सोमे सोमे आभवः) हर सोमयज्ञमें तू उपस्थित हो चुका तब हम (अया गव्यया धिया च) इस तरहकी गायोंको पानेकी लालसासे प्रभावित हों।

गव्यया धिया = गौओंकी प्राप्ति करनेकी इच्छा।

[१०२] सरमा गौओंको ढूंढकर प्राप्त करती है।

अयास्य आंगिरसः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ५।४५।७)

अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिरार्चन्येन दश मासो नवग्वाः ।

ऋतं यती सरमा गा अविन्दद्विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार ॥ २८८ ॥

(नवग्वाः येन) नौ गायें रखनेवाले जिससे (दश मासः आर्चन्) दस महिनोंतक पूजा करते रहे वह (हस्तयतः अद्रिः) हाथसे पकड़ा हुआ पत्थर (अत्र अनूनोत्) इधर प्रशंसा या शब्द कर चुका। (सरमा ऋतं यती) सरमा यज्ञकी ओर जाती हुई, (गाः अविन्दत्) गायें प्राप्त कर चुकी (अङ्गिराः) अंगिराने (विश्वानि सत्या चकार) सभी यज्ञोंको बनाया।

सरमा गाः अविन्दत् = सरमाने गौएँ प्राप्त की।

[१०३] गायके लिये विस्तृत मार्ग बनाना ।

विश्वमेव आंगिरसः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ. ८।६८।१२)

उरुं नृभ्य उरुं गव उरु रथाय पन्थाम् । देववीतिं मनामहे ॥ २८९ ॥

हे इन्द्र ! (नृभ्यः उरुं) मानवोंके लिए विशाल (गवे रथाय उरु) गाय एवं रथके लिए विशाल (पन्थां देववीतिं मनामहे) मार्ग और यज्ञको हम मान्यता देते हैं ।

गवे उरु पन्थां मनामहे = गायोंके लिये विस्तृत मार्ग हम कर देते हैं ।

[१०४] गायोंको चुरानेवाले शत्रु ।

पणयोऽसुराः । सरमा देवता । त्रिष्टुप् (ऋ. १०।१०८।९)

एवा च त्वं सरम आजगन्थ प्रबाधिता सहसा दैव्येन ।

स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवां सुभगे भजाम ॥ २९० ॥

हे सरमे ! (त्वं दैव्येन सहसा प्रबाधिता) तू देवोंके बलसे पीड़ित होकर (एव च आ अगन्थ) इस तरह अगर आयी हो, तो (त्वा स्वसारं कृणवै) तुझको अपनी बहन बनायेंगे । (पुनः मा गाः) फिरसे छोड़कर वापस न चली जा और (सुभगे) अच्छे भाग्यवाली तू ! (ते गवां अप) तेरी गायोंको यहांसे हटाकर (भजाम) हम उनका उपभोग लेंगे ।

ते गवां अप भजाम = तेरी गौओंको अन्य स्थानपर लेजाकर हम उनका उपभोग करेंगे । अर्थात् उनका दूध आदि हम पीयेंगे । ऐसा शत्रु बोलते हैं उनका पराभव करके उनसे गौवें प्राप्त करना और वापस लाना चाहिये ।

गौओंकी चोरी करनेवाला समाजका शत्रु माना जाता है ।

कुमार आत्रेयः वृषो वा जानः उभौ वा । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ५।२।५)

के मे मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास ।

य ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान् ॥ २९१ ॥

(मे मर्यकं) मेरे मानवी समाजको (के गोभिः वि यवन्त) भला किन लोगोंने गायोंसे वियुक्त कर डाला जो गौवें ऐसी थीं कि (येषां अरणः गोपाः चित् न आस) जिनका गतिशील संरक्षक भी न था (ईं ये जगृभुः) इसे जो पकड़ चुके (ते अव सृजन्तु) वे छोड़ दें क्योंकि (चिकित्वान्) विद्वान् (नः पश्वः) हमारे पशुओंके (उप) समीप (आ अजाति) चला आता है ।

१ के मर्यकं गोभिः वियवन्त ? = कौन भला इस मनुष्यको गौओंसे वियुक्त करते हैं ? कौन इनकी गौवें ले जाते हैं ?

२ येषां अरणः गोपाः न आस = जिनके साथ चलनेवाला कोई रक्षक भी नहीं था ।

गौके साथ संरक्षक अवश्य रखना चाहिये । ऐसा प्रबंध करना चाहिये कि जिससे गौवें शत्रुके आधीन न हो सकें ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ७।१८।१४)

नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा ।

षष्टिर्वीरासो अधि षड् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥ २९२ ॥

(गव्यवः) गायें चुरानेकी इच्छा करनेवाले अनु तथा द्रुह्युके (षष्टिः शता) साठ सौ तथा (षट् सहस्रा) छः हजार और (षट् अधि षष्टिः वीरासः) ६६ की संख्यामें वीर थे वे (नि सुषुपुः)

भूमिपर सोये पडे लडाईमें मारे गये (विश्वा इत् कृतानि) ये सभी कार्य (युधेषु इन्द्रस्य वीर्या) यज्ञ करनेवालेकी सहायताके लिए इन्द्रके वीरतापूर्ण कार्य हैं।

गायें चुरानेवाले ९९९९ और युद्धमें मारे गये और इन्द्रने गौवें वापस लायीं और भक्तोंको दे दीं। यहां भी संख्या ९९ ९९ है या ९९९९ है यह विचारास्पद है।

[१०५] गौवाली शत्रुकी सेनाओंपर विजय पाना।

वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ ४।२२।७)

स्पूरस्य रायो बृहतो य ईशे तमु ष्टवाम विदथेष्विन्द्रम् ।

यो वायुना जयति गोमतीषु प्र धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ ॥ २९३ ॥

(यः बृहतः स्पूरस्य) जो बहुत ही बडे एवं विशाल (रायः ईशे) धनका मालिक है (तं इन्द्रं उ) उसी इन्द्रको ही (विदथेषु स्तवाम) यज्ञोंमें हम प्रशंसित करें, (यः) जो (वायुना) अपनी प्राण शक्तिसे (गोमतीषु जयति) गौओंसे युक्त शत्रुसेनामें विजयी बनता है, (धृष्णुया) वह साहसी इन्द्र (वस्यः) श्रेष्ठ धनके (अच्छ प्र नयति) प्रति हमें ले चलता है।

गोमतीषु जयति= गायोंसे युक्त शत्रुसेनाके साथ युद्ध करनेमें वह विजय प्राप्त करता है।

वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (ऋ ४।१७।१०)

अयं शृण्वे अध जयन्नुत घ्नन्नयमुत प्र कृणुते युधा गाः ।

यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृळ्हं भयत एजदस्मात् ॥ २९४ ॥

(शृण्वे) मैं सुनता हूँ कि (अयं) यह (अध जयन्) यह इन्द्र जीतता हुआ (उत घ्नन्) और शत्रुओंको मारता हुआ संहार करता है (उत अयं) तथा यह (युधा) लडाईसे (गाः प्रकृणुते) गौओंको यथेष्ट मात्रामें प्राप्त करता है (यदा इन्द्रः) जब कि इन्द्र (सत्यं मन्युं कृणुते) सचमुच ही क्रोध या तीव्र उत्साह दर्शाता है तब (दृळ्हं विश्वं) सुदृढ सारा संसार (अस्मात्) इससे (एजत्) काँपते हुए (भयते) डर जाता है।

अयं युधा गाः प्रकृणुते= यह युद्धसे गौवें प्राप्त करता है।

वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ ४।१७।११)

समिन्द्रो गा अजयत् सं हिरण्या समश्विया मघवा यो ह पूर्वीः ।

एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकै रायो विभक्ता सम्भरश्च वस्वः ॥ २९५ ॥

(मघवा इन्द्रः) ऐश्वर्य संपन्न प्रभु (गाः हिरण्य अश्विया) गोधन सुवर्ण तथा घोडोंके झुंडको (सं अजयत्) भली भाँति जीत चुका (यः पूर्वीः ह) जो बहुत सारी शत्रुसेनाओंको भी परास्त कर सका है, (नृतमः) नेताओंमें अत्यन्त विख्यात वह (एभिः नृभिः) इन प्रजाओंसे प्रशंसित होनेपर (शाकैः) अपनी सामर्थ्यसे (वस्वः) धनका (संभरः) अच्छी तरह संग्रह करनेवाला (अस्य रायः विभक्ता च) और इस धनका पूर्ण रूपसे वितरण करनेवाला भी बनता है।

इन्द्रः गाः सं अजयत्= इन्द्रने गायोंको जीत लिया।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (ऋ ७।२०।५)

वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारी नर्यं ससूव ।

प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः ॥ २९६ ॥

(रणाय) युद्ध करनेके लिए (वृषा) बलिष्ठने (वृषणं जजान) इच्छापूर्ति करनेहारे वीरको उत्पन्न किया (नारी चित्) स्त्रीने भी (नर्यं तं उ) नरोंके हितकारी उसे ही (ससूव) पैदा किया

या (यः) जो (सेनानीः) सेनापति (नृभ्यः इनः प्र अस्ति) मानवोंके लिए स्वामी है, (अध सः सत्वा) और वह अपने बलसे (गवेषणः धृष्णुः) गायोंको खोजनेवाला साहसी वीर भी है।

धृष्णुः गवेषणः= साहसी वीर ही शत्रुसे गौओंकी खोज कर सकता है।

[१०६] गौ प्राप्त करनेवाला रथ।

गोतमो राहूगणः। इन्द्रः। पंक्तिः। (ऋ. १।८२।४)

स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम्।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ २९७ ॥

(सः घ) वह इन्द्र (गोविदं तं वृषणं रथं) गौको पानेहारे उस बलवान रथपर (अधि तिष्ठाति) बैठ जाता है। हे इन्द्र ! (यः हारि-योजनं पूर्णं पात्रं) जो रथ घोडोंके जोतनेपर धान्यसे भरे हुए पूर्ण पात्र (चिकेतति) के लेता है। हे इन्द्र ! (ते हरी योज) तेरे घोडोंको अभी रथमें जोत दे।

रथको घोडोंसे सुसज्ज करो, रथमें धान्यसे भरे हुए बर्तन रख दो और उस गौवकानेवाले रथपर बैठकर गौएं जीत लाओ।

गोविद् रथ अधितिष्ठति= गौकी प्राप्ति करनेवाले रथपर वह वीर चढता है।

वामदेवो गौतमः। इन्द्रः। गायत्री (ऋ. ४।३१।१४)

अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमाँ इन्द्रानपच्युतः। गव्युरश्वयुरीयते ॥ २९८ ॥

हे इन्द्र ! (द्युमान्) जगमगाता हुआ (अनपच्युतः) कहीं भी पीछे न पडता हुआ (धृष्णुया) शत्रुओंपर साहस पूर्वक हमले करता हुआ (अस्माकं रथः) हमारा रथ (गव्युः) गौओंकी कामना करता हुआ और (अश्वयुः ईयते) घोडोंको पानेके लिए प्रगति करता है।

गव्युः रथः ईयते= गायोंकी इच्छा करता हुआ यह रथ आगे बढ रहा है।

[१०७] गौओंको प्राप्त करनेवाला योद्धा

वामदेवो गौतमः। दधिक्राः। जगती। (ऋ. ४।४०।२)

सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसच्छ्रवस्यादिष उषसस्तुरण्यसत्।
सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो दधिक्रावेषमूर्जं स्वर्जनत् ॥ २९९ ॥

(सत्वा) गतिशील (भरिषः) भरणकर्ता (गविषः) गायोंकी इच्छा करनेवाला (दुवन्यसत्) सेवाकी इच्छा करनेवालोंमें बैठनेवाला (इषः) यजना करने योग्य पद (श्रवस्यात्) अन्नकी कामना करे, तथा (तुरण्यसत्) त्वरापूर्वक कार्य करनेके लिए बैठनेवाला (सत्यः द्रवः) सदा प्रगतिशील, (पतङ्गरः दधिक्रावा) कूदते फाँदते जानेहारा घोडा (द्रवरः) अति वेगवान् होकर (उषसः) प्रातःकाल ही (इषं) अन्न (ऊर्जं) बल तथा (स्वः जनत्) तेजका उत्पादन करे।

दधिक्राः गविषः= घोडा भी गायोंकी प्राप्ति करना चाहता है। (यहां दधिक्रा पद प्रातःकालके सूर्यका वाचक है अतः यहांकी गायें सूर्य किरण हैं। तथापि वीर अश्वपर आरूढ हो शत्रुओंको परास्त करके गायें प्राप्त करता है इसलिये आलंकारिक रीतिसे घोडा ही गौओंकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला है ऐसा काव्यमें वर्णन हो सकता है।)

[१०८] गायोंके लिये युद्ध करना।

सुदीतिपुरुमीळ्हावाङ्गिरसौ तयोर्वान्यतरः। अग्निः। गायत्री। (ऋ० ८।७१।५)

यं त्वं विप्र मेधसातावग्ने हिनोषि धनाय।

स तवोती गोषु गन्ता ॥ २०० ॥

हे (विप्र अग्ने) ज्ञानी अग्ने! (त्वं मेधसातौ) तू यज्ञके विभजनमें (यं धनाय हिनोषि) जिसे धनके लिए प्रेरित करते हो (सः) वह (तव ऊती) तेरी रक्षाके कारण (गोषु गन्ता) गायोंके लिये होनेवाले युद्धमें जानेवाला होता है अर्थात् उसे गायें मिलती हैं।

युद्धमें शत्रुका पराजय करके वह गायें प्राप्त करता है।

अयास्य आङ्गिरसः। बृहस्पतिः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।६७।३)

हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन्।

बृहस्पतिरभिकनिक्रदद्गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥ २०१ ॥

(हंसैः इव) हंसतुल्य प्रेमीबद्ध होकर कार्य करनेवाले (वावदद्भिः सखिभिः) खूब बोलनेवाले मित्ररूप मरुतोंकी सहायतासे (अश्मन्मयानि नहना) पत्थरसे बनाये हुए बंधनागारोंको (वि अस्यन्) तोडकर फेंकता हुआ बृहस्पति (गाः अभि कनिक्रदत्) गायोंके सामने जाकर आनन्दसे गरजता हुआ (प्र अस्तौत्) प्रकर्षसे स्तुति कर चुका (उत विद्वान्) और ज्ञानी वह (उत् अगायत् च) उच्च स्वरमें गायन करने लगा।

गाः अभि कनिक्रदत् = गौओंको प्राप्त कर विजयकी गर्जना करने लगा।

अयास्य आङ्गिरसः। बृहस्पतिः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।६७।८)

ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः।

बृहस्पतिर्मिथोअवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ॥ २०२ ॥

(ते गाः इयानासः) वे मरुत् चुराई हुई गायोंके निकट जाते हुए, (सत्येन मनसा) सच्चे अन्तःकरणसे तथा (धीभिः) अपने कर्मोंसे (गोपतिं इषणयन्त) गायोंके अधिपतिको पानेकी इच्छा करने लगे तब बृहस्पति (मिथः अवद्यपेभिः स्वयुग्भिः) परस्परही निन्दनीय राक्षससे बचाव योग्य गायोंको रखनेवाले एवं स्वयं ही कार्यमें जुट जानेवाले मरुतोंकी सहायतासे (उस्रियाः उत् असृजत) गायोंको मुक्त कर चुका।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। इन्द्रावरुणौ। जगती। (ऋ० ७।८३।१)

युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः।

दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतं ॥ २०३ ॥

हे (नरा इन्द्रावरुणा) नेता बने हुए इन्द्र और वरुण! (पृथुपर्शवः गव्यन्तः) विशाल कुल्हाडी लेकर गायोंकी इच्छा करनेवाले लोग (युवां आप्यं पश्यमानाः) तुम्हें आप्तकी नजरसे देखते हुए (प्राचा ययुः) पूर्वीय भागमें चले गये (आर्याणि दासा च वृत्रा हतं) आर्यजातिके तथा दासजातिके वृत्रोंको मार डालो (अवसा सुदासं अवतं च) और संरक्षणसे सुदासकी रक्षा करो।

गव्यन्तः ययुः = गायोंकी इच्छा करनेवाले चले गये।

संवरणः प्राजापत्यः । इन्द्रः । जगती । (ऋ. ५।३४।८)

स यज्वनो सुधनो विश्वशर्धसावेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु ।

युजं ह्य१न्य अकृत प्रवेपन्युदीं गव्यं सृजते सत्वाभिर्धुनि ॥ २०४ ॥

(मघवा प्रवेपनी इन्द्रः) ऐश्वर्यसंपन्न और शत्रुओंको प्रकम्पित करनेवाला इन्द्र (यत् सुधनो विश्वशर्धसो) जब अच्छे धनवाले तथा सारी शक्ति लगाकर कार्य करनेवाले (यज्वनो शुभ्रिषु गोषु सं अवेत्) पुरुषोंको अच्छी गायोंको पानेके लिए प्रयत्न करते हुए जानता है तब (अन्य युजं हि अकृत) दूसरे सहायकर्ताको काममें लगा देता है और (धुनिः) शत्रुसेनाको हिला देनेवाला वह (सत्वभिः ईं गव्यं उत्सृजते) बलशाली मरुतोंकी सहायतासे उसे गौओंका झुंड प्रदान करता है।

१ गोषु सं अवेत् = गायोंके लिये युद्ध करनेवालेकी सुरक्षा करता है।

२ सत्वभिः गव्यं उत् सृजते = वह अपने वीरोंसे प्राप्त किया गोधन दानमें दे देता है।

[१०९] पदचिन्होंसे गौओंकी खोज।

बोधा गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप । (ऋ. १।६२।२)

प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम ।

येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥ २०५ ॥

(वः) तुमने (महे शवसानाय) बडी भारी शक्ति प्राप्त हो इसलिए (आङ्गूष्यं साम) आलाप युक्त साम गायनका (नमः) स्तोत्र (प्र भरध्वं) पूर्णतया आलापोंसे भर दीजिए, अर्थात् यथेष्ट गायन कीजिए (येन) जिससे (नः पूर्वे पितरः) हमारे पूर्वकालीन पितर याने (पदज्ञाः अङ्गिरसः) ज्ञानी अंगिरसोंने (अर्चन्तः) पूजा करते समय (गाः अविन्दन्) बहुतसी गायें प्राप्त की।

पद-ज्ञा = पदका अर्थ आवश्यकतानुसार पैरोंकी निशानी देखते देखते गौओंके पता पानेवाले कि चोर किधर गुजरता है, जिस समय चोर गौओंको चुराकर भाग जाता है उस समय चोरके पावोंके चिन्होंको भूमीपर देखकर पहचानते हैं कि वह इसी मार्गसे गया है। अन्तमें उस मार्गसे जाकर उसे पाते हैं और गायोंको प्राप्त करते हैं।

पदज्ञाः गाः अविन्दन् = पावोंके चिन्होंको पहचान कर गायोंको पाते हैं।

[११०] मातृभूमिमें गौओंका निवास।

अथर्वा। भूमिः। त्रिष्टुप्। १ त्र्यवसाना षट्पदा जगती। (अथर्व. १२।१।५)

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।

गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥ २०६ ॥

(पूर्वे पूर्वजनाः) पुराने समयके हमारे पूर्वज (यस्यां विचक्रिरे) जिस भूमिमें पराक्रम करते चुके (यस्यां देवाः) जिस भूमिमें ऊँचे पदपर अधिष्ठित लोगोंने (असुरान् अभि अवर्तयन्) शत्रुओंको जीत लिया था जो (गवां अश्वानां वयसः च विष्ठा) गायों घोडों और पंछियोंको विशेष सुखपूर्वक स्थान देनेवाली है (सा नः पृथिवी) वह हमारी मातृभूमि (भगं वर्चः दधातु) ऐश्वर्य तेज प्रदान करे।

(अथर्व १२।१।९)

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।

सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ २०७ ॥

(यस्यां) जिस भूमिमें (परिचराः) सब ओर जानेवाले परिभ्रमण (आपः) जलकी भाँति (समानीः) समदृष्टि हो (अहोरात्रे) रातदिन (अप्रमादं क्षरन्ति) बिना भूलके संचार करते हैं,

[१०८] गायोंके लिये युद्ध करना ।

सुदीति-पुरुमीळ्हावाङ्गिरसौ तयोर्वान्यतरः । अग्निः । गायत्री । (ऋ० ८।७१।५)

यं त्वं विप्र मेधसातावग्ने हिनोषि धनाय ।

स तवोती गोषु गन्ता ॥ २०० ॥

हे (विप्र अग्ने) ज्ञानी अग्ने ! (त्वं मेधसातौ) तू यज्ञके विभजनमें (यं धनाय हिनोषि) जिसे धनके लिए प्रेरित करते हो (सः) वह (तव ऊती) तेरी रक्षाके कारण (गोषु गन्ता) गायोंके लिये होनवाले युद्धमें जानेवाला होता है अर्थात् उसे गायें मिलती हैं ।

युद्धमें शत्रुका पराजय करके वह गायें प्राप्त करता है ।

अयास्य आङ्गिरसः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।६७।३)

हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।

बृहस्पतिरभिकनिक्रदद्गा उत प्रास्तौद् उच्च विद्वाँ अगायत् ॥ २०१ ॥

(हंसैः इव) हंसतुल्य श्रेणीबद्ध होकर कार्य करनेवाले (वावदद्भिः सखिभिः) खूब बोलने वाले मित्ररूप मरुतोंकी सहायतासे (अश्मन्मयानि नहना) पत्थरसे बनाये हुए बंधनागारोंको (वि अस्यन्) तोडकर फेंकता हुआ बृहस्पति (गाः अभि कनिक्रदत्) गायोंके सामने जाकर आनन्दसे गरजता हुआ (प्र अस्तौत्) प्रकर्षसे स्तुति करचुका (उत विद्वान्) और ज्ञानी वह (उच्च अगायत् च) उच्च स्वरमें गायन करने लगा ।

गाः अभि कनिक्रदत् = गौओंको प्राप्त कर विजयकी गर्जना करने लगा ।

अयास्य आङ्गिरसः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।६७।८)

ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः ।

बृहस्पतिर्मिथो अवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ॥ २०२ ॥

(ते गाः इयानासः) वे मरुत् चुराई हुई गायोंके निकट जाते हुए (सत्येन मनसा) सच्चे अन्तःकरणसे तथा (धीभिः) अपने कर्मोंसे (गोपतिं इषणयन्त) गायोंके अधिपतिको पानेकी इच्छा करने लगे तब बृहस्पति (मिथः अवद्यपेभिः स्वयुग्भिः) परस्परही निन्दनीय राक्षससे बचाव देकर गायोंको रखनेवाले एवं स्वयं ही कार्यमें जुटजानेवाले मरुतोंकी सहायतासे (उस्रियाः उत् असृजत) गायोंको मुक्त कर चुका ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रावरुणौ । जगती । (ऋ० ७।८३।१)

युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः ।

दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतं ॥ २०३ ॥

हे (नरा इन्द्रावरुणा) नेता बने हुए इन्द्र और वरुण ! (पृथुपर्शवः गव्यन्तः) विशाल कुल्हाडी लेकर गायोंकी इच्छा करनेवाले लोग (युवां आप्यं पश्यमानासः) तुम्हें आप्तकी नजरसे देखते हुए (प्राचा ययुः) प्राचीन कालमें चले गये (आर्याणि दासा च वृत्रा हत) आर्यजातिके तथा दासजातिके वृत्रोंको मार डालो (अवसा सुदासं अवतं च) और संरक्षणसे सुदासकी रक्षा करो।

गव्यन्तः ययुः = गायोंकी इच्छा करनेवाले जाते थे ।

मरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ६।२४।४)

शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः संचरणीः ।

वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥ २१२ ॥

हे (पुरुशाक इन्द्र) बहुतसे सामर्थ्योंवाले इन्द्र ! (गवां स्रुतयः इव) गायोंकी गतियों मार्गोंकी तरह (शचीवतः ते शाकाः संचरणीः) शक्तिमान बने हुए तेरे सामर्थ्य हर जगह फैलनेवाले हैं और हे (सुदामन्) अच्छे ढंगसे दान देनेवाले ! (वत्सानां तन्तयः न) बछडोंको बांधनेकी रस्सियाँ जिस प्रकार होती हैं, वैसे ही (ते) तेरे सामर्थ्य (दामन्वन्तः) दूसरोंको बाँधते हुए भी खुद तो (अदामानः) मुक्त बने रहते हैं ।

गवां स्रुतयः = गायोंकी प्राप्तिके मार्ग।

वत्सानां तन्तयः = बछडोंको बांधनेकी रस्सियाँ ।

[११४] गाय बेची न जाय ।

रेभः काश्यपः । इन्द्रः । बृहती । (ऋ. ८।९७।२)

यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।

यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥ २१३ ॥

हे इन्द्र ! (त्वं) तू (यं अव्ययं भागं) जिस न क्षीण होनेवाले हिस्सेको तथा (अश्वं गां) घोडे तथा गायको (दधिषे) धारण करता है (तं) उस संपत्तिको (सुन्वति दक्षिणावति यजमाने धेहि) सोमरस निचोडनेवाले दक्षिणा साथ रखनेवाले यज्ञकर्ताके घरमें रख दो । (पणौ मा) पर कभी व्यापारीके पास न रख देना ।

१ त्वं गां दधिषे = तू गाय अपने पास रखता है ।

२ दक्षिणावति यजमाने धेहि = दक्षिणा देनेवाले यजमानमें धर दे दो ।

३ पणौ मा = किसी बेचनेवालेको गाय न दो । अर्थात् गाय बेची न जाय ।

[११५] गौ पानेवाला इन्द्र ।

सव्य आंगिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ. १।५१।१४)

इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।

अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुरिन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता ॥ २१४॥

(दुर्यः यूपः न) दरवाजेके खंभेकी भाँति (पज्रेषु स्तोमः) अंगिरसके घरमें इन्द्रका स्तोत्र निश्चल है वहींपर वह अटल है वे (निरेके) निर्धन हों तो भी (इन्द्रः) इन्द्रने रक्षाके लिए उन (सुध्यः अश्रायि) बुद्धिमानोंको आश्रय दिया और (अश्व-युः) अश्व (गव्युः) गायें (रथ-युः) रथ और (वसुयुः) धन पानेहारा इन्द्र वहींपर (क्षयति) रहा ।

जिस भाँति दरवाजेके खंभे अटलरूपसे खडे होते हैं ठीक वैसेही आंगिरसोंके कुलमें इन्द्रकी उपासना स्थायी रूपसे चलती आती है इसीलिए कभी वे निर्धन भी हो जायँ तो भी इन्द्रने उन्हें आसरा दे दिया था और अपने साथ घोडे गायें रथ तथा अन्य तरह तरहके धन भी लेकर इन्द्र सदा उनके घरमें आकर रहा और उनके यज्ञकर्मको उसी तरह निभाया ।

पज्र = आंगिरस ऋषि । पज्रा वा आंगिरसाः (शाट्यायनी)

गव्युः क्षयति = गौकी इच्छा करनेवाला यहां निवास करता है ।

(अथो) और भी जो (भूरि-धारा) पर्याप्त मात्रामें (पयः) दूध (दुहां) देती है (सा नः भूमिः) वह हमारी मातृभूमि (वर्चसा उक्षतु) तेजसे हमें सिंचित करे।

(अथर्व १२।१।१)

सा नो भूमिः वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥ १०८ ॥

(सा नः माता भूमिः) वह हमारी मातृभूमि (मे पुत्राय) मुझ पुत्रके लिए (पयः विसृजतां) दूध निर्माण करे।

[१११] गौवें जौका घास पाकर आनंद करते हैं

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा। वासुक्र. सोमः। आस्तारपंक्तिः। (ऋ. १०।२५।१)

मद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम्।

अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणन् गावो न यवसे विवक्षसे ॥ १०९ ॥

(नः मनः) हमारे मनको (उत दक्षं क्रतु) और दक्ष एवं कार्यको (भद्रं अपि वातय) कल्याणके प्रति प्रवृत्त करो (अध) पश्चात् (ते अन्धसः सख्ये) तेरे प्रिय हुए अन्नके कारण पैदा हुई मित्रतामें (वः वि मदे) आपके विशेष आनन्दमें (गावः यवसे न) गौएं तृणसंभारमें जैसे आनन्दपूर्वक विहार करती हैं वैसे ही हम (रणन्) रममाण हों क्योंकि तू (विवक्षसे) बडा है।

गावः यवसे रणन् = गौवें जौके घासको पाकर आनंदित होती हैं।

[११२] गायोंकी खोजका मार्ग।

गर्गो भारद्वाजः। देव-भूमि-बृहस्पतीन्द्राः। त्रिष्टुप्। (ऋ. ६।४७।२०)

अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत्।

बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम् ॥ ११० ॥

हे देवो! हम (अगव्यूति क्षेत्रं आ अगन्म) ऐसे क्षेत्रमें आ पहुंचे हैं कि जहांपर गायोंके चरनेकी जगह नहीं है और (भूमिः उर्वी सती) जमीन विस्तृत होनेपर भी (अंहूरणा अभूत्) पापी लोगोंका मनोरंजन करनेवाली हुई है इसलिए हे बृहस्पते! हे इन्द्र! (इत्था जरित्रे सते) इस ढंगसे प्रशंसा करनेवालेके लिए (गविष्टौ) गायोंका अन्वेषण करनेमें (पन्थां प्र चिकित्स) हमें मार्गका अवश्य ज्ञान करा दे।

१ अगव्यूति क्षेत्रं आ अगन्म = जहां गायोंके लिये चरनेकी जगह रखी नहीं है ऐसे बुरे देशमें हम आगये हैं। अर्थात् सब खेतोंमें गायोंके लिये गोचर भूमि अलग रखनी चाहिये। जहां ऐसी गोचरभूमि नहीं होती वह देश बहुत ही बुरा अवश्य समझना चाहिये।

[११३] गायोंकी खोजके लिये धन।

विरूप आंगिरसः। अग्निः। गायत्री। (ऋ. ८।७५।११)

कुविसु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम्।

उरुकृत् उरुणस्कृधि ॥ १११ ॥

(नः गविष्टये) हमारी गायोंकी खोज ठीक प्रकार हो जाए इसलिए हे अग्ने! (कुवित् रयिं) बहुतसी सम्पदा (सं वेविषः) हमारे निकट भेज दे और तू (उरुकृत्) विशालताका बनानेवाला है इसलिए (नः उरु कृधि) हमें विशाल प्रख्यातिका धनी बना दे।

गविष्टये रयिं सं वेविषः = गौओंकी खोजके लिये धन इकट्ठा करके रख दो।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ६।२४।४)

शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः संचरणीः ।

वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥ २१२ ॥

हे (पुरुशाक इन्द्र) बहुतसे सामर्थ्योंवाले इन्द्र! (गवां स्रुतयः इव) गायोंकी गतियों, मार्गोंकी तरह (शचीवतः ते शाकाः संचरणीः) शक्तिमान बने हुए तेरे सामर्थ्य हर जगह फैलनेवाले हैं और हे (सुदामन्) अच्छे ढंगसे दान देनेवाले! (वत्सानां तन्तयः न) बछडोंको बांधनेकी रस्सियाँ जिस प्रकार होती हैं, वैसे ही (ते) तेरे सामर्थ्य (दामन्वन्तः) दूसरोंको बांधते हुए भी स्वयं तो (अदामानः) मुक्त बने रहते हैं।

गवां स्रुतयः = गायोंकी प्राप्तिके मार्ग।

वत्सानां तन्तयः = बछडोंको बांधनेकी रस्सियाँ।

[११४] गाय वैरी न जाय।

रेभः काश्यपः । इन्द्रः । बृहती । (ऋ. ८।९७।२)

यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।

यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥ २१३ ॥

हे इन्द्र! (त्वं) तू (यं अव्ययं भागं) जिस न क्षीण होनेवाले हिस्सेको तथा (अश्वं गां) घोडे तथा गायको (दधिषे) धारण करता है, (तं) उस संपत्तिको (सुन्वति दक्षिणावति यजमाने धेहि) सोमरस निचोडनेवाले दक्षिणा साथ रखनेवाले यज्ञकर्ताके घरमें रख दो। (पणौ मा) पर कभी व्यापारीके पास न रख देना।

१ त्वं गां दधिषे = तू गाय अपने पास रखता है।

२ दक्षिणावति यजमाने धेहि = दक्षिणा देनेवाले यजमानके यहां दे दो।

३ पणौ मा = किसी बनियेवालेको गाय न दो। अर्थात् गाय वैरी न जाय।

[११५] गौ पानेवाला इन्द्र।

सव्य आंगिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ. १।५१।१४)

इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।

अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुरिन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता ॥ २१४ ॥

(दुर्यः यूपः न) दरवाजेके खंभेकी भांति (पज्रेषु स्तोमः) अंगिरसके यज्ञमें इन्द्रका स्तोत्र निश्चय है यहींपर यह अटल है ये (निरेके) निर्धन हों तो भी (इन्द्रः) इन्द्रने रक्षाके लिए उन (सुध्यः अश्रायि) बुद्धिमानोंको आश्रय दिया और (अश्व युः) अश्व (गव्युः) गायें (रथ-युः) रथ और (वसुयुः) धन पानेहारा इन्द्र यहींपर (क्षयति) रहा।

जिस भांति दरवाजोंके खंभे अटलरूपसे खडे होते हैं ठीक वैसेही आंगिरसोंके कुलमें इन्द्रकी उपासना स्थायी रूपसे चलती आती है इसीलिए कभी वे निर्धन भी हो जायँ तो भी इन्द्रने उन्हें आसरा दे दिया था, और उनके साथ घोडे गायें रथ तथा अन्य तरह तरहके धन भी लेकर इन्द्र सदा उनके घरमें आकर रहा और उनके यज्ञकर्मको पूरी तरह निभाया।

पज्र = आंगिरस ऋषि। पज्रा वा आंगिरसः (शाङ्खायनी)

गव्युः क्षयति = गौकी इच्छा करनेवाला यहां निवास करता है।

[११६] गायोंको न रोकना और उनको प्राप्त करना ।

विश्वमना वैयश्वः । इन्द्रः । उष्णिक् । (ऋ. ८।२४।२०)

अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः ।

घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २१५ ॥

(अ-गो-रुधाय) गायोंको न रोकनेवाले (गविषे) गायोंको चाहनेवाले (द्यु-क्षाय) द्युलोकमें निवास करनेवालेके लिए (दस्म्यं वचः) अत्यन्त सुंदर भाषण जो कि (मधुनः घृतात् च स्वादीयः) मधु एवं घृतसे बढकर मधुरिमामय है (वोचत) बोलो ।

अ-गो-रुधाय गविषे मधुनः घृतात् च स्वादीयः वचः वोचत = गायोंकी प्रगतिमें बाधा न डालनेवाले गायें चाहनेवालेके साथ शहद और घीसे भी अधिक मधुर भाषण करो । उसकी प्रशंसा करो ।

[११७] उषःकालमें आनेवाली गायें ।

बुधगविष्ठिरावात्रेयौ । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ५।१।१)

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।

यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥ २१६ ॥

(जनानां समिधा) जनताकी समिधासे (आयतीं उषासं प्रति) आनेवाली उषाके प्रति अर्थात् प्रातःकाल बहुत शस्त् जो उषा (धेनुं इव) आनेवाली गायके तुल्य प्रतीत होती थी, उसके समीप (अग्निः अबोधि) अग्नि जागृत हो चुका है अर्थात् ठीक प्रकार धधकने लगा है । (भानवः) इसके तेजस्वी किरण (यह्वाः) बडे भारी होते हुए (वयां उज्जिहानाः इव) मानो शाखासे ऊपरकी ओर उठते हुए से (नाकं अच्छ) आकाशकी तरफ (प्र सिस्रते) बराबर फैलते जाते हैं ।

उषासं आयतीं धेनु = उषाकालमें आनेवाली गौ ।

नोधा गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ. १।६२।५)

गृणानो अंगिरोभिर्दस्म विवरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः ।

वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः ॥ २१७ ॥

हे (दस्म) दर्शनीय वीर ! (अंगिरोभिः गृणानः) तू अपि अंगिरसोंद्वारा प्रशंसित होता हुआ (उषसा सूर्येण) उषःकालीन सूर्यके साथ आनेवाली (गोभिः) गौओंसे (अन्धः वि वः) अंधेरा विनष्ट कर चुका है (भूम्याः सानु) भूमिपर पाये जानेवाले ऊंचे व्यापक स्थान (वि अप्रथयः) समतल और विस्तीर्ण बना रखे और (दिवः रजः) द्युलोकके रजःकण (उपरं अस्तभायः) ऊपरके ऊपरही रोक चुका है ।

उषःकालमें जैसे जैसे प्रकाश ऊपर आने लगा वैसे वैसे गौएं भी चरागाहमें आने लगीं । गौओंके आते ही अंधेरा दूर हुआ ।

उषःकालका आरंभ होते ही व्रजभूमिमें गायें आने लगती हैं और तुरन्त ही अंधियारी हटने लगती है इसलिए कविने यह दृश्य देखकर कि एक ही समय व्रजस्थानमें गौओंकी संचार होने लगता है और अंधेरा भी हटने लगता है दोनोंका परस्पर संबंध यों बतलाया है ।

या हम ऐसा मान सकते हैं कि गो शब्दसे सूर्य किरण सूचित हुआ हो अर्थात् उषःकालका प्रारंभ होना सूर्यकिरणोंका प्रकट होना और अंधेरेका हटजाना सभी क्रियाएँ जैसे हुआ करती हैं वैसे ही वर्णन किया हुआ ठीक जचता है ।

गोभिः अन्धः वि वः = गौओंसे अन्धेरा दूर हुआ । अर्थात् जब गौएं बाहर आ गयीं तब अन्धेरा दूर हुआ । सबेरे गौएं बाहर आती हैं, तब सूर्य प्रकाशता है और अन्धेरा दूर होता है ।

[११८] लाल रंगवाली गौओंसे युक्त उषा।

सत्यश्रवा आत्रेयः। उषाः। त्रिष्टुप्। (ऋ. ५।८०।२)

एषा गोभिररुणेभिर्युजानाऽस्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे।

पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति॥ ३१८॥

(अरुणेभिः गोभिः) लाल रंगकी गायोंसे (युजाना) युक्त हुई (एषा अस्रेधन्ती) यह उषा क्षीण न होती हुई (रयिं अप्रायु चक्रे) धनको स्थायी बना चुकी है (सुविताय) भलाईके लिए (पुरुष्टुता विश्ववारा देवी) बहुतोंसे प्रशंसित सबसे स्वीकार करने योग्य चोतमान उषा (पथः रदन्ती वि भाति) मार्गोंको सुस्पष्ट करती हुई विशेषतया जगमगा उठती है।

अरुणेभिः गोभिः युजाना (उषा) देवी= लाल रंगवाली गौओंके साथ आनेवाली उषा। यहां भी गौवें सूर्य किरणें हैं।

[११९] नौ गौवें पालनेवाले।

सदापृण आत्रेयः। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप् (ऋ. ५।४५।११)

धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षां ययातरन्दश मासो नवग्वाः।

अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्यामात्यंहः॥ ३१९॥

(नवग्वाः) नौ गायें साथ रखनेवाले याजक (यया) जिसकी सहायतासे (दश मासो अतरन्) दस महीने बिता चुके, उस (व धियं) तुम्हारी बुद्धिको जो कि (स्वर्षां) सब कुछ देनेहारी है (अप्सु दधिषे) कर्मोंमें धारण करता हूं (अया धिया) इस बुद्धिसे (देवगोपा स्याम) हम देवोंसे रक्षित बनें और (अया धिया) इसी बुद्धिसे (अंहः अति तुतुर्याम) पापका पार कर हम आगे बढें।

नवग्वाः दशमासा अतरन्= नौ गायें साथ रखनेवाले दस मास तक यज्ञ करते रहे।

[१२०] गोमाता।

श्यावाश्व आत्रेयः। मरुतः। बृहती (ऋ. ५।५२।१६)

प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम्।

अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः॥ ३२०॥

(ये सूरयः) जिन विद्वान् मरुतोंने (मे बन्ध्वेषे) मेरे संबंधियोंके विषयमें प्रश्न पूछनेपर (पृश्निं गां) नाना रंगोंवाली गायको (मातरं प्रवोचन्त) अपनी माता बतला दिया (अधा) और (शिक्वसः) बलवान मरुतोंने (इष्मिणं रुद्रं) अन्नवाले रुद्रको (पितरं वोचन्त) पिताके स्वरूपमें वर्णित किया।

पृश्निं गां मातरं प्रवोचन्त= गौको माता कहा।

बिन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः। मरुतः। गायत्री (ऋ. ८।९४।१)

गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम्। युक्ता वह्नी रथानाम्॥ ३२१॥

(मरुतां माता गौः) और मरुतोंकी माता गाय (मघोनां श्रवस्युः) ऐश्वर्य तथा अन्न पानकी इच्छा करती हुई (रथानां युक्ता) रथोंमें युक्त होती हुई (वह्निः) और उन्हें ढोनेवाली होकर (धयति) दूध पिलाती है।

माता गौः धयति= गो माता दूध पिलाती है।

गोतमो राहूगणः । मरुतः । जगती । (ऋ० १।८५।३)

गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ॥ २२२ ॥

(शुभ्राः गोमातरः) तेजस्वी और गायको माता माननेवाले (यत्) जब (अञ्जिभिः शुभयन्ते) अलंकारोंसे सुहाते हैं तब वे (तनूषु विरुक्मतः दधिरे) अपने शरीरोंपर विशेष तेजस्वी हार पहने धारण करते हैं (वे विश्वं अभिमातिनं) वे सभी शत्रुओंको (अप बाधन्ते) रोक देते हैं, इसलिए (एषां वर्त्मानि) इनके मार्गोंपर (घृतं अनु रीयते) घृत सदृश पौष्टिक अन्न पर्याप्त मात्रामें प्राप्त होता है ।

जो वीर गौको मातातुल्य मानते हैं उन्हें हर स्थानपर अन्नादि भी मिलता है ।

कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री । (ऋ० १।३८।४)

यद्यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन । स्तोता वो अमृतः स्यात् ॥ २२३ ॥

(हे पृश्निमातरः) वीरो ! जो तुम गौको मातावत् मानते हो (यत् यूयं मर्तासः स्यातन) यद्यपि तुम मर्त्य हो, तोभी (वः स्तोता) तुम्हारे संबंधमें काव्यका गायन करनेवाला मनुष्य (अमृतः स्यात्) असंशय अमर होगा ।

गोमाताकी सेवा करनेवाले वीर तो मरणधर्मा होते हैं लेकिन उनकी वीर गाथाओंका गायन करनेवाले मानव अमरपन पानेमें सफल बनेंगे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । पृश्नि-मातरः= गायको माता माननेवाले वीर ।

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । जगती । (ऋ० ५।५९।६)

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः ।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥ २२४ ॥

(ते उद्भिदः) वे शत्रुओंको तोडकर ऊपर उठनेवाले वीर (अकनिष्ठासः अज्येष्ठासः अमध्यमासः) ऐसे हैं कि उनमें कोई भी नीचा ऊंचा या मंझला नहीं है और (महसा) वे अपने तेजसे (वि वावृधुः) विशेषतया बढते हैं (जनुषा सुजातासः) जन्मसे उच्च परिवारमें उत्पन्न वे (पृश्निमातरः मर्याः) गौको माता समझनेवाले और मानवों के हितार्थ प्रयत्न करनेवाले हैं (दिवः) द्युलोकसे (नः अच्छ) हमारे प्रति (आ जिगातन) आ जाओ ।

(ऋ० ५।६०।५)

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥ २२५ ॥

(अज्येष्ठासः) जिनमें कोई उच्च पदाधिष्ठित नहीं और (अकनिष्ठासः) जिनमें कोई निम्नश्रेणीका नहीं एवं (एते भ्रातरः) ये वीर मरुत् भाई भाई के नाते (सौभगाय सं वावृधुः) अच्छे ऐश्वर्यको पानेके लिए मिलजुलकर वृद्धिको प्राप्त करते हैं (एषां पिता) इनका पिता (युवा स्वपाः रुद्रः) युवक अच्छे कार्य करनेवाला महावीर है और (सुदुघा पृश्निः) सुगमतापूर्वक दोहन जिसका हो ऐसी गौ (मरुद्भ्यः सुदिना) मरुतोंके लिए अच्छे दिन दर्शाये ।

पृश्नि मातरः सुदुघा पृश्निः= गौ वीरोंकी माता है ।

मेधातिथिः काण्वः । विश्वेदेवाः गायत्री । (ऋ० १।२३।१०)

विश्वान्देवान्हवामहे मरुतः सोमपीतये । उग्रा हि पृश्निमातरः ॥ ३२६ ॥

(पृश्निमातरः मरुतः) गौको माताके समान आदरकी निगाहसे देखनेवाले वीर मरुत् (उग्रा हि) सचमुच बडे ही शूर हैं । उन्हें और (विश्वान् देवान्) सभी देवोंको (सोमपीतये) सोमरस पीनेके लिए (हवामहे) हम बुला रहे हैं ।

(पृश्नि-मातरः) गौको मातृतुल्य सम्मान करनेवाले वीर बडे सामर्थ्यवान होते हैं ।

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री । (ऋ० ८।७।३, १०)

उदीरयन्त वायुभिर्वाश्रासः पृश्निमातरः । धुक्षन्त पिप्युषीमिषम् ॥ ३२७ ॥

उदु स्वानेभिरीरत उद्रथैरुदु वायुभिः । उत् स्तोमैः पृश्निमातरः ॥ ३२८ ॥

(पृश्नि मातरः) जिनकी माता गौ है ऐसे ये (वाश्रासः) गर्जना करनेवाले और (पिप्युषीं इषं धुक्षन्त) पुष्टिकारक अन्नको वृद्धिगत करते हुए वीर (वायुभिः उत् ईरयन्त) वायुओंसे ऊपर चढते रहते हैं ।

(पृश्नि-मातरः) गायको मातृवत् आदरकी निगाहसे देखनेवाले वीर (स्तोमैः) स्तोत्रोंसे (रथैः वायुभिः) रथोंसे, वायुओंसे (स्वानेभिः उत् ईरते) गर्जनाओंसे ऊपर चढ जाते हैं ।

पृश्निमातरः= गायको माता माननेवाले वीर ।

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ० ५।५८।५)

अराइवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः ।

पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः ॥ ३२९ ॥

(अकवाः) बहुत संख्यावाले वीर मरुत् (अराः इव अचरमाः इव) रथके अरोंके समान एकरूप होते हुए ही (अहा इव) दिनोंके तुल्य (महोभिः प्र प्रजायन्ते) अपने तेजसे अत्यधिक बढते हैं, (पृश्नेः पुत्राः उपमासः) वे गौको माता माननेहारे अग्रिम स्थितिमें रहते हुए (रभिष्ठाः) अत्यन्त वेगवान् वीर मरुत (स्वया मत्या) अपनी ही बुद्धिसे (सं मिमिक्षुः) भली भाँति पर्याप्त छिडकाव करते हैं ।

पृश्नेः पुत्राः= गोमाताके पुत्र ये वीर हैं ।

सोभरिः काण्वः । मरुतः । ककुप् । (ऋ० ८।२०।२१)

गावश्चिद् घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।

रिहते ककुभो मिथः ॥ ३३० ॥

(गावः चित् घ) गौएं भी (समन्यवः) समान उत्साहवाली होती हुई (सजात्येन) समान जातिके होनेके कारण (सबन्धवः मरुतः) समान बन्धुत्व के नाते वीर मरुत् (मिथः ककुभः रिहते) परस्पर एक दूसरेको चाहते हैं प्रेम करते हैं ।

गावः सजात्येन सबन्धवः= गौको माता माननेके कारण ये सब वीर आपसमें भाई कहलाते हैं ।

सूनुरार्भवः । ऋभवः । अनुष्टुप् । (ऋ० १० । १७६ । १)

प्र सूनव ऋभूणां बृहन्नवन्त वृजना ।

क्षामा ये विश्वधायसोऽश्नन्धेनुं न मातरम् ॥ २२१ ॥

(ये विश्वधायसः) जो विश्वका धारण करनेवाले होते हुए (मातरं धेनुं न) माता गायके तुल्य (क्षाम अश्नन्) पृथ्वीको प्राप्त हुए, वे (ऋभूणां सूनवः) ऋभुओंके पुत्र (बृहत् वृजना) बडे भारी युद्धको (प्र नवन्त) प्रकर्षसे चले गये ।

मातरं धेनुं= गौको माता माननेवाले ।

[१२१] उत्तम वीर सतान देनेहारी गाय ।

कण्वो घौरः । ब्रह्मणस्पतिः । सतोबृहती । (ऋ० १ । ४० । ४)

यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः ।

तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ २२२ ॥

(यः) जो (वाघते) याजकको (सु-नरं वसु ददाति) मानवोंके लिए उपयोगी धन देता है, (सः) वह (अक्षितिश्रवः) कभी विनष्ट न होनेवाला यश (धत्ते) पाता है (तस्मै) उसके हित के लिए (सुवीरां सुप्रतूर्तिं) उत्तम वीर देनेहारी त्वरापूर्वक शत्रुको गिरादेनेहारी तथा (अनेहसं) निष्पाप (इळां) गायको लक्ष्यमें रखकर (आ यजामहे) हम यजन करते हैं ।

गायरूपी माताके सत्कारसे अच्छी वीर सन्तान पैदा होती है और शत्रुका पतन करनेकी शक्ति मिलती है। पापकी ओर प्रवृत्तिभी दूर होती है [इळा का अर्थ गौ मातृभूमि तथा वाणी भाषा भी होता है]

[१२२] उत्तम माता गायके समान है ।

ब्रह्मा । चन्द्रमा, योनिः । द्यावापृथिवी । अनुष्टुप् । (अथर्व० ३।२३।४)

यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति च ।

तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव ॥ २२३ ॥

(यानि च भद्राणि बीजानि ऋषभाः जनयन्ति) और जिन कल्याणकारक बीजोंको ऋषभक वनस्पतियाँ पैदा करती हैं (तैः त्वं पुत्रं विन्दस्व) उन बीजोंसे तू पुत्रको प्राप्त कर (सा प्रसूः धेनुका भव) ऐसी प्रसूत होनेवाली तू गायके समान उत्तम माता बन ।

सा प्रसूः धेनुका= वह प्रसूत होनेवाली माता धेनु-गौ के समान है । माताको यहां गायकी उपमा दी है ।

[१२३] गायको बहिन माननेवाले वीर ।

सोभरिः काण्वः । मरुतः । सतो बृहती । (ऋ० ८।२०।८)

गोभिर्वाणो अज्यते सोभरीणां रथे कोशे हिरण्यये ।

गोबन्धवः सुजातास इषे भुजे महान्तो नः स्परसे नु ॥ २२४ ॥

(सोभरीणां हिरण्यये रथे कोशे) ऋषि सोभरियोंके सुवर्णमय रथपर आसनपर (वाणः गोभिः अज्यते) वाणनामक बाजा गायोंके साथ बजाया जाता है । (सुजातासः) उत्कृष्ट परिवारमें उत्पन्न (गोबन्धवः) गायही जिनकी बहन जैसी है ऐसे (महान्तः) बडे वीर मरुत् (नः इषे भुजे स्परसे नु) हमारे अन्न भोग एवं स्फूर्तिके लिए शीघ्र चेष्टा करें ।

गोबन्धव:= गायको बहिन माननेवाले वीर ।

[१२४] शक्तिसे गायोंको पास सुरक्षित रखनेवाला वीर

इरिम्बिठिः काण्वः। इन्द्रः। गायत्री। (ऋ० ८।१७।१२)

शाचिगो शाचिपूजनाऽयं रणाय ते सुतः। आखण्डल प्र हूयसे ॥ ३३५ ॥

हे (शाचिगो) समर्थ गायोंसे युक्त एवं (शाचिपूजन) शक्तिकी पूजा करनेवाले (आखण्डल) शत्रुभेदक इन्द्र ! (रणाय) रमणके लिए या युद्धके लिए (अयं ते सुतः) यह तेरे लिए सोम निचोड़ा हुआ है इसे पीनेके लिए (प्र हूयसे) खूब आग्रहपूर्वक तू बुलाया जाता है।

शाचि-गाः= शक्तिसे गौको अपनेपास रखनेवाला वीर।

[१२५] गौको न बेचो

हिरण्यस्तूप आंगिरस। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।३३।३)

नि सर्वसेन इषुधीँरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि।

चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥ ३३६ ॥

(सर्वसेनः) समूची सेनाके साथ इन्द्रने (इषुधीन्) बाण रखनेके तूणीर पीठपर (नि असक्त) भली भाँति बाँध लिये। (अर्यः) श्रेष्ठ इन्द्र (यस्य गाः वष्टि सं अजति) जिसे गौओंका दान करना चाहता है उसे भलीप्रकार पहुँचा देता है। (प्रवृद्ध) हे महान् इन्द्र ! (भूरि वामं चोष्कूयमाणः) बहु गौओंका भारी दान देनेवाला तू (अस्मत् अधि) हममें (पणिः मा भूः) व्यापारी न बन।

राजाको उचित है कि वह अपनी सारी सेना साथ लेके शस्त्रास्त्र सुसज्जित करे। गाय चुरानेवाले शत्रुका पराभव करके वे गौएँ जिसकी हों उसके अधिकार उन्हें पहुँचा दे। इस कार्यके लिए कुछ भी मूल्य न माँगा जाय अर्थात् गायोंका क्रय नहीं करना चाहिए। हमारे समाजमें गौओंका व्यापार करनेवाले न हों।

अस्मत्-अधि पणिः मा भूः= हमारे यहाँ गौका व्यापार क्रय विक्रय करनेवाला न बन।

[१२६] गौओंकी खोज करके गौएँ पाना।

नोधा गौतमः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।६२।२)

प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम।

येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥ ३३७ ॥

(महे शवसानाय) बड़ी भारी शक्ति मिले इसलिए (नः पूर्वे पितरः) हमारे पहलेके पितर (पदज्ञाः अंगिरसः) पैरोंकी निशानीसे गौओंको ठौर ढूँढनेवाले अंगिरस (येन वः अर्चन्तः) जिससे तुम्हारी पूजा करते हुए (गाः अविन्दन्) गौएँ पाचुके थे वही (महि आंगूष्यं साम) बड़ी भारी घोषणा करके भावपूर्वक साथ गाने योग्य सामका (नमः) गायन (प्र भरध्वं) पूर्ण भावमें उपस्थित करो यथेष्ट साम गायन करो।

(पदज्ञाः गाः अविन्दन्) चोरोंसे अपहृत गौओंका और गौओंके पैरोंके चिह्न देखते हुए, ढूँढ निकालनेवाले गौओंका स्थान जानलेते हैं और गायें पालेते हैं।

मेध्यः काण्वः। अश्विनौ। त्रिष्टुप् (ऋ० ८।५०।३)

पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः।

सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत्ताँ उप याता पिबध्यै ॥ ३३८ ॥

हे अश्विनौ ! (वां तत् कृतं पनाय्यं) तुम्हारा वह कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय है (दिवः वृषभः) जो द्युलोकका वर्षण करनेवाला है (रजसः पृथिव्याः) अन्तरिक्ष एवं भूलोकमें भी वही वर्षा करता

हैं (उत ये गविष्टौ) और जो गायोंके ढूंढनेमें (सहस्रं शंसा) हजारों प्रशंसनीय कार्य करनेवाले हैं (तान् सर्वान् इत्) उन सभीके समीप (पिबध्यै उपयात) सोमपानार्थ चले जाओ।

गविष्टौ सहस्र शंसा= गायोंको शत्रुके पाससे ढूंढ निकालनेमें जो सहस्रों प्रकारके प्रशंसाके योग्य कार्य करते हैं वे पूजनीय होते हैं।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ७।२३।३)

युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः।

वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वा इन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥ २३९ ॥

(गवेषणं रथं) गायोंको ढूंढनेवाले रथको (हरिभ्यां युजे) घोडोंसे युक्त करता हूं (जुजुषाणं) सेव्यमान इन्द्र के (ब्रह्माणि उप अस्थुः) समीप स्तोत्र रखे हैं, (स्यः इन्द्रः) यह इन्द्र (महित्वा रोदसी वि बाधिष्ट) अपने महत्त्वसे द्युलोक और भूलोकको पूर्णतया बाधा दे चुका (अप्रति वृत्राणि जघन्वान्) अद्वितीय वृत्रोंका वध कर चुका।

इन्द्रका रथ गवेषणः रथः गायोंकी खोज करनेवाला है। अर्थात् चोरोंका पता लगाकर उनसे चौर्य प्रश्न करता है। यह कार्य इन्द्र ही करता है परंतु यहां इन्द्रके रथको ही अलंकारसे गायोंकी खोज करनेवाला कहा है।

वसुक्र ऐन्द्रः। इन्द्रः। जगती (ऋ० १०।२८।१)

प्र मे नमी साप्य इषे भुजे भूद् गवामेषे सख्या कृणुत द्विता।

दिद्युं यदस्य समिथेषु मंहयमादिदेनं शंस्यमुक्थ्यं करम् ॥ २४० ॥

(मे नमी) मेरा नम्र स्तोता (साप्यः) सबके आश्रयणीय (इषे भुजे प्र भूत्) अन्न एवं भोगके लिए समर्थ बने (सख्या गवां एषे) मित्रता एवं गायोंको ढूंढनेके कार्यमें (द्विता कृणुत) दोनों प्रकारके कार्यके लिए अपनाता बनाओ; (यत् अस्य दिद्युं) जब इसके चोतमान हथियारको (समिथेषु मंहयं) युद्धोंमें तेजस्वी बनाचुका (आत् इत्) तभी (एनं शंस्यं उक्थ्यं करं) इसे मैंने प्रशंसनीय स्तवनीय बनादिया।

गवां एषे कृणुत= गौओंकी खोज करके उनको प्राप्त करनेमें प्रयत्न करो।

[१२७] गौओंके लिए युद्ध।

प्रस्कण्वो काण्वः। अग्निः। सतो बृहती। (ऋ० १।३६।८)

घ्नन्तो वृत्रमतरन् रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे।

भुवत्कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ॥ २४१ ॥

हे अग्ने ! (घ्नन्तः) प्रहार करनेवाले देवोंने (वृत्रं अतरन्) वृत्रको मारडाला और पश्चात् (रोदसी अपः) द्युलोक, भूलोक एवं अन्तरिक्ष हमारे (क्षयाय) रहनेके लिए (उरु चक्रिरे) विस्तृत कर दिये और तू (कण्वे) ऋषि कण्वोंके आश्रममें (वृषा द्युम्नी आहुतः) बलिष्ठ तेजस्वी तथा हवि प्रदानसे तृप्त होकर जिस प्रकार (गोऽविष्टिषु अश्वः) गौओंके कारण होनेवाले युद्धमें घोडा (क्रन्दत्) हिन हिनाता है उसी प्रकार (भुवत्) बडा हुआ।

गविष्टि का अर्थ है गौ पानेकी लालसा और यही युद्धका नाम है क्योंकि आर्य गायोंके लिए युद्ध छेडते रहते थे। गौएं शत्रुओंके अधीन न रहने पायें अपि तु सदैव हमारे अधीन रहें इसी ही लालसासे गौएं विचरते ऐसे इसलिए लडाइयाँ हुआ करतीं अर्थात् गौओंकी प्राप्ति लडाइयोंका प्रमुख कारण था। इतना वह बलित युद्धमें गौओंका महत्त्व था।

विकुम्य आंगिरस । अग्निः । गायत्री (ऋ० ८।७५।७)

कमु ष्विदस्य सेनयाऽग्नेरपाकचक्षसः । पणिं गोषु स्तरामहे ॥ १४२ ॥

(अस्य अपाक चक्षसः अग्नेः) इस अपार हवियाले अग्निकी (सेनया) सेनाकी सहायता पाकर म (कं पणिं स्वित्) भला किस पणि नामक असुरको (गोषु स्तरामहे) गायोंके निमित्त युद्धमें काट दें पराास्त करें ?

पणिं गोषु स्तरामहे= पणिनामक असुरसे गायें पानेके लिये हम उसका पराभव करें और उससे गायोंको प्त करें।

मुद्गलो भार्म्यश्वः । द्रुघण इन्द्रो वा । त्रिष्टुप् (ऋ० १०।१०२।२)

उत्स्म वातो वहति वासो अस्या अधिरथं यदजयत् सहस्रम् ।

रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे कृतं व्यचेदिन्द्रसेना ॥ १४३ ॥

(यत् अधिरथं) जो रथपर चढकर (सहस्रं अजयत्) सहस्रोंकी संख्यामें गौओंको प्राप्त किया था शत्रुओंको जीत लिया था तब (अस्याः वासः) इस महिलाका कपडा (वातः उत् वहति स्म) पवन ऊपर बढा देता था, (गविष्टौ) गायोंके ढूंढनेमें (मुद्गलानी रथीः अभूत्) मुद्गलकी पत्नी रथारूढ होगयी थी पश्चात् (इन्द्रसेना भरे कृतं वि अचेत्) इन्द्रकी सेनाने युद्धमें संपादित किये गोधनको शत्रुओंसे दूर किया ।

गविष्टौ मुद्गलानी रथीः अभूत्= गायोंकी खोज करनेके कार्यमें मुद्गलानी रथपर चढी और खोज करने लगी। श्चात्—

इन्द्रसेना भरे कृतं वि अचेत् = इन्द्रकी सेनाने युद्धमें संपादित गोधनको शत्रुओंसे दूर किया अर्थात् अपने धीन कर लिया ।

मेधातिथी राहूगणः । सोमः । त्रिष्टुप् (ऋ० ९।९१।११)

देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य ।

मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ॥ १४४ ॥

हे (सहसावन्) बलवान (सोम देव) तथा देवतारूपी सोम ! तू (देवेन मनसा) दिव्य बुद्धिसे युक्त होते हुएही (रायः भाग) धनका अंश (नः) हमारे समीप (अभि युध्य) प्रेरित कर हमें दे दो । (त्वा मा आतनत्) तुझे कोईभी शत्रु जर्जर नहीं कर सकता है । (उभयेभ्यः वीर्यस्य) दोनोंही लडनेवाले वीरोंके बलोंकी (ईशिषे) तू अकेलाही स्वामी है (गोऽइष्टौ) गौके लिए होनेवाली लडाइयोंमें एवं युद्धोंमें (वि चिकित्स) हमारी कठिनाइ या कष्ट दूर कर दे हमें विजयी बनाओ ।

गौके कारण छिडनेवाले संग्रामोंमें हम विजयी हों और गौएँ हमें मिलजायँ ।

कुत्स आंगिरसः । अश्विनौ । जगती । (ऋ० १।११२।२२)

याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः ।

याभी रथाँ अवथो याभिरर्वतस्ताभिरु षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १४५ ॥

हे (अश्विना) अश्विनौ ! (याभिः) जिन रक्षण शक्तियोंसे (गोषु-युधं । गोषुयुध । गो-सु-युध-नरं) गौके लिए भली भाँति डटकर लडनेवाले वीरोंको (नृऽसह्ये) समरमें (जिन्वथः) बचाते हो (याभिः क्षेत्रस्य) जिन रक्षण शक्तियोंसे खेतका और (तनयस्य) संतानका (साता) दानके समय

रक्षण करते हो, और (याभिः रथान् अर्वतः) जिनसे रथों एवं घोडोंका (अवथः) रक्षण करते हो (ताभिः ऊतिभिः) उन्हीं संरक्षणक्षम शक्तियोंसे (आगतं) हमारे समीप आओ ।

गो-सु-युध नर नृपको जिन्वथ= गौओंकी प्राप्तिके लिए उत्तम रीतिसे युद्ध करनेवाले नेताको संग्राममें तुम सहायता करते हो ।

विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (ऋ. ३।४७।४)

ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।

ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः ॥ ३४६ ॥

हे (मघवन्) ऐश्वर्यसंपन्न इन्द्र ! (ये त्वा) जो तुझको (अहि-हत्ये) वृत्रको मारते समय (अवर्धन्) हर्षित कर चुके हैं (हरिवः) घोडे साथ रखनेवाले इन्द्र ! (ये शाम्बरे) जो शंबर के साथ किए जानेवाले युद्धमें (ये गो-इष्टौ) जिन्होंने गायोंके लिए की जानेवाली लडाईमें सहायता पहुँचाई थी (ये विप्राः) जो ज्ञानी पुरुष (नूनं त्वा अनुमदन्ति) अब तुझको आनंदित करते हैं उन (मरुद्भिः सगणः) मरुतोंके साथ युक्त होकर तू (सोमं पिब) सोम पीओ ।

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि शत्रुओंसे गायोंको छुडानेके लिए युद्ध छेडनेमें प्राचीन कालमें किसी तरह की आनाकानी नहीं की जाती थी । ये गविष्टौ त्वा अवर्धन् = जो ज्ञानी गौओंकी प्राप्ति करनेके युद्धमें तेरे सहायक बने थे तथा तेरे सामर्थ्यको बढाते थे

अर्चनाना आत्रेयः । मित्रावरुणौ । जगती (ऋ. ५।६३।५)

रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु ।

रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम् ॥ ३४७ ॥

(शूरः न) शूर पुरुषके तुल्य (मरुतः) वीर मरुत् (शुभे) लोककल्याणके लिए (गविष्टिषु) गायोंके लिए किये जानेवाले युद्धोंमें हे मित्र तथा वरुण ! (सुखं रथं युञ्जते) सुखदायक रथको तैयार करते हैं, और (तन्यवः) विस्तारशील बनकर (चित्रा रजांसि वि चरन्ति) विविध लोकोंमें संचार करते हैं (दिवः सम्राजा) द्युलोकके सम्राट् तुम दोनों (नः पयसा उक्षतं) हमें दुग्धसे सिक्त करो । अर्थात् हमें दूध पर्याप्त प्रमाणमें दे दो ।

गविष्टिषु सुखं रथं युञ्जते = गायोंकी खोज करनेके समय सुखदायी रथ सज्ज करता है और गायोंको प्राप्त करता है ।

सुहोत्रो भारद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (ऋ. ६।३१।३)

त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्राऽशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ ।

दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ॥ ३४८ ॥

हे इन्द्र ! (त्वं) तू (अशुषं शुष्णं) न सूखनेवाले पर दूसरोंको सुखानेवालेसे (कुत्सेन अभि युध्य) कुत्सके साथ सामने खडे रहकर लड चुका है और (गविष्टौ) गायोंको पानेके लिए किये जानेवाले युद्धमें (कुयवं दश) कुयवको मार चुका (अध प्रपित्वे) पश्चात् लडाईमें (सूर्यस्य चक्रं मुषायः) सूर्यके चक्रको चुराया और (रपांसि अविवेः) दोष तूने दूर किये ।

गविष्टौ कुयवं दश = गौओंकी प्राप्तिके लिये किये जानेवाले युद्धमें कुयव नामक शत्रुको मार दिया ।

भरद्वाजः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ. ६।३५।२)

कर्हि स्वित्तदिन्द्र यन्नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्नीळयासे जयाजीन्।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ ३४९ ॥

हे इन्द्र ! (तत् कर्हि स्वित्) वह भला कब होगा (यत्) जब तू (नॄन् नृभिः) शस्त्रयुक्त वीरोंको हमारे वीरोंसे (वीरैः वीरान्) वीरोंसे वीरोंको (नीळयासे) संयुक्त करता है, और (आजीन् जय) युद्धोंमें विजयी बनता है, हे इन्द्र ! (अस्मे) हममें (स्वः वत् द्युम्नं) स्वर्गीय तेजसे युक्त धन (धेहि) रखदे क्योंकि तू (गोषु) गायोंके निमित्त होनेवाले युद्धोंमें (त्रिधातु गाः अधि जयासि) दूध, दही और घी धारण करनेवाली गायोंको अधिक मात्रामें जीत लेता है।

गोषु त्रिधातु गाः अधि जयासि = गौओंकी प्राप्ति करनेके युद्धोंमें दूध दही और घी की धारणा करनेवाली गायोंको जीत लेता है। अर्थात् शत्रुको जीतकर गायोंको प्राप्त करता है।

सव्य आङ्गिरसः। इन्द्रः। सतो बृहती। (ऋ. [illegible])

सिन्धूँरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोशमनु ष्वणि।
आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि गृभीता बाह्वोर्गवि ॥ ३५० ॥

(प्रवणे सिन्धून् इव) निम्न स्थलमें नदियोंके समान (आशुया यतः) शीघ्र गतिसे जानेवाले घोडोंको (यदि) अगर तू (क्लोशं अनु स्वनि) भयसे उत्पन्न आवाजके प्रति प्रेरित करता है (ये बाह्वोः गृभीताः) जो घोडे बाहुमूलमें रस्सीसे पकडे हुए (गवि) गायोंकी प्राप्तिके लिए किए जाने वाले युद्धमें (आमिषि वयः न) मांसके टुकडोंके लिए पक्षी जैसे बार बार लौट आते हैं उसी प्रकार (आ वर्वृतति) फिर फिर चल आते हैं।

गवि आवर्वृतति = गौओंको प्राप्त करनेके युद्धमें तू और बारंबार हमले चलाता है।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्राग्नी। त्रिष्टुप् (ऋ. ६।६०।२)

ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नूनमपः स्वरुषसो अग्न ऊळ्हाः।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥ ३५१ ॥

हे इन्द्र और अग्ने ! (नूनं) सचमुच (ता) विख्यात तुम दोनों (ऊळ्हाः) पणियोंके अपहृत (गाः) गौएं, (अपः) जलप्रवाह तथा (स्वः उषसः) सूर्यप्रकाश या उषःकालीन आभाएँ प्राप्त करनेके लिये (अभि योधिष्ट) असुरोंसे लड चुके हो हे इन्द्र ! तू (दिशः) दिशाओंको (चित्राः स्वः उषसः) विचित्र स्वर्गीय आभा उषःकालों तथा (अपः गाः) जलप्रवाह और गोसमुदायसे (युवसे) युक्त करता है हे अग्ने ! (नियुत्वान्) घोडेके साथ रहकर तू भी इसी तरह करता है।

गाः अभि योधिष्ट, गाः युवसे = गौओंकी प्राप्तिके लिये तुमने युद्ध छेड दिया और पश्चात् गौओंको प्राप्त किया।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। इन्द्रः। बृहती। (ऋ. ७।३२।१६)

तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम्।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥ ३५२ ॥

हे इन्द्र ! (अवमं वसु तव) निम्न कोटिका धन तेरा है (मध्यमं त्वं पुष्यसि) मंझली श्रेणीके धनको तू बढाता है (विश्वस्य परमस्य सत्रा राजसि) समूचे उच्च कोटिके धनका सचमुच तू

अधिपति है (गोषु त्वा नकिः वृण्वते) गायोंके पानेके लिए किए जानेवाले युद्धोंमें तुझे कोई भी नहीं हटा सकता है।

गोषु त्वा न किः वृण्वते = गौओंको प्राप्त करनेके युद्धोंमें तेरे लिये कोई रुकावट नहीं कर सकता।

पणयोऽसुराः। सरमा देवता। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।१०८।५)

इमा गावः सरमे या ऐच्छः परि दिवो अन्तान्सुभगे पतन्ती।
कस्त एना अव सृजादयुध्व्युतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा॥ ३५३॥

हे सरमे! (सुभगे) अच्छे भाग्यवाली! तू (दिवः अन्तान् परि पतन्ती) द्युलोकके छोरतक उड़ती हुई (याः ऐच्छः) जिनकी इच्छा कर चुकी थी (इमाः गावः) येही गौएं हैं, (ते कः) तेरा सखा कौन (अयुध्वी) न लड़कर (एनाः अवसृजात्) इन गायोंको हमारे चंगुलसे छुड़ाकर ले चले? (उत अस्माकं आयुधा तिग्मा सन्ति) और हमारे हथियार भी तेज धारावाले हैं।

अस्माकं आयुधा तिग्मा सन्ति = हमारे शस्त्र अतीव तीक्ष्ण हैं अतः—

कः अयुध्वी इमाः गाव अवसृजात्? = कौन भला न लड़ता हुआ इन गौओंको छुड़ाकर ले जाय? अर्थात् कोई नहीं। हमारे शस्त्र तीक्ष्ण हैं और हम युद्ध भी कुशलताके साथ करते हैं। अतः हमारे पास गौएं सुरक्षित रहेंगी। इनको कोई भी नहीं छुड़ा सकेगा।

इन्द्रो मुष्कवान्। इन्द्रः। जगती। (ऋ० १।१३१।५)

अस्मिन्न इन्द्र पृत्सुतौ यशस्वति शिमीवति क्रन्दसि प्राव सातये।
यत्र गोषाता धृषितेषु खादिषु विष्वक् पतन्ति दिद्यवो नृषाह्ये॥ ३५४॥

हे इन्द्र! (अस्मिन् यशस्वति) इस कीर्तिमान् (शिमीवति नः पृत्सुतौ) एवं प्रहारयुक्त हमारे युद्धमें (क्रन्दसि) तू गर्जना करता है (सातये प्र अव) हमें धन मिले इसलिए खूब रक्षा कर (यत्र नृषाह्ये गोषाता) जिस वीरोंके सहनीय एवं गायोंके देनेवाले युद्धमें (धृषितेषु खादिषु) साहसी एवं मार काटके लिए तैयार वीरोंमें (दिद्यवः विष्वक् पतन्ति) द्योतमान हथियार सभी ओरसे आ गिरते हैं।

नृषाह्ये गोषाता दिद्यवः विष्वक् पतन्ति = वीरोंके द्वारा चलाये गौओंको देनेवाले इस युद्धमें तेजस्वी शस्त्र चारों तरह चलाये जा रहे हैं।

पायुर्भारद्वाजः। धनुः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ६।७५।२)

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम॥ ३५५॥

(धन्वना) धनुष्यकी सहायतासे (गाः आजिं जयेम) हम गायों तथा लड़ाईको जीत लेंगे (तीव्राः समदः) प्रबल और उन्मत्त शत्रुसेनाओंको धनुष्यसे ही हम जीत लेंगे (शत्रोः कामं) शत्रुकी इच्छाको (धनुः अप कृणोति) धनुष्य दूर हटाता है (सर्वाः प्रदिशः) सभी दिशाओंको हम धनुष्यकी मददसे जीतेंगे।

धन्वना गाः आजिं जयेम = धनुष्यसे गौओंके लिये चलाये युद्धमें विजय पावेंगे।

सुहोत्रो भारद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।३२।३)

स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन्मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय ।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन् ॥ ३५६ ॥

(पुरुकृत्वा सः) बहुतसे कार्य करनेवाला वह (वह्निभिः ऋक्वभिः) हवि ढोनेवाले स्तोताओंके साथ जो कि (मितज्ञुभिः) घुटने टेककर बैठते हैं (गोषु) गायोंके निमित्त (पुरुकृत्वा जिगाय) अनेक बार शत्रुओंको जीत सका और (पुरोहा) शत्रुनगरियोंका नाश करनेवाला (कविः) ज्ञानदर्शी होते हुए (कविभिः सखिभिः सखीयन् सन्) ज्ञाता मित्रोंसे मित्रता चाहता हुआ (शश्वत्) हमेशा (दृळ्हा पुरः रुरोज) सुदृढ शत्रुनगरियोंको भग्न कर चुका ।

गोषु पुरुकृत्वा जिगाय = गौओंके लिये किये गये अनेक बारके युद्धोंमें इसने विजय पाया है ।

मृगारः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (अथर्व ४।२४।२)

य उग्रीणामुग्रबाहुर्ययुर्यो दानवानां बलमारुरोज ।
येन जिताः सिन्धवो येन गावः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ३५७ ॥

(यः उग्रबाहुः) जो बलवान् वीर (उग्रीणां ययुः) प्रचण्ड वीरोंका भी चालक है और जो (दानवानां बलं आरुरोज) राक्षसोंका बल नष्ट कर चुका है (येन सिन्धवः गावः जिताः) जिसने नदियाँ तथा गौएँ जीत लीं (सः) वह (नः अंहसः मुञ्चतु) हमें पापसे छुडाये ।

येन गावः जिताः = जिसने गौओंको जीतकर प्राप्त किया ।

ब्रह्मा । अध्यात्मं । पराशाक्वरा विराडति जगती । (अथर्व १३।१।२७)

रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति संधनाजिति ।
सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ ३५८ ॥

(वसुजिति गोजिति संधनाजिति) धन गौएं और ऐश्वर्य पानेवाले (रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते) सूर्यके आश्रयसे द्युलोक और भूलोक ठहरे हैं (यस्य सहस्रं सप्त च जनिमानि) जिसके हजार और सात जन्म हैं (भुवनस्य मज्मनि) इस जगतकी महिमामें (अधि ते नाभिं वोचेयं) तेरा ही जन्म है ऐसा मैं कहूंगा ।

गोजिति अधिश्रिते = गौओंको जीतनेवालेके आश्रयसे सब बचा रहते हैं ।

गृत्समदः आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्भार्गवः शौनकः । इन्द्रः । जगती । (ऋ० २।२१।१)

विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते सत्राजिते नृजित उर्वराजिते ।
अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरेन्द्राय सोमं यजताय हर्यतम् ॥ ३५९ ॥

(विश्वजिते) संसारको जीतनेहारे (धनजिते स्वर्जिते) धन एवं आत्मतेजको पानेहारे (सत्राजिते नृजिते) हमेशा विजयी और नेताओंको अपने अधीन रखनेवाले (उर्वराजिते) भूमि जीतनेवाले (अश्वजिते) घोडोंको जीतनेवाले (गोजिते) गायको जीत लानेवाले (अब्जिते) जल पानेवाले (यजताय) पूजनीय (इन्द्राय) इन्द्रके लिए (हर्यतं भर) यह हृदयंगम सोमरस पर्याप्त मात्रामें दे दो ।

गोजिते हर्यतं भर = गौओंको जीत कर लानेवालेके लिये यह हृदयंगम पेय दे दो ।

कुशिक ऐषीरथिः विश्वामित्रो गाथिनो वा । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ३।३१।२)

मिहः पावकाः प्रतता अभूवन्त्स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम् ।

इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षूमक्षू कृणुहि गोजितो न ॥ २६० ॥

हे इन्द्र ! तुमसे (पावकाः मिहः) पवित्रता करनेवाले जलप्रवाह (प्रतताः अभूवन्) सभी जगह फैल गये हैं (आसां) इन जलधाराओंका (स्वस्ति पारं) कल्याणप्रद परला किनारा (नः पिपृहि) हमारे लिए जलसे पूरी तरह भरा हुआ बना दे (रथिरः त्वं) रथपर बैठनेवाला तू (रिषः) शत्रुओंसे (नः पाहि) हमें बचा दे तथा (नः मक्षु मक्षु) हमें शीघ्रही (गो जितः कृणुहि) गायोंको जीत लानेवाले कर दे ।

नः मक्षु मक्षु गोजितः कृणुहि = हमें अविलंब ही गौओंको जीतनेवाले कर दे ।

अथर्वा । देवाः । भुरिक् । (अथर्व ६।९७।३)

ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तं अज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥ २६१ ॥

ग्राम तथा गौका जीतनेवाला वज्रधारी विजयी इन्द्र है वह अपने बलसे शत्रुपर हमला करता है।

बृहद्दिवोऽथर्वा । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (अथर्व ७।३।११)

अर्वाञ्चमिन्द्रं अमुतो हवामहे यो गोजिद् धनजिदश्वजिद् यः ।

इमं नो यज्ञं विहवे शृणोत्वस्माकं अभूः हर्यश्व मेदी ॥ २६२ ॥

(यः गोजित् धनजित्) जो गाय जीतनेवाला और धन जीतनेवाला तथा (अश्वजित्) घोडाको जीतनेवाला है उस (अर्वाञ्चं इन्द्रं अमुतः हवामहे) हमारे पासवाले इन्द्रकी यहाँसे स्तुति करते हैं (नः विहवे इमं यज्ञं शृणोतु) हमारे विशेष स्पर्धामें किये इस यज्ञको सुने हे (हर्यश्व) रस हरणशील किरणवाले देव ! (अस्माकं मेदी अभूः) तू हमारा स्नेही हो ।

गोजित् = गायोंको जीतनेवाला ।

अङ्गिराः (कितवबधकामः) इन्द्रः । अनुष्टुप् । (अथर्व ७।५२।८)

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।

गोजिद् भूयासं अश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ॥ २६३ ॥

(मे दक्षिणे हस्ते कृतं) मेरे दाहिने हाथमें पुरुषार्थ है (मे सव्ये जयः आहितः) मेरे बाँये हाथमें विजय रखा है इसलिए मैं (गोजित् अश्वजित्) गायों तथा घोडोंका विजेता (हिरण्यजित् धनंजयः भूयासं) सुवर्ण तथा धनका विजेता बनूं ।

गोजित् = गौको जीतनेवाला वीर ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ६।२५।४)

त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ ।

त्वां वृत्रेषु इन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन् ॥ २६४ ॥

हे इन्द्र ! (वाजिनेयः वाजी) वाजिनीका पुत्र बलयुक्त होकर (गध्यस्य महः वाजस्य सातौ) सबके प्राप्य बड भारी अन्नका बँटवारा करनेके लिए (त्वां हवते) तुझको बुलाता है (वृत्रेषु) वृत्रोंके संकट आनेपर (त्वां सत्पतिं तरुत्रं) तुझ जैसे सज्जनोंके पालनकर्ता तारनेहारेको पुकारता

है और (मुष्टिहा) मुक्कोंसे शत्रुका वध करनेवाला वीर (गोषु युध्यन्) गायोंको पानेके लिए लडता हुआ (त्वां कये) तुमको ही देख लेता है ।

मुष्टिहा गोषु युध्यन्= मुक्कोंसे शत्रुका वध करनेवाला वीर गौओंके लिए युद्ध करता है ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।६।५)

अध जिह्वा पापतीति प्र वृष्णो गोषुयुधो नाशनिः सृजाना ।
शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरग्नेर्दुर्वर्तुर्भीमो दयते वनानि ॥ ३६५ ॥

(वृष्णः जिह्वा) प्रबल अग्निकी लपट (अध) अब (गोषुयुधः अशनिः न) मानो गौओंके लिये लडनेवाले इन्द्रके हथियार के समान (प्र पापतीति) अत्यन्त इधर उधर गिरती है, (अग्नेः क्षातिः) अग्निकी ज्वाला (शूरस्य प्रसितिः इव) वीर पुरुषकी बाँधनेकी रस्सीकी तरह प्रबल होती है (भीमः दुर्वर्तुः) भयानक तथा दूसरोंसे हटाये जानेमें अशक्य अग्नि (वनानि दयते) जंगलोंको जला देता है ।

गोषु-युधः अशनिः प्रपापतीति= गायोंके लिये लडनेवाले वीरोंके हथियार बिजलीके समान चमकते हुए शत्रुपर गिरते हैं ।

देवातिथिः काण्वः । इन्द्रः । बृहती । (ऋ० ८।४।९)

अश्वी रथी सुरूप इत् गोमान् इत् इन्द्र ते सखा ।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रो याति सभां उप ॥ ३६६ ॥

हे इन्द्र ! (ते सखा) तेरा मित्र (अश्वी रथी) घोडे एवं रथसे युक्त (सुरूपः गोमान् इत्) अच्छे रूपवाला तथा गायोंसे युक्त बनता ही है (श्वात्रभाजा वयसा) धनसे युक्त अन्नसे (सदा सचते) हमेशा युक्त आता है और (चन्द्रः सभां उप याति) आल्हाद देनेवाला सभामें चला जाता है ।

ते सखा गोमान् = इन्द्रका मित्र गायोंसे युक्त होता है । क्योंकि इन्द्र शत्रुका पराभव करके गौओंको छुडाता है और अपने मित्रोंको दे डालता है ।

कुशिक ऐषीरथिः विश्वामित्रो गाथिनो वा । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ३।३१।१०)

सपश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः ।
वि रोदसी अतपद्घोष एषां जाते निःष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥ ३६७ ॥

(स्वं अभि सं पश्यमानाः) अपना भली भाँति निरीक्षण करनेहारे तथा (प्रत्नस्य रेतसः) सनातन वीर्यकी वृद्धिके लिए (पयः दुघानाः) दूध निचोडनेवाले ऋषि (अमदन्) हर्षित हुए; (एषां घोषः) इनका मंत्रघोष (रोदसी वि अतपत्) द्युलोक एवं भूलोकको व्याप्त कर गया (जाते निष्ठां) उत्पन्न हरएक वस्तुमें विद्यमान सत्तापर उन्होंने निष्ठा रखी और (गोषु) गायोंके झुण्डमें संरक्षक की हैसियतसे (वीरान् अदधुः) वीरोंको स्थापित किया ।

अथवा

अपनेको दिखानेवाली और सनातन वीर्यकी वृद्धिके लिए दूध देनेवाली गौएँ प्रसन्न हुईं इन गायोंके रँभानेका शब्द द्यावापृथिवीतक फैल गया । बनी हुई चीजोंपर उन्होंने निष्ठा रख दी और गोरक्षण कार्यपर वीरोंको नियुक्त कर दिया ।

गोषु वीरान् अदधुः = गायोंकी रक्षा करनेके लिये वीरोंको नियुक्त किया गया है ।

[१२८] गौओंके लिए लडनेवाले वीरोंकी कभी निन्दा नहीं होती है ।

विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ३।३९।४)

नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः ।

इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावानुद्गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ॥ ३६८ ॥

(अस्माकं ये पितरः) हमारे जो पूर्वज (गोषु योधाः) गायोंके लिए लड चुके (एषां निन्दिता) उनकी निन्दा करनेवाला इस (मर्त्येषु नकिः) मर्त्यलोकमें कोई भी नहीं है। (माहिनावान्) महत्त्व-युक्त तथा (दंसनावान्) पराक्रमपूर्ण कार्य करनेवाला इन्द्र (एषां दृंहिता) इन गायोंकी वृद्धि करनेवाला है (गो-त्राणि) गायोंके रक्षणके लिए शत्रुओंके बनाये दुर्ग उसने (उत् ससृजे) तोड फेंक दिया ।

अस्माकं पितरः गोषु योधाः । एषां निन्दिता मर्त्येषु न किः । = हमारे प्राचीन पूर्वज गौओंके लिये युद्ध करनेवाले वीर थे । इनकी निन्दा करनेवाला मानवोंमें तो कोई नहीं होगा ।

एषां दृंहिता गोत्राणि उत्ससृजे = इनके सहायक इन्द्रने गौओंको रखनेके लिये बनाये शत्रुके कीले तोड दिये और गौओंको मुक्त किया ।

[१२९] जिसकी गौको पकड लेना असंभव है ऐसा वीर ।

नोधा गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।६१।१)

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।

ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥ ३६९ ॥

(तवसे तुराय) बलिष्ठ एवं त्वरापूर्वक कार्य करनेहारे (माहिनाय) श्रेष्ठ (ऋचीषमाय) स्तुतिके लिए योग्य वीर (अ ध्रि-गवे) अतुल प्रतापी वीर (अस्मै इन्द्राय) इस इन्द्रके लिए (राततमा ब्रह्माणि) अर्पण करने योग्य स्तोत्र तैयार करके (प्रयः न) अन्नके समान उन्हें जो (ओहं स्तोमं) उत्कृष्ट स्तोत्र है (प्र हर्मि) उसके निकट ले चलता हूं उसे गाकर दर्शाता हूं ।

अ ध्रि गु = जिसकी (गु-गौः) गाय (ध-ध्रि) पकड रखना असंभव है, ऐसा अतुल प्रतापी वीर जिसके शत्रुता करना असंभव है । इस पदका मूल अर्थ है गौको पकडकर रखना असंभव इसीका आगे चलकर ऐसा अर्थ हुआ कि वह जिसका प्रतिकार करना संभव नहीं क्योंकि गौका अर्थ ही सर्वस्व समूचा धन था ।

ओह (आ-वह) समीप के आनेके लिए योग्य उत्तम उच्च कोटिका ।

गाथी कौशिकः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ३।२१।४)

तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य ।

कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ॥ ३७० ॥

हे (अ ध्रि-गो) जिसकी गायोंका प्रतिबंध कहीं नहीं होता है उसे (शचीवः) शक्तिमान् अग्ने ! (तुभ्यं) तेरे लिए (मेदसः घृतस्य) चर्बीके तथा घृतकी (स्तोकासः) बूंदें (श्चोतन्ति) टप कती हैं इसलिए (कवि शस्तः) कवियोंसे प्रशंसित तू (बृहता भानुना) बहुत बडे तेजके साथ (आ अगाः) इधर आजा और हे (मेधिर) बुद्धिमान् अग्ने ! (हव्या जुषस्व) हवियोंका स्वीकार कर।

[१२०] गोमाताने सैन्यका सृजन किया।

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । मरुतः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१६८।९)

असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम्।

ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वमादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥ २७१ ॥

(पृश्निः) गोमाताने (महते रणाय) बडे भारी संग्रामके लिए (अयासां मरुतां) गतिशील वीर मरुतोंका (त्वेषं अनीकं) तेजस्वी सैन्य (असूत) उत्पन्न किया (सप्सरासः) एकत्रित होकर हलचल करनेवाले इन वीरोंने (अभ्वं अजनयन्त) अभूतपूर्व महान् शक्तिको प्रकट किया (आत् इत्) पश्चात् उन्होंने (इषि-रां स्वधां) अन्न देनेहारी अपनी धारक शक्तिको ही (परि अपश्यन्) चारों ओर देख लिया।

मातृभूमि या गोमाताकी रक्षा करनेके लिए ही बडी भारी सेना रखी जाती है।

पृश्निः महते रणाय अयासां त्वेषं अनीकं असूत = गौमाताने बडा संग्राम करनेके लिये हमला करनेवाले वीरोंका तेजस्वी सैन्य निर्माण किया।

गौमाताकी रक्षा करनेके लिये बडा सैन्य तैयार हुआ। विश्वामित्र राजापर वसिष्ठकी कामधेनुकी रक्षाके लिये गौओंकी सेना तैयार होकर लड पडी थी। यह इतिहास यहां तुलनाके लिये देखना योग्य है।

[१२१] त्वष्टाके पुत्रकी गौएँ।

त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।८।८)

स पित्र्याण्यायुधानि विद्वानिन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत्।

त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितो गाः ॥ २७२ ॥

(सः आप्त्यः इन्द्र-इषितः) वह आप्त्य इन्द्रका भेजा हुआ (पित्र्याणि आयुधानि विद्वान्) अपने पिताके हथियारोंको जानता हुआ (अभि अयुध्यत्) सामने सामने खडे हो लडने लगा (त्रितः त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्) त्रितने तीन सिरोंवाले एवं सात किरणोंवालेको मार डाला और (त्वाष्ट्रस्य गाः चित्) त्वष्टा पुत्रकी गायोंको (निः ससृजे) छुडाकर ले भागा।

त्वष्टाके पुत्रने गौओंको अपने किलेमें बंद रखा था। त्रितने इसका वध किया और गौओंको छुडा कर दिया।

[१२२] गौओंको फिरसे वापिस लाये।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । मरुत इन्द्रश्च । गायत्री । (ऋ० १।६।५)

वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः। अविन्द उस्रिया अनु ॥ २७३ ॥

हे इन्द्र! (वीळु चित्) अत्यन्त बीहड स्थान होनेपर भी (आरुजत्नुभिः वह्निभिः) उसे छिन्न विच्छिन्न करनेहारे अग्निवत् तेजस्वी मरुतोंको साथ लेकर शत्रुने (गुहा चित्) गुफामें छिपाईं हुईं (उस्रियाः) गौएँ (अनु अविन्दः) तू प्राप्त कर सका।

चोर गौओंको चुरा ले जाते और उन्हें गुहामें छिपा रखते। इन्द्र ऐसे शत्रुओंका पराभव करता और छिपी हुई गौएँ छुडाकर उनके राज्यमें वापस ले आता। जनताका गोधन फिरसे जनताको मिल जाता। राजाका यह कर्तव्य है कि प्रजाका गोधन प्रजाके निकट सुरक्षित रूपसे रहे इस तरह कार्यवाही शुरू कर दे। इससे स्पष्ट होता है कि गौओंकी चोरी रोक देना राजाका प्रमुख कर्तव्य है।

हिरण्यस्तूप आंगिरसः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।३२।१२)

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून्॥ २७४॥

हे (इन्द्र) इन्द्र! (सृके देवः) वज्र चलानेमें निपुण इन्द्र (एकः प्रति अहन्) जब अकेलाही वृत्रके आघात देनेके लिए तैयार हुआ, उस समय (अश्व्यः वारः अभवत्) वृत्रकी ऐसी दशा हुई कि, जैसे घोडोंपर बैठनेवाली मक्खियाँ चाबुकके फटकारनेसे मर जाती हैं, तब (गाः अजयः) तू गौएँ जीतकर वापस लाया। (शूर) हे वीर! (सोम अजयः) तूने सोम जीत लिया और (सप्त सिन्धून् सर्तवे अव असृजः) सातों नदियोंको लगातार बहनेके लिए तू भूमण्डलपर मुक्त रूपसे छोड चुका।

शत्रुओंकी चुराई हुई गौएँ शत्रुका पराभव करके पुनः हस्तगत की (गाः अजयः) इन्द्रने गौएँ जीत लीं।

[१३३] इन्द्रके बाहु गौएँ पानेवाले हैं।

कुत्स आंगिरसः। इन्द्रः। जगती। (ऋ० १।१०२।६)

गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजंकरः।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः॥ २७५॥

हे इन्द्र! तेरी (बाहू गो जिता) भुजाएँ गौएँ जीत लानेवाले हैं, तू स्वयं (अमित-क्रतुः) अनगिनती पौरुषपूर्ण कार्य करनेवाला है (सतः सिमः) श्रेष्ठ है तू (कर्मन् कर्मन्) हरएक कर्मके समय (शत-ऊतिः) सैकडों प्रकारोंसे रक्षा करनेवाला है। तू (खजं-करः अकल्पः) युद्धकर्ता तथा कल्पनातीत सामर्थ्यसे युक्त (इन्द्रः) प्रभु है, (अथ) इसलिए (ओजसा प्रतिमानं) सामर्थ्यका प्रतीक है उसे (सिषासवः जनाः) धनकी कामना करनेवाले लोग (वि ह्वयन्ते) बुलाते रहते हैं।

गौओंको जीतनेके लिये समर्थ इन्द्रके बाहु हैं।

शत्रुओंकी चुराई हुई गौवें ढूंढ लाना।

परुच्छेपो दैवोदासिः। इन्द्रः। अत्यष्टिः। (ऋ० १।१३०।३)

अविन्दद्दिवो निहितं गुहा निधिं वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि।
व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः।
अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः॥ २७६॥

शत्रुओंसे चुराई हुई (गवां इव व्रजं सिषासन्) गायोंका झुंड पानेकी इच्छा करनेवाला वीर जैसे (वज्री अंगिरस्तमः) वज्रधारी तथा अग्नितुल्य तेजस्वी (इन्द्रः) इन्द्रने (अनन्ते अश्मनि परिवीतं) बहुतही पत्थरोंसे भू विभागमें छिपाये हुए और (अश्मनि अन्तः) पहाडके भीतर (गुहा निहितं) गुप्त स्थानमें रखे हुए (निधिं) भाण्डारको सोमको (वेः गर्भं न) पक्षी जिस भाँति अपने शावकको पाता है वैसे ही (दिवः) स्वर्गसे ही (अविन्दत्) पाया और पश्चात् (परिवृताः इषः द्वारः) चारों ओरसे बन्द भांडारके दरवाजे (अप अवृणोत्) खोल दिये और चतुर्दिक (इषः परिवृताः) धान्य पर्याप्त मात्रामें मिल जाय ऐसा प्रबन्ध कर रखा।

गवां व्रजं सिषासन् वज्री = गौओंके समूहको पानेकी इच्छा तथा प्रयत्न करनेवाला वज्रधारी वीर।

[१२५] शत्रुओंसे इन्द्रने गौएँ प्राप्त कीं

कुत्स आंगिरसः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ. १।१०३।५)

तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय।

स गा अविन्दत्सो अविन्ददश्वान्त्स ओषधीः सो अपः स वनानि॥ ३७७॥

(अस्य इन्द्रस्य) इस इन्द्रका (तत् इदं) वह इस भाँति पराक्रम (पुष्टं) बहुत बढ चुका है और वह (भूरि पश्यत) अत्यंत बडा दिखाई देने लगा है, उसे देखिए (वीर्याय श्रत् धत्तन) उस पराक्रमपर विश्वास रखिए (सः गाः अविन्दत्) वह गौएँ पा चुका है (सः अश्वान्) वह घोडे पानेमें सफल बन चुका है (सः अपः) उसने जल पालिया और (सः वनानि) उसने वनभी (अविन्दत्) प्राप्त किये हैं। शत्रुके अधीन धन भी इन्द्रने जीत लिये हैं।

इन्द्रने शत्रुदलको परास्त किया और उससे उससे गौएँ प्राप्त कीं। गौओंके लिए वनस्पतियाँ औषधियाँ तृण एवं जलभी प्राप्त करके अपने अधीन बना डालीं।

[१२६] गायोंके लिये उत्तम पराक्रम।

वशोऽश्व्यः। इन्द्रः। ककुप् (ऋ. ८।४६।५)

दधानो गोमदश्ववत्सुवीर्यमादित्यजूत एधते। सदा राया पुरुस्पृहा॥ ३७८॥

(आदित्यजूतः सदा) आदित्यसे प्रेरित मनुष्य हमेशा (पुरुस्पृहा राया) जिसे बहुत चाहते हैं ऐसे धनसे एवं (गोमत् अश्ववत् सुवीर्यं दधानः) गायों तथा घोडोंसे भरपूर और अच्छी सन्तानसे युक्त जीवनका धारण करता हुआ (एधते) अधिकाधिक बढता है।

गोमत् सुवीर्यं दधानः = गायोंसे युक्त उत्तमवीर्यका धारण करनेवाला वीर।

मेध्यातिथिः काण्वः। बृहती। (ऋ. ८।३३।६)

यो धृषितो योऽवृतो यो अस्ति श्मश्रुषु श्रितः।

विभूतद्युम्नश्च्यवनः पुरुष्टुतः क्रत्वा गौरिव शाकिनः॥ ३७९॥

(यः धृषितः) जो शत्रुओंका धर्षण करनेवाला (यः अवृतः) जो शत्रुओंसे न घेरा हुआ (यः श्मश्रुषु श्रितः अस्ति) जो सहायोंमें आश्रय देता है तथा (विभूतद्युम्नः) बहुत धनवाला (च्यवनः पुरुष्टुतः) शत्रुओंको गिरा देनेवाला एवं बहुतोंसे प्रशंसित होता हुआ (शाकिनः गौः इव) समर्थ पुरुषकी गायके समान (क्रत्वा) अपने कर्मसे विजयी होता है, अर्थात् भक्तोंकी सारी इच्छाओंकी पूर्ति करता है।

समर्थ वीरकी गौ सुरक्षित रहती है कोई उसको चुरा नहीं सकता।

(मेध्यातिथिः काण्वः। इन्द्रः। बृहती। (ऋ. ८।३३।३)

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम्।

पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे॥ ३८०॥

हे (धृष्णो!) साहसी! (मघवन्) ऐश्वर्यसंपन्न! (विचर्षणे) विशेष ढंगसे देखनेहारे! तू (कण्वेभिः) कण्वोंद्वारा प्रेरित होनेपर (सहस्रिणं वाजं दर्षि) सहस्रोंकी संख्यामें अन्न देता है, इसलिए हम (पिशंगरूपं गोमन्तं धृषत्) सुवर्णके कारण पीले स्वरूपवाले और गायोंसे युक्त एवं साहसी भाव पैदा करनेवाले धनको (मक्षु ईमहे) शीघ्र चाहते हैं।

गोमन्तं धृषत् मक्षु ईमहे = गौओंसे युक्त साहसपूर्ण वीरभावको हम शीघ्र ही प्राप्त करें।

[१२७] इन्द्रकी आज्ञामें गौएँ रहती हैं ।

गृत्समद आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्भार्गवः शौनकः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० २।१२।७)

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥ ३८१ ॥

हे (जनासः) लोगो ! (यस्य प्रदिशि) जिसकी आज्ञामें (अश्वासः) घोडे रहते हैं (गावः यस्य) गौएँ जिसकी आज्ञाके अनुकूल रहती हैं (यस्य ग्रामाः) जिसकी इच्छाके अनुसार ग्राम बसाये हैं (यस्य विश्वे रथासः) जिसके सभी रथ इच्छानुकूल संचार करते हैं (यः सूर्यं) जो सूर्यको (यः उषसं) जो उषाको (जजान) उत्पन्न करचुका और (यः अपां नेता) जो जलसमूहोंका नेता है (सः इन्द्रः) वही सचमुच इन्द्र है ।

यस्य प्रदिशि गावः = इन्द्रकी आज्ञामें गौएँ रहती हैं ।

[१२८] गायें चुरानेवाला पणि और गौओंको रुकावटसे छुडानेवाला इन्द्र ।

हिरण्यस्तूप आंगिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।३२।११)

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।
अपां बिलमपिहितं यदासीद्वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥ ३८२ ॥

(पणिना गावः इव) पणि राक्षसकी चुराई हुई गौएँ जिस भाँति उसने गुफामें रखदीं और उस गुहाका मुँह या दरवाजा बन्द कर रखा था उसी प्रकार (दासपत्नीः अहि-गोपाः) दासका बनाया हुआ और अहिका गुप्त रखा हुआ (आपः निरुद्धाः अतिष्ठन्) जल समूह रुकावटके कारण अटक गया था। यह जल इन असुरोंके अधीन था। (यत् अपां बिलं अपिहितं आसीत्) जो पानीका द्वार बंद पडा हुआ था (तत्) उसे (वृत्रं जघन्वान्) वृत्रके वधकर्ता इन्द्रने (अप ववार) खुला कर दिया [और जलको जानेके लिए राह दी]

यहाँपर ऐसा उल्लेख पाया जाता है कि पणिनामक असुरने गौओंको चुराकर छिपा रखा था। इन्द्रने उस गुहाका द्वार खोल दिया और गौओंकी मुक्तता कर दी। इससे स्पष्ट है कि पणि गौओंके चुरानेवाले असुर थे और इन्द्र देव ताका यह काम था कि वह इन गौओंको कारागृहमेंसे छुडा देवे ।

गोतमो राहूगणः । अग्नीषोमौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।९३।४)

अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।
अवातिरतं बृसयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥ ३८३ ॥

हे (अग्नीषोमा) अग्नि तथा सोम ! (यत्) जिस समय (गाः अवसं) गौरूपी अन्न (पणिं) पणिसे (अमुष्णीतं) तुम अपने अधीन कर चुके हो उस समय तुम (बृसयस्य शेषः) बृसय असुरकी समूची बची हुई सेना (अव अतिरतं) विनष्ट कर चुके और (बहुभ्यः) अनेकोंको उपयोगी सिद्ध हो इसलिए (एकं ज्योतिः अविन्दतम्) एकमेव तेज पाचुके हो (तत् वां वीर्यं) वह तुम्हारा पराक्रम (चेति) विख्यात है ।

इन्द्रने पणिसे गोधन छिनसे हस्तगत किया और बृसयकी बची सेनाकी धज्जियाँ उडाकर सबोंके लिए प्रकाश मार्ग दर्शाया ।

[१३९] गौएँ चुरानेहारा वल नामक असुर । गौका चौर्य करनेहारेको दण्ड ।

जेता माधुच्छन्दसः । इन्द्रः । अनुष्टुप् (ऋ. १।११।५)

त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् ।
त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥ २८४ ॥

हे (अद्रि-वः) पर्वतपर बनाये हुए दुर्गोंमेंसे लडनेवाले वीर ! (त्वं गोमतः वलस्य) गौओंको चुराकर ले चलनेवाले वल नामक राक्षसकी (बिलं अप अवः) गुहाको तुमने घेर लिया था उस समय (तुज्यमानासः देवाः) पहले दुःखको पाये हुए देवता (अ-बिभ्युषः) न डरते हुए (त्वां आविषुः) तेरे निकट इकट्ठे हुए, तेरी छत्रछायामें आकर रहने लगे ।

इस मंत्रमें उल्लेख पाया जाता है कि जो गौओंको पकडकर चुराके जाते थे, उन्हें वीर पुरुषने घेरकर नष्ट कर डाला । इसी भाँति जो चौर्य करनेवालोंको राजा कडा दण्ड देवे ।

'इन्द्रो वलस्य बिलमपोर्णोत्' - तै. सं. २।१।५।१ वल नामक असुरने देवताओंकी गौएँ चुराई और उन्हें एक गुहामें छिपा रखा । इन्द्र अपनी सेना साथ लेके उधर जा पहुँचा और उस असुरका पराभव करके गायें छुडा लाया । यही वृत्तान्त तै. सं. ब्राह्मण तथा अन्य मन्त्रोंमें है ।

गृत्समदः भार्गवः शौनकः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ. २।१२।३)

यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून्यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः ॥ २८५ ॥

(यः अहिं हत्वा) जो अहिका वध करके (सप्त सिन्धून्) सातों नदियोंको (अरिणात्) उन्हें बहने देता है, (यः च) और जो (वलस्य अप-धा) वलके रोककर रखी हुई (गाः उत् आजत्) गौएँ छुडाता है (यः अश्मनः अन्तः) जो पत्थरोंके अन्दर विद्यमान (अग्निं जजान) अग्निको पैदा कर चुका तथा जो (समत्सु) युद्धोंमें शत्रुको (संवृक्) मार डालता है, (सः) वह (जनासः) हे लोगो ! (इन्द्रः) इन्द्र है ऐसा तुम जान लो ।

वलस्य अपधी गाः उत् आजत् = वलने चुराई गौओंको इन्द्र मुक्त करता है ।

विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (ऋ. ३।३०।१०)

अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार ।
सुगान्पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन्वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः ॥ २८६ ॥

(अलातृणः वलः पुरा) अत्यन्त हिंसा करनेवाला वलनामक असुर पहले था (गोः व्रजः) गायोंका गोष्ठ (हन्तोः भयमानः वि आर) हत्या करनेवाले वज्रसे डरता हुआ दूर हट गया पश्चात् (गाः निः-अजे) गायोंको बाहर लाना संभव हो इसलिए इन्द्रने (सुगान् पथः अकृणोत्) सुगम मार्ग बना दिये और (वाणीः धमन्तीः) रँभाती हुई गौएँ (पुरु-हूतं प्र आवन्) बहुतोंसे प्रशंसित पतिकी ओर चल पडीं ।

वज्रके भयसे गायोंको मुक्त किया तब गायें रँभाती हुईं बाहर चल पडीं ।

गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ. ८।१४।८)

उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ २८७ ॥

(गुहा सतीः) गुफामें विद्यमान (गाः आविः कृण्वन्) गायोंको प्रकट करते हुए (अंगिरोभ्यः

पद् आवत्) अंगिरोंके लिए ऊपर उठा चुका और (वलं नर्याश्च नुनुदे) वल नामक असुरको औंधा मुँह करके नीचे ढकेल दिया।

अयास्य आंगिरस । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् । (ऋ १०।६८।६)

यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद्बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीँरकृणोदुस्रियाणाम् ॥ १८८॥

(यदा पीयतः वलस्य) जब हिंसा करते हुए वलके (जसुं अग्नितपोभिः अर्कैः) हथियारको अग्नि तुल्य ताप देनेवाले एवं पूजा करनेयोग्य शस्त्रोंसे (बृहस्पतिः भेद्) बृहस्पतिने तोड दिया तब (जिह्वा दद्भिः न) जीभ दांतोंकी सहायतासे जैसे खानकी वस्तुको घेर लेती है वैसे ही (परिविष्टं आदत्) चारों ओरसे घेरे हुए असुरको पूर्णतया विलुप्त किया पश्चात् (उस्रियाणां निधीन् आविः अकृणोत्) गायोंके समूहोंको स्पष्ट दर्शाया।

अयास्य आंगिरसः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् । (ऋ १०।६८।५)

अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥ १८९ ॥

(वातः उद्नः शीपालं इव) वायु पानीसे शैवालको जैसे हटाता है वैसे ही (अन्तरिक्षात् ज्योतिषा) अन्तरिक्षसे प्रकाश पैदा करके (तमः अप आजत्) अंधियारीको दूर कर दिया बृहस्पतिने (अनुमृश्य) ठीक ठीक सोचकर (वातः अभ्रं इव) वायु जैसे मेघको बिखेर देता है उसीतरह (वलस्य गाः) वलकी गौओंको (आ चक्रे) चारों ओरसे इकट्ठा किया।

अयास्य आंगिरसः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् । (ऋ १०।६८।९)

सोषामविन्दत्स स्वः सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि ।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥ १९० ॥

(सः उषां स्वः अग्निं) वह उषा सूर्य एवं अग्निको (अविन्दत्) प्राप्त कर चुका और (अर्केण सः तमांसि वि बबाधे) अर्चनीय तेजसे वह अँधेरेको विनष्ट कर चुका (गोवपुषः वलस्य) गायोंके मध्य रहे हुए वलसे, (पर्वणः मज्जानं न) हड्डियोंसे मज्जा जिस तरह निकाली जाती है वैसे ही बृहस्पतिने (निः जभार) गायोंको बाहर रख दिया।

गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ २।१४।२)

अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः ।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥ १९१ ॥

हे अध्वर्यु लोगो ! (यः दृभीकं जघान) जिसने डर दिखानेवाले राक्षसका वध किया (यः गाः उदाजत्) जिसने गायोंको बाडमेंसे छुडाया तथा (वलं अप वः हि) वलको सचमुच ही मार डाला (तस्मै) उस इन्द्रके लिए (अन्तरिक्षे एतं वातं न) अन्तरिक्षमें यह वायु रहता है उसी प्रकार सोमके प्रवाह उत्पन्न करो और (इन्द्रं) उस इन्द्रको (जूः न वस्त्रैः) जीर्ण हुए अपने अवयव जैसे कपडोंसे ढकते हैं वैसे ही (सोमैः आ ऊर्णुत) सोमोंसे ढक दो।

यः गाः उदाजत् = जिसने गायोंको मुक्त किया और वलका वध किया।

गृत्समदः शौनकः। ब्रह्मणस्पतिः। जगती। (ऋ २।२४।३)

तत् देवानां देवतमाय कर्त्वमश्रथ्नन् दृळ्हाव्रदन्त वीळिता।
उद् गा आजदभिनद् ब्रह्मणा वलमगूहत् तमो व्यचक्षयत् स्वः ॥ ३९२ ॥

(दृळ्हा अश्रथ्नन्) सुदृढोंको ढीला कर दिया और (वीळिता) कठिन वस्तुओंको (अव्रदन्त) नरम किया (तत् कर्त्वं) वह प्रसिद्ध कार्य (देवानां देवतमाय) देवोंमें श्रेष्ठ पदपर अधिष्ठित ब्रह्मणस्पतिका है। उसी प्रकार उसने (गाः उत् आजत्) बलासुरमेंसे गायोंको छोड दिया (वलं ब्रह्मणा अभिनत्) बलका ब्रह्मशक्तिसे वध कर डाला और (तमः अगूहत्) अँधेरा विनष्ट किया तथा (स्वः) उजालेको (वि अचक्षयत्) प्रकट किया।

अयास्य आङ्गिरसः। बृहस्पतिः। त्रिष्टुप्। (ऋ १०।६८।१०)

हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद्वलो गा।
अनानुकृत्य अपुनश्चकार यात्सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥ ३९३ ॥

(पर्णा) पत्तोंको (हिमा इव) हेमन्त ऋतु जिस ढंगसे चुराता है वैसे ही (वनानि मुषिता) स्वीकरणीय गायोंको चुरा लिया था बादमें (वलः बृहस्पतिना गाः अकृपयत्) वलने आये हुए बृहस्पतिसे गायोंको लौटा दिया (यत् सूर्यामासा) जो सूर्य एवं चन्द्र (मिथः उच्चरातः) परस्पर एकके बाद एक ऊपर उठ आते हैं सो (अनानुकृत्यं अपुनः चकार) काम ऐसा था कि कोई उसका अनुकरण न कर सके और फिरसे उसे करनेकी आवश्यकता न हो।

[१४०] गायोंको शत्रुके बन्धनसे छुडाना।

सुहोत्रो भारद्वाजः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ ६।३२।२)

स मातरा सूर्येणा कवीनामवासयद्रुजदद्रिं गृणानः।
स्वाधीभिर्ऋक्वभिर्वावशान उदुस्रियाणामसृजन्निदानम् ॥ ३९४ ॥

(सः) वह इन्द्र (सूर्येण) सूर्यकी सहायतासे (कवीनां) क्रान्तदर्शीयोंके लिए (मातरा अवासयत्) द्यावापृथिवीको प्रकाशित कर चुका है और (गृणानः) प्रशंसित होनेपर (अद्रिं रुजत्) गायोंको छिपाय रखनेवाले किले जैसे पहाडको तोड चुका। (स्वाधीभिः ऋक्वभिः) अच्छे ध्यानवाले स्तोताओंसे (वावशानः) बार बार कामना किया हुआ इन्द्र (उस्रियाणां निदानं) गायोंके बंधनको (उत् असृजत) छुडा चुका।

उस्रियाणां निदानं उदसृजत्= गौओंके बन्धनको तोड दिया और गौओंको मुक्त किया।

मेध्यातिथिः काण्वः। इन्द्रः। बृहती। (ऋ ८।३।१९)

निरिन्द्र बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः।
निरर्बुदस्य मृगयस्य मायिनो निः पर्वतस्य गा आजः ॥ ३९५ ॥

हे इन्द्र! (बृहतीभ्यः धनुभ्यः) बडी प्रचण्ड धनुओंसे (वृत्रं निः अस्फुरः) वृत्रको पूर्णतया तू मार चुका तथा (अर्बुदस्य मायिनः मृगयस्य पर्वतस्य) असुर मायावी मृगय तथा पर्वतकी (गाः निः आजः) गायोंको बाहर मुक्त कर चुका।

मायावी राक्षसके बन्धनसे गौओंको मुक्त किया।

कलिः प्रागाथः। इन्द्रः। बृहती। (ऋ ८।६६।३)

यः शक्रो मृक्षो अश्व्यो यो वा कीजो हिरण्ययः।
स ऊर्वस्य रेजयत्यपावृतिमिन्द्रो गव्यस्य वृत्रहा ॥ ३९६ ॥

(यः शक्रः) जो शक्तिमान् (मृक्षः) शुद्धता करनेवाला (अश्व्यः) अश्वविद्या जाननेवाला (वा हिरण्ययः कीजः वा) जो सुवर्णमय एवं अद्भुत है (सः वृत्रहा) वह वृत्रका वध करनेवाला इन्द्र (ऊर्वस्य गव्यस्य अपावृतिं रेजयति) अत्यन्त विशाल गायोंके झुंडको खोलकर उनको विकंपित करता है।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्रः। उष्णिक्। (ऋ ६।४३।३)

यस्य गा अन्तरश्मनो मदे दृळ्हा अवासृजः।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ३९७ ॥

(यस्य मदे) जिसके कारण उत्पन्न आनन्दमें हे इन्द्र! (अश्मनः अन्तः दृळ्हाः गाः) पत्थर जैसे कठिन दुर्गके अन्दर सुदृढ रूपसे रखी हुई गायोंको तू (अवासृजः) मुक्त कर चुका, (अयं सः सोमः) यह वही सोम (ते सुतः) तेरे लिए निचोडा गया है, इसलिए (पिब) उसे पी जा।

गृत्समदः शौनकः। मरुतः। जगती। (ऋ २।३४।१)

धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥ ३९८ ॥

(धारा-वराः) युद्धके मोर्चेपर श्रेष्ठ ठहरनेवाले (धृष्णु ओजसः) शत्रुको पराभूत करनेवाले बलसे युक्त (मृगाः न भीमाः) सिंहकी न्याईं भीषण (तविषीभिः) अपने बलोंसे (अर्चिनः) पूजनीय हुए (अग्नयः न) अग्नितुल्य (शुशुचानाः) जगमगाते हुए (ऋजीषिणः) वेगपूर्वक जानेहारे और (भृमिं धमन्तः) वेग पैदा करनेहारे वीर मरुत् (गाः अप अवृण्वत) गायोंको कारागृहसे छुडाते हैं।

वामदेवो गौतमः। वैश्वानरोऽग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ ४।५।८)

प्रवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहा हितमुप निणिग्वदन्ति।
यदुस्रियाणामप वारिव व्रन् पाति प्रियं रुपो अग्रं पदं वेः ॥ ३९९ ॥

(मे अस्य वचसः) मेरे इस भाषणका (किं प्रवाच्यं) अधिक कहने योग्य अंश क्या है? (निर्णिक्) अत्यन्त शोधक एवं पवित्रकारी वस्तुको (गुहा उपहितं) गुफामें भीतर रखा है ऐसा (वदन्ति) कहते हैं। (यत् वाः इव) जो जलकी भाँति (उस्रियाणां अप व्रन्) गायोंको खुला करके रखा है, और (वेः रुपः) व्याप्त भूमिके (प्रियं अग्रं पदं) प्यारे श्रेष्ठ स्थानको (पाति) सुरक्षित करता है।

उस्रियाणां अप व्रन् = गौओंको खुला किया अर्थात् शत्रुसे गौओंको छुडवाया।

गाथिनो विश्वामित्रः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ ३।३२।१६)

न त्वा गभीरः पुरुहूत सिन्धुर्नाद्रयः परि षन्तो वरन्त।
इत्था सखिभ्य इषितो यदिन्द्राऽऽदृळ्हं चिदरुजो गव्यमूर्वम् ॥ ४०० ॥

हे (पुरु हूत इन्द्र) बहुतोंने बुलाये तथा प्रशंसित इन्द्र! (यत् सखिभ्यः इषितः) चूँकि मित्रोंके लिए तू (दृळ्हं चित्) सुदृढ (ऊर्वं गव्यं) तथा विशाल गौओंकी गोशाला (आ अरुजः)

सम्पूर्णतया रुकावटें तोड़कर खोल चुका था। (इत्था त्वा) इस भाँति तुझको (गभीरः सिन्धुः) गहरा समुद्रतक (न) नहीं रोक सकता और (न परि सन्तः अद्रयः परस्त) नाही चारों ओर विद्यमान पहाड़ भी रोक सकते।

अंगुलाधियोंको गायोंकी आवश्यकता आ पड़ी जिन्हें शत्रु सुदृढ दुर्गमें बंद कर चुका था। उन गायोंको बाहर भेजनेके लिए इन्द्रने दुर्गका भंग किया था और गायोंको रिहा कर दिया।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। वायुः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ७।९०।४)

उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः।

गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः ॥४०१॥

(सुदिनाः अरिप्राः) अच्छे दिनवाली और दोषरहित (उषसः उच्छन्) उषाएँ उठ आयीं और (दीध्यानाः उरु ज्योतिः विविदुः) ध्यान करनेवाले विशाल प्रकाशको जान चुके (ऊर्वं गव्यं चित्) विशाल गोसंघको भी (उशिजः वि वव्रुः) उदिक् वंशवाले लोगोंने विशेषतया खोल दिया (तेषां अनु) उनके पीछे (दिवः आपः प्रससु्रः) द्युलोकसे जलसमूह अधिक मात्रामें फैलने लगे।

गौओंके समूहको बन्धुसे छुड़वाया।

कुशिक ऐषीरथिः विश्वामित्रो गाथिनो वा। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ३।३१।११)

स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः।

उरूच्यस्मै घृतवद्भरन्ती मधु स्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ॥४०२॥

(सः इन्द्रः) वह इन्द्र (जातेभिः) प्रसिद्ध वीरोंकी सहायतासे (वृत्रहा) वृत्रका वध करनेहारा है, (सः इत् उ) उसी इन्द्रने (अर्कैः हव्यैः) पूज्य हविष्यान्नोंके साथ (उस्रियाः उत् असृजत्) गायोंको उन्मुक्त कर दिया; (घृतवत् भरन्ती) घीसे युक्त दूध पर्याप्त रूपमें देती हुई (उरूची) महत्त्वयुक्त तथा (जेन्या) विजयी होनेवाली (गौः अस्मै) गौने इस उपासकके लिए (स्वाद्म दुदुहे) मधुर तथा स्वादु दूधका दोहन कर दिया।

१ उस्रियाः उदसृजत्= गायोंको शत्रुसे मुक्त किया।

२ घृतवत् स्वाद्म गौः अस्मै दुदुहे= घीसे युक्त स्वादु पेय अर्थात् दूध इस वीरके लिए गौने दिया।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ६।१७।३)

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः।

आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥४०३॥

हे इन्द्र! तू (प्रत्नथा एव पाहि) पहले जैसे ही सोमपान जारी रख (त्वा मन्दतु) वह सोम तुझे आनन्दित करे (ब्रह्म श्रुधि) स्तोत्रका पाठ सुन (उत गीर्भिः वावृधस्व) और हमारे प्रशंसामय भाषणोंसे तू बढ़ता रह (सूर्यं आविः) सूर्यको प्रकट (कृणुहि) कर (इषः पीपिहि) अन्नसामग्रीकी प्राप्ति कर (शत्रून् जहि) शत्रुओंका वध कर और (गाः अभि तृन्धि) गायोंको प्रकाशमें ले आ।

गाः अभि तृन्धि = गायोंको शत्रुसे मुक्त कर।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ६।१७।६)

तव क्रत्वा तव तद् दंसनाभिरामासु पक्वं शच्या नि दीधः।

और्णोर्दुर उस्रियाभ्यो वि दृळ्होदूर्वाद्गा असृजो अङ्गिरस्वान् ॥४०४॥

(तव क्रत्वा) तेरी प्रज्ञासे (तव दंसनाभिः) तेरे कर्मोंसे (आमासु तत् पक्वं) अपक्व गायोंमें

उस पके वृक्षको (शाम्या वि दीधः) शक्तिसे तू रस चुका (उस्रियाभ्यः) गौओंको (दुरः) बाहर निकल आनेके लिए दरवाजोंको (दृळ्हा) सुदृढ रहनेपर भी (वि और्णोः) खोल दिया (अंगिरस्वान्) अंगिराओंसे युक्त होकर (ऊर्वात् गाः उत् असृजः) गायोंके झुंडसे गौओंको मुक्त कर चुका।

शत्रुके किलेके बडे मजबूत दरवाजोंको खोलकर गायोंको मुक्त किया।

प्रगाथः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० ८।६३।३)

स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप । स्तुषे तदस्य पौंस्यम् ॥ ४०५ ॥

(सः इन्द्रः) उस इन्द्रने (विद्वान्) ज्ञानी बनकर (अंगिरोभ्यः गाः अप अवृणोत्) अंगिरसोंके लिए गायोंको खोल दिया इसलिए (अस्य तत् पौंस्य) इसके उस पौरुषकी (स्तुषे) प्रशंसा करता हूँ।

अङ्ग औरवः । इन्द्रः । जगती । (ऋ० १०।१३८।२)

अवासृजः प्रस्वः श्वञ्चयो गिरीनुदाज उस्रा अपिबो मधु प्रियम् ।
अवर्धयो वनिनो अस्य दंससा शुशोच सूर्य ऋतजातया गिरा ॥ ४०६ ॥

(प्रस्वः अव असृजः) बछडोंको तूने नीचे छोड दिया (गिरीन् श्वञ्चयः) पहाडोंको तोड डाला, (उस्राः उत् आजः) गायोंको खोल दिया और (प्रियं मधु अपिबः) प्यारे शहदको पी लिया (वनिनः अवर्धयः) वनके पेडोंको बढाया (अस्य दंससा) इसके कार्यसे और (ऋत जातया गिरा) सत्यसे उत्पन्न भाषणसे (सूर्यः शुशोच) सूर्य चमकने लगा।

बछडा उत्पन्न ≈ गायोंको मुक्त किया।

अयास्य आङ्गिरसः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।६८।११)

अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन्बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः ॥ ४०७ ॥

(श्यावं अश्वं) साँवले घोडेको (कृशनेभिः न) सुवर्णके गहनोंसे जैसे विभूषित करते हैं वैसे ही (पितरः द्यां) पितरोंने द्युलोकको (नक्षत्रेभिः अभि अपिंशन्) तारामोंसे पूर्णतया प्रदीप्त किया (अहन् ज्योतिः) दिनको सूर्यमंडल तथा (रात्र्यां तमः अदधुः) रात्रीके समय अँधेरा रखा जब कि बृहस्पतिने (अद्रिं भिनत्) पहाडको तोडकर (गाः विदत्) गायोंको प्राप्त किया था।

सरमा देवशुनी ऋषिका । पणयो देवता । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।१०८।११)

दूरमित पणयो वरीय उद्गावो यन्तु मिनतीर्ऋतेन ।
बृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूळ्हाः सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्राः ॥ ४०८ ॥

हे (पणयः) पणि नामक असुरो ! (दूरं वरीय इत) सुदूर विशाल स्थानमें तुम जाओ ! (ऋतेन मिनतीः) गौएँ अपनेसे दरवाजा फोडती हुई (उत् यन्तु) निकल आएँ (याः निगूळ्हाः) जिन्हें गुप्तरूपसे रखनेपर भी बृहस्पति सोम (ग्रावाणः विप्राः ऋषयः च) रस निचोडनेवाले पत्थर और ज्ञानी ऋषि (अविन्दन्) पा चुके थे।

शत्रुके किलेके द्वार तोडकर गौएँ बाहर लायी सोम रस निकाला गया और यज्ञ सिद्ध हुआ।

विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । बृहती । (ऋ० ३।४४।५)

इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम् ।

अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुतमुद्गा हरिभिराजत ॥ ४०९ ॥

(हर्यन्तं) मनोहर (अर्जुनं शुक्रैः अभिवृतं) शुभ्र वर्णवाले तेजोंसे व्याप्त वज्रको इन्द्रने धारण किया (हरिभिः अद्रिभिः सुतं) हरे रंगवाले पत्थरोंसे निचोडे सोमको (अप अवृणोत्) उन्मुक्त किया और (हरिभिः गाः उत् आजत्) घोडोंसे मदद पाकर गायोंको ऊपर उठाया तथा छुडा छोड दिया ।

अयास्य आङ्गिरसः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।६८।४)

आप्रुषायन्मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः ।

बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥ ४१० ॥

(अर्कः बृहस्पतिः) पूजनीय बृहस्पति (मधुना आप्रुषायन्) मधुकी धारासे सींचता हुआ (ऋतस्य योनिं अवक्षिपन्) जलके मूलस्थान मेघको बिखेरता हुआ और (द्योः उल्कां इव) द्युलोकसे चमकनेवाला जगमगाती उल्का जैसे प्रकट होता है वैसे (अश्मनः गाः उद्धरन्) पत्थरीले पहाडी किलेसे गायोंको ऊपर उठाता हुआ (भूम्याः त्वचं) भूमिके ऊपरके भागको (उद्ना इव वि बिभेद) मेघ जैसे जलसे भिगो देता है वैसे ही गौओंके खुरसे फोड चुका ।

अयास्य आङ्गिरसः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।६८।७)

बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत् ।

आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥ ४११ ॥

(आसां स्वरीणां) इन चिल्लाती हुई गायोंका (त्यत् नाम) वह विख्यात समूहका नाम (यत् गुहा सदने) जो गुफाके स्थानमें छिपा पडा था बृहस्पतिने (अमत हि) जान लिया पश्चात् (शकुनस्य गर्भं आण्डा इव भित्त्वा) पंछीके गर्भको जैसे अंडा फोडकर बाहर निकालते हैं वैसे ही (पर्वतस्य उस्रियाः) पहाडके भीतर छिपी पडी गौएं (त्मना उत् आजत्) स्वयं ही खोल दीं ।

अयास्य आङ्गिरसः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।६७।६)

स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।

ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥ ४१२ ॥

(सत्येभिः शुचद्भिः सखिभिः) सत्य आचरणवाले विशुद्ध तथा मित्रवत् प्रतीत होनेवाले मरुतोंसे जो कि (धनसैः) धनका विभाजन करनेवाले हैं (सः ब्रह्मणस्पतिः) उस ब्रह्मणस्पतिने (ईं गोधायसं वि अदर्दः) इस गौको अपने समीप रखनेवाले शत्रुको विशेषरूपसे विदीर्ण कर डाला पश्चात् (वृषभिः) बलवान (वराहैः) अच्छा आहार करनेवाले एवं (घर्मस्वेदेभिः) खूब कार्य करनेके कारण जो पसीनेसे तर हो गए हों ऐसे मरुतोंके साथ उसने (द्रविणं व्यानट्) गोधनको प्राप्त किया ॥

गोधायसं वि अदर्दः = गौओंको अपने आधीन करनेवाले शत्रुको मार दिया ।

अयास्य आङ्गिरसः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।६७।४)

अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।

बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥ ४१३ ॥

(तमसि ज्योतिः इच्छन्) अंधेरेमें उजेला करनेकी इच्छा करता हुआ बृहस्पति (अनृतस्य सेतौ) असत्यके स्थानमें (गुहा तिष्ठन्तीः) गुफामें रहती हुई (अवः गाः) निम्न विभागमें रखी गायोंको (द्वाभ्यां) दो दरवाजोंसे (परः एकया) उसके पश्चात् रखी गौओंको एक दरवाजेसे, (उस्राः उत् आकः) गायोंको बाहर निकाल लाया इस प्रकार (तिस्रः वि आवः हि) उसने तीन दरवाजों को खोल दिया।

गुहा तिष्ठन्तीः गावः अवः = गुफामें रखी गौओंको मुक्त किया ।

उस्राः एकया द्वाभ्यां तिस्रः वि आवः = गौओंको तीनों द्वारोंसे मुक्त किया ।

[१४१] गौयें शत्रुके आधीन न हों ।

(अथर्व [illegible])

नेमा इन्द्र गावो रिषन्मो आसां गोप रीरिषत् ।

मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥ ४१४ ॥

हे इन्द्र ! (इमाः गावः न रिषन्) ये गौयें कष्टको प्राप्त न हों (आसां गोपः) इनका रक्षक (मा रीरिषत्) न हिंसित होवे (अमित्रयुः जनः स्तेनः) शत्रुओंसे मिलनेवाला मानव चोर (आसां मा ईशत) इनपर शासन न करे ।

[१४२] गौएँ छुड़ाकर देवोंको बाँट दी ।

गृत्समदः शौनकः । ब्रह्मणस्पतिः । जगती । (ऋ० २।२४।१४)

ब्रह्मणस्पतेरभवद् यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः ।

यो गा उदाजत्स दिवे वि चाभजन्महीव रीतिः शवसासरत् पृथक् ॥ ४१५ ॥

(महि कर्म करिष्यतः) बड़े कर्म करनेहारे (ब्रह्मणः पतेः) ब्रह्मणस्पतिका (मन्युः) उत्साह उसकी (यथावशं) इच्छाके अनुसार (सत्यः अभवत्) सच्चा उतरता है । (यः गाः उत् आजत्) जिसने गायें छुड़ायीं (सः दिवे च वि अभजत्) उसीने ये सारे देवोंको बाँट दीं तब (मही इव रीतिः) महाप्रवाहके समान सारी गौएँ (शवसा पृथक्) अपनी शक्तिसे अलग अलग दिशाओंमें देवोंके समीप (असरत्) चली गयीं ।

[१४३] गौओंको चोर नहीं दबाता ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । गावः । जगती । (ऋ० ६।२८।३)

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।

देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ॥ ४१६ ॥

(ताः न नशन्ति) वे गौएं न नष्ट होती हैं (तस्करः न दभाति) और इन्हें चोर नहीं दबा बैठता है (आमित्रः व्यथिः) शत्रुका हथियार (आसां न आ दधर्षति) इन्हें न कष्ट पहुँचाता है (याभिः देवान् यजते ददाति च) जिन गायोंकी सहायतासे देवोंका यजन करता है तथा दान भी देता है (ताभिः सह) उन गायोंके साथ (गोपतिः ज्योक् इत् सचते) गायोंका मालिक बहुत समयतक युक्त हो जाता है ।

[१४४] गायका चोर दण्डनीय है ।

चातनः । इन्द्रासोमौ । त्रिष्टुप् (अथर्व० ८।४।१०)

यो नो रस दिप्सति पित्वो अग्ने अश्वानां गवां यस्तनूनाम् ।

रिपु स्तेन स्तेयकृद् दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३तना च ॥ ४१७ ॥

हे अग्ने ! (यः नः पित्वः रसं दिप्सति) जो हमारे अन्नके रसको बिगाड डालता है (यः अश्वानां गवां तनूनां) जो घोडों, गौवों तथा अन्य शरीरोंका नाश करता है, (स्तेयकृत् रिपुः स्तेनः) चोरी करनेवाला शत्रुरूपी चोर (दभ्रं एतु) विनाशको प्राप्त हो जाय। (सः तन्वा तना च नि हीयतां) वह शरीरसे और पुत्रादिसे हीन बने या बिछुड जाय।

[१४५] गायका दूध चुरानेवाला वध्य है।

चातनः । अग्निः । त्रिष्टुप् (अथर्व ८।३।१५)

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।

यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥ ४१८ ॥

(यः पौरुषेयेण क्रविषा समंक्ते) जो मानवी मांससे अपने आपको पुष्ट करता है और (यः यातुधानः अश्व्येन पशुना) जो दुष्ट घोडे आदि पशुके मांससे पुष्ट होता है (यः अघ्न्यायाः क्षीरं भरति) जो गायका दूध चुराकर ले जाता है हे अग्ने ! (तेषां शीर्षाणि हरसा अपि वृश्च) उनका सिरोंको अपने बलसे तोड डाल।

भावार्थ- दूध चुरानेवालेका सिर तोड डाल।

[१४६] गौवोंके सारभूत अंशोंका नाश करनेवाला शत्रु ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।१०४।१०)

यो नो रस दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस्तनूनाम् ।

रिपुः स्तेनः स्तेयकृद्दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३तना च ॥ ४१९ ॥

हे अग्ने ! (यः) जो (नः पित्वः अश्वानां गवां तनूनां) हमारे पुष्टिकारक अन्नके घोडोंके गायोंके तथा शरीरोंके (रसं दिप्सति) सारभूत अंशको विनष्ट किया चाहता है (सः रिपुः) वह शत्रु (स्तेनः स्तेयकृत्) चोर तथा चुरानेवाला (दभ्रं एतु) खड्डेमें घसा जाए और (तन्वा तना च निहीयतां) शरीरसे तथा संतानसे बिछुड जावे।

[१४७] गायके विषयमें लालच न कर ।

अथर्वा । भव-शर्व रुद्रः । अनुष्टुप् । (अथर्व ११।२।२१)

मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु ।

अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि ॥ ४२० ॥

हे (उग्र) भीषण रूपवाले ! (नः गोषु पुरुषेषु अजाविषु मा गृधः) हमारे गोधन मानव बकर तथा भेडोंके विषयमें लालच न कर (अन्यत्र विवर्तय) अपको दूसरी जगह ले जा (पियारूणां प्रजां जहि) हिंसकोंकी प्रजाका विनाश कर।

लालच करके गौकी चोरी करना उचित नहीं है।

[१४८] चोरके अधीन गाय न जाय ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । गावः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।२८।७)

प्रजावती सुयवसं रिशन्ती शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।

मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥ ४२१ ॥

हे गौओ ! तुम (प्रजावतीः) सन्तानयुक्त एवं (सुयवसं रिशन्तीः) अच्छा तृण घासको खाती हुई और (सुप्रपाणे शुद्धाः अपः पिबन्तीः) अच्छी पियाऊमें निर्मल जल पीती हुई बनी रहो, (स्तेनः अघशंसः) चोर तथा दुरात्मा (वः मा ईशत) तुमपर प्रभुत्व प्रस्थापित न करे और (रुद्रस्य हेतिः) रुद्रका हथियार (वः परिवृज्याः) तुम्हें छोड दे अर्थात् तुमपर न गिर पडे ।

कोई गायकी चोरी न करे ।

[१४९] शत्रुको पदच्युत करनेकी आयोजना ।

हिरण्यस्तूप आंगिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।३३।१३)

अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून् वितिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।

सं वज्रेणासृजद् वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥ ४२२ ॥

(अस्य सिध्मः) इस इन्द्रके सिद्धिदायक वज्रने (शत्रून्) शत्रुओंको (अभि अजिगात्) पीछे लगाकर आक्रमण करना शुरू किया पश्चात् (तिग्मेन वृषभेण) तीक्ष्ण सींगवाले बैलोंको लेकर (पुरः वि अभेत्) शत्रुओंके नगर छिन्नविच्छिन्न कर डाले और अन्तमें (इन्द्रः वज्रेण) इन्द्रने चूर वज्र उठाकर उससे (वृत्रं सं असृजत्) वृत्रका वध करडाला तथा (शाशदानः स्वां मतिं प्र अतिरत्) शत्रुको मारते समय उसने अपनी निजी आयोजनाके अनुसार संकटोंके परे जानेके लिए मार्ग ढूँढ निकाला ।

शत्रुका विनाश किस भाँति किया जा सकता है इस बारेमें वीर पुरुष स्वयं सोच विचार कर एक आयोजना निर्धारित करें और तदनुसार शत्रुको परास्त कर विजय प्राप्त करना चाहिए ।

यहाँ वृषभ पद है । संभव है यह शत्रुके किलोंको तोडनेके किसी साधनका नाम हो । वृषभ पदका अर्थ बैल है । बोझवाल करनेसे शत्रुके किलोंको तोडनेकी शक्ति बैलोंमें आती होगी ।

[१५०] युद्धोंमें गौएँ सुरक्षित रहनपायँ ।

हिरण्यस्तूप आंगिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।३३।१५)

आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम् ।

ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः ॥ ४२३ ॥

हे (मघवन्) धनिक इन्द्र ! (तुग्र्यासु गां) पानीमें डूबी हुई गौको तथा (शमं श्वित्र्यम् वृषभं) शान्त और सफेद बैलको भी (क्षेत्रजेषे) भूविभाग जीतते समय (आवः) तूने बचाया इसी प्रकार (अत्र तस्थिवांसः ज्योक् चित्) यहाँ युद्धमें बहुत देर रहनेवाले शत्रुके वीर शत्रुता (अ-क्रन्) करने लगे तब (शत्रूयतां) उन शत्रुता दर्शानेवाले लोगोंको (अधरा वेदना अकः) तूने मार वेदना पहुँचाई थी ।

शत्रुके देश जीतते समय गायों तथा बैलोंको सुरक्षित रखनेकी ओर सभी वीर अवश्य ध्यान दें । असावधान अवस्था होने पर भी शत्रुसेनाके सैनिकोंसे दर्शाया कष्ट पहुँचायें पर गौओं तथा बछडोंको सुरक्षित रखें ।

है (नः उच्छ) हमारे लिए अँधेरा हटा दे, और (प्रथमा अदर्श) सबसे पहली होती हुई दृष्टिगत हो।

गवां नेत्री= गौओंको चलानेवाली उषा।

कुत्स आङ्गिरस । उषाः । त्रिष्टुप् । (ऋ. १।११३।१८)

या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।

वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत् सोमसुत्वा ॥ ४१२ ॥

(दाशुषे मर्त्याय) दानी मानवको सुख देनेके लिए (गोमतीः सर्ववीराः) गायोंके साथ उत्तम वीरोंके संग (याः उषसः) जो उषायें (वि उच्छन्ति) प्रकाश देती हैं (वायोः इव सूनृतानां) वायुकी भांति सत्य स्तोत्र पढकर (उत् अर्के) समाप्त होते ही (अश्वदाः ताः उषसः) घोडे देनेवाली उन उषाओंको (सोमसुत्वा) सोमयाजी (अश्नवत्) प्राप्त करता है।

गोमतीः उषसः= गायोंवाली उषाएं हैं।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिज । उषाः । त्रिष्टुप् । (ऋ. १।१२४।५)

पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम् ।

व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥ ४३३ ॥

(अप्त्यस्य रजसः) विशाल अन्तरिक्षके (पूर्वे अर्धे) पूरबके आधे हिस्सेमें (जनित्री) उत्पन्न होनेवाली यह उषा (गवां केतुं) गौओंका ज्ञान (प्र अकृत) पहले पहल कर देती है (पित्रोः उपस्था) द्यावा पृथिवीके समीप रहकर उन (उभा) दोनोंको भी अपने तेजसे (आ पृणन्ती) परिपूर्ण करती हुई यह उषा (वितरं वरीयः) विशेष विस्तृततासे (वि उ प्रथते) प्रख्यात हुई है।

उषःकालका प्रारंभ होते ही पहले गायोंके निकट जाकर दोहन किया जाता है, इसलिए उषःकाल पहले गायोंकी जानकारी करा देता है और पश्चात् वह आकाश तथा भूभागपर उजाला फैला देता है। यह सबको विदित है। यहां गवां पदका अर्थ किरण ऐसा भी होना संभव है।

[१५२] गायोंकी माता उषा।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । उषाः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ७।७७।२)

विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद्रुशद्वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत् ।

हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृग्गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ॥ ४३४ ॥

(सप्रथाः) अत्यन्त विस्तारशील उषा (विश्वं प्रतीची) सबके सम्मुख (उत् अस्थात्) ऊपर उठ आयी है और (शुक्र रुशत् वासः बिभ्रती) तेजस्वी चमकीला कपडा धारण करती हुई (अश्वैत्) वह शुभ्र हुई है। (हिरण्यवर्णा) सुवर्णकान्तिसे युक्त (गवां माता) गायोंकी मानो माताही (अह्नां नेत्री) दिनोंको ले चलनेवाली (सुदृशीक संदृक्) उत्तम देखने योग्य तेजसे युक्त उषा (अरोचि) चमचमाने लगी।

गवां माता उषा = गायोंकी माता आभावती उषा है। उषःकाल होते ही गौओंका दोहन होना प्रारंभ होता है।

[१५४] सूर्योदयमें गौएँ ।

पुरुहन्मा आङ्गिरसः । इन्द्रः । सतो बृहती (ऋ. ८।७०।४)

अषाळ्हमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥ ४२५ ॥

(उग्रम्) भीषण स्वरूपवाले (पृतनासु सासहिं) सेनाओंमें या युद्धोंमें शत्रुओंका पराभव करने वाले और (अषाळ्हं) जिसका पराभव शत्रु नहीं कर सकते ऐसे (यस्मिन् जायमाने) जिस प्रभु सूर्यके उदय होते समय (महीः उरुज्रयाः) बहुत बड़ी और विस्तृत वेगवाली (धेनवः) गौएँ तथा (द्यावः क्षामः) द्यावापृथिवी (सं अनोनवुः) ठीक प्रकार नमन कर चुकीं।

यस्मिन् जायमाने महीः धेनवः सं अनोनवुः = जो सूर्य उदय होनेके समय बड़ी गौएँ उसके साथ मिलित होती हैं। अथवा आदर प्रकट करती हैं।

[१५५] गोचर्मसे रथकी सुदृढता ।

गर्गो भारद्वाजः । रथः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ६।४७।२६; अथर्व ६।१२५।१)

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः संनद्धो असि वीळयस्वाऽऽस्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥ ४२६ ॥

हे (वनस्पते) जंगलके अधिपति बड़े वृक्षसे उत्पन्न रथ ! तू (अस्मत् सखा) हमारा मित्र (प्रतरणः) वृद्धिकर्ता तथा (सुवीरः वीड्वङ्गः हि भूयाः) अच्छा वीर एवं दृढ अंगवाला बन (गोभिः सं नद्धः) तू गाय या बैलके चमड़ेसे भलीभाँति बँधा हुआ है और हमें (वीळयस्व) सुदृढ बना दे तथा (ते आस्थाता) तुझपर चढ़ने वाला (जेत्वानि जयतु) जीतने योग्य वस्तुओंको जीत लेवे।

गोभिः सं नद्धः रथः = गौओंसे बंधा रथ अर्थात् गौके चर्मसे तथा चर्मकी पट्टियोंसे बंधा रथ।

गर्गो भारद्वाजः । रथः । जगती । (ऋ. ६।४७।२७; अथर्व ६।१२५।२)

दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥ ४२७ ॥

जो (दिवः पृथिव्याः ओजः परि उद्भृतं) मानो द्युलोक एवं भूलोकसे बल चारों ओरसे इकट्ठा किया और (वनस्पतिभ्यः सहः परि आभृतं) बड़े बड़े पेड़ोंसे सामर्थ्य बटोर लिया (अपां ओज्मानं) जलौघके वेगतुल्य (गोभिः परि आवृतं) गाय या बैलके चमड़ोंसे पूर्णतया घेरा हुआ (इन्द्रस्य वज्रं रथं) इन्द्रके वज्रतुल्य जो रथ है उसे (हविषा यज) हविके प्रदानसे पूजन कर।

प्रगाथो घौरः काण्वः । सोमः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ८।४८।५)

इमे मा पीता यशस उरुष्यवो रथं न गावः समनाह पर्वसु ।
ते मा रक्षन्तु विस्रसश्चरित्रादुत मा स्रामाद्यवयन्त्विन्दवः ॥ ४२८ ॥

(गावः रथं न) गायके या बैलके चमड़ेकी बनी हुई डोरियाँ जैसे रथको हर विभागमें सुदृढ बनाती हैं वैसे ही (इमे उरुष्यवः) ये रक्षा करनेवाले (यशसः पीताः) यश देनेवाले पीये हुए सोमरस (मा पर्वसु समनाह) मुझे पैर या जोड़ोंमें सुदृढ बनायें, (विस्रसः चरित्रात्) ढीली चालसे (ते मा रक्षन्तु) वे मुझे बचा दें (उत इन्दवः) और सोमरस (स्रामात् मा यवयन्तु) व्याधिसे मुझे अलग कर दें।

[१५६] गौके चर्मसे धनुष्यकी डोरी ।

पायुर्भारद्वाज । इषवः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ६।७५।११)

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सनद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥ ४३९ ॥

(अस्याः दन्तः) इस बाणका दाँतके सदृश भाग (मृगः सुपर्णं वस्ते) शत्रुओंको ढूँढता हुआ अच्छा पर या डैना धारण करता है (गोभिः संनद्धा) बैलके चमडेकी तांतसे बनाई धनुष्यकी डोरी (प्रसूता पतति) प्रेरित होनेपर जा गिरती है। (यत्र) जहाँ (नरः) नेता वीर लोग (सं द्रवन्ति च) इकट्ठे होकर और अलग अलग ढंगसे दौडते हैं (तत्र) उस युद्धभूमिमें (इषवः अस्मभ्यं शर्म यंसन्) बाण हमें सुख पहुँचा दें।

[१५७] गोचर्मसे वेष्टित ढोल ।

ब्रह्मा । वनस्पतिः दुन्दुभिः । अनुष्टुप् । (अथर्व ५।२१।३)

वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिर्विश्वगोत्र्यः ।
प्रत्रासममित्रेभ्यो वदाज्येनाभिघारितः ॥ ४४० ॥

(उस्रियाभिः संभृतः) गायोंके चमडोंसे भली भाँति गठित किया गया तू (वानस्पत्यः) पेडकी लकडीसे उत्पन्न है (विश्वगोत्र्यः) सब प्रकार भूमिका रक्षक और (आज्येन अभिघारितः) घृतसे सींचा हुआ तू (अमित्रेभ्यः प्रत्रासं वद) शत्रुओंके लिए कष्टोंकी घोषणा कर।

उस्रियाभिः संभृतः = गौओंसे अर्थात् चमडोंसे ढंका ढोल।

ब्रह्मा । वनस्पतिः दुन्दुभिः । जगती । (अथर्व. ५।२० ।१)

उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन् वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिः ।
वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान्त्सिंह इव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि ॥ ४४१ ॥

(उच्चैर्घोषः सत्वनायन्) जिसका ऊँचा शब्द है और जो बल बढाता है ऐसा (वानस्पत्यः दुन्दुभिः) पेडका बना हुआ वाद्यविशेष (उस्रियाभिः संभृतः) गायके चमडोंसे वेष्टित होकर (वाचं क्षुणुवानः) शब्द करता हुआ (सपत्नान् दमयन्) दुश्मनोंको दबाता हुआ और (सिंह इव जेष्यन्) सिंहके समान विजय चाहता हुआ यह ढोल (अभि संस्तनीहि) गरजता रहे।

उस्रिया = गाय गोचर्म बैलका चमडा। यह चमडा ढोलपर लगाया जाता है। यहाँ गौ वाचक उस्रिया पद गोचर्मके लिये प्रयुक्त हुआ है।

[१५८] धेनुरूपी वाणी

नेमो भार्गवः । वाक् त्रिष्टुप् । (ऋ. ८।१००।११)

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ॥ ४४२ ॥

(देवाः देवीं वाचं अजनयन्त) देवोंने दिव्य वाणीका सृजन किया (विश्वरूपाः पशवः तां वदन्ति) सभी रूप धारण करनेवाले पशु उसे बोलते हैं। (सा धेनुः वाक्) वह गोतुल्य वाणी (मन्द्रा)

आमम्ब्रायक (नः इर्म ऊर्म्ब दुहाना) हमारे लिए अन्न तथा बलका दोहन करती हुई (सुस्तुता) अच्छी भाँति प्रशंसित होनेपर (अस्मान् उप आ एतु) हमारे निकट चली आवे।
धेनुः वाक् = गौ वाणी है।

[१५९] घीसे कलिका शिक्षा।

बादरायणिः। अग्निः। विराट् पुरस्ताद्बृहती। (अथर्व० ७।११३।१)

इदमुग्राय बभ्रवे नमो यो अक्षेषु तनूवशी।
घृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृडातीदृशे ॥ ४४३ ॥

(बभ्रवे उग्राय) भूरे रंगवाले और भीषण स्वरूपवाले वीरके लिए (इदं नमः) यह नमन है (यः अक्षेषु तनूवशी) जो इन्द्रियोंके विषयमें शरीरको वशमें रखनेवाला है (सः नः ईदृशे मृडाति) वह हमें ऐसी दशामें भी सुख देता है इसलिए मैं (घृतेन कलिं शिक्षामि) घीके समान स्नेहसे कलह करनेवालोंको सिखाता हूँ।

[१६०] गौ और बछडा।

नोधा गौतमः। इन्द्रः। बृहती। (ऋ० ८।८८।१)

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ ४४४ ॥

(वः) तुम्हारे (तं) उस (ऋतीषहं) शत्रुओंको बाधा पहुँचानेवाले (दस्मं) देखने योग्य (वसोः अन्धसः मन्दानं) वर्तनमें रखे हुए सोम रसरूप अन्नका सेवन करके हर्षित होते हुए (इन्द्रं गीर्भिः) इन्द्रको वाणियोंसे (धेनवः स्वसरेषु न) गौएँ अपने निवासस्थानोंमें (वत्सं अभि) बछडेके सामने जाती हैं, वैसेही सामने जाकर (नवामहे) हम नमन करते हैं।
धेनवः स्वसरेषु वत्सं अभि = गायें अपने निवासस्थानोंमें अपने बछडेके पास जाती हैं।

गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः। अग्निः। जगती। (ऋ० २।२।२)

अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः।
दिव इवेदरतिर्मानुषा युगा क्षपो भासि पुरुवार संयतः ॥ ४४५ ॥

हे अग्ने! (स्वसरेषु) गोशालाओंमें (धेनवः वत्सं न) गायें जिस भाँति बछडेको चाहती हैं वैसे ही (नक्तीः उषसः) सायंकाल और उषःकाल (त्वां अभि ववाशिरे) तुझे चाहते हैं हे (पुरुवार) बहुतोंसे सराहना पा जानेवाले अग्ने! (संयतः) तू वेदीमें रहते समय (दिवः इव) प्रकाशके तुल्य (अरतिः इत्) गतिमान होते हुए (मानुषा युगा) मानवी जीवनमें दिन (क्षपः) या रात्रीके समय (आभासि) चारों ओर प्रकाशमान बना रहता है।
स्वसरेषु धेनवः वत्सं अभि ववाशिरे = अपनी गोशालामें रहनेवाली गौवें अपने बछडेको चाहती हैं।

इरिम्बिठिः काण्वः। अग्निः इर्वीति वा। गायत्री। (ऋ० ८। ९।१७)

ते जानत स्वमोक्यं१सं वत्सासो न मातृभिः।
मिथो नसन्त जामिभिः ॥ ४४६ ॥

(मातृभिः वत्सासः न) माताओंके साथ बछडे जिस तरह वहीं आसानीसे अपने घर चले जाते

हैं उसी प्रकार (ते स्वं ओक्यं सं जानत) वे अपने निवास स्थानको भली प्रकार जानते हैं और वे (मिथः जामिभिः नसंत) बन्धुओंसे परस्पर मिलते हैं।

मातृभिः वत्सासः स्वं ओक्यं संजानत = गोमाताओंके साथ बछडे अपने घरको पहचानते हैं।

तिरश्चीरांगिरसः । इन्द्रः । अनुष्टुप् । (ऋ ८।९५।१)

आ त्वा गिरो रथीरिवाऽस्थुः सुतेषु गिर्वणः ।

अभि त्वा समनूषतेन्द्र वत्सं न मातरः ॥ ४४७ ॥

हे (गिर्वणः इन्द्र) भाषणोंद्वारा प्रार्थना करने योग्य इन्द्र ! (रथीः इव) रथारूढ वीरके तुल्य (सुतेषु) सोमरसोंके निचोडनेपर (गिरः त्वा आतस्थुः) हमारे भाषण तेरे चारों ओर होने लगे और (वत्सं मातरः न) बछडेको देख जैसी गौएँ शब्द करती हैं, उसी प्रकार (त्वा अभि समनूषत) तुझे लक्ष्यमें रखकर प्रशंसा पर वाक्य कहने लगे।

मातरः वत्सं अभि = गोमातायें अपने बछडेके पास जाती हैं।

मधुच्छंदाः वैश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ ६।४५।२५)

इमा उ त्वा शतक्रतोऽभि प्र णोनुवुर्गिरः ।

इन्द्र वत्सं न मातरः ॥ ४४८ ॥

हे (शतक्रतो इन्द्र) सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! (इमाः गिरः) ये भाषण (त्वा अभि) तेरे सम्मुख (मातरः वत्सं न) गौएँ बछडेकी ओर जिस तरह वेगसे चली आती हैं वैसे ही (प्र णोनुवुः) अधिकतया झुक जाते हैं- हम विनम्र होकर गौएँ बछडेके समीप प्रेमभरी निगाहसे आती हैं उसी प्रकार तेरे सम्मुख खडे रहते हुए भाषण करने लगते हैं।

इन्द्राणी । सपत्नीबाधनम् । पङ्क्तिः । (ऋ १० ।१४५।६)

उप तेऽधां सहमानामभि त्वाधां सहीयसा ।

मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ॥ ४४९ ॥

(सहमानां) सौतका पराभव करनेवाली औषधिको (ते उप अधां) तेरे सिरहाने रख चुकी हूँ (सहीयसा त्वा अभि अधां) इस प्रबल वनस्पतिसे तुझको चारों ओर घेर लेती हूँ। (ते मनः) तेरा मन (मां अनु) मेरे पीछे उसी तरह (धावतु) दौडता चला आए जैसे (गौः वत्सं इव) गाय बछडेकी ओर दौडती आती है या (पथा वाः इव) राहपरसे जल बहता है।

ऐन्द्रो लवः । आत्मा (इन्द्रः) । गायत्री । (ऋ १० ।११९।४)

उप मा मतिरस्थित वाश्रा पुत्रमिव प्रियम् । कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ४५० ॥

(प्रियं पुत्रं वाश्रा इव) प्यारे बछडेके समीप जैसे रँभानेवाली गौ पहुँचती है वैसे ही (मतिः मा उप अस्थित) लोगोंकी स्तुति मेरे समीप आपहुँची है क्योंकि (सोमस्य कुवित् अपां इति) मैंने सोमरसका पान खूब किया है।

सिन्धुक्षित् प्रैयमेधः । नद्यः । जगती । (ऋ १० ।७५।४)

अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ।

राजेव युध्वा नयसि त्वमित्सिचौ यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि ॥ ४५१ ॥

हे (सिन्धो) नदी ! (शिशुं) बछडेके समीप (मातरः धेनवः) गो-माताएँ (वाश्राः पयसा इव) रँभाती हुई दूधसे युक्त होकर चली आती हैं वैसे ही (त्वा अभि अर्षन्ति) तेरे समीप अन्य

नदियाँ आती हैं (पत् आसां प्रयतां भम) और तू इन पहनेवाली नदियोंके आगे (जुवा यज्ञा इव) बढनेवाले नरेशके समान (इनक्षसि) व्याप्त होती है और (सिचौ स्व इव नयसि) सींचने वाले किनारोंको तूही जलसे बहा ले जाती है।

ब्रह्मा। अध्यात्मं। त्रिष्टुप्। (अथर्व ९।९।१७)

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्।

सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन्॥ ४५२॥

(एषा गौः अवः परेण परः अवरेण पदा वत्सं बिभ्रती) यह गाय निम्नस्थानवालेको दूरके पदसे और दूर वाले दूसरेको समीपवाले पदसे बछडेका धारण करती हुई (उत् अस्थात्) ऊपर उठती है (सा कद्रीची कं स्वित् अर्धं परा अगात्) वह कहांसे आती है और किस अर्धभागके समीप जाती है, यह (क स्वित् सूते) कहाँ प्रसूत होती है (अस्मिन् यूथे) इस झुंडमें तो नहीं होती है।
गौ वत्सं बिभ्रती = गाय बछडेका पोषण करती है।

पुरुहन्मा आंगिरसः। इन्द्र। पुरउष्णिक। (ऋ० ८।७०।१५)

कर्णगृह्या मघवा शौरदेव्यो वत्सं नस्त्रिभ्य आनयत्।

अजां सूरिर्न धातवे॥ ४५३॥

(सूरिः) विद्वान पुरुष (धातवे अजां न) पीनेके लिए बकरीको जैसे खिंचा जाता है वैसे ही (मघवा) ऐश्वर्यसंपन्न इन्द्र (नः) हमारे लिए (शौरदेव्यः) पुरुषसे प्राप्त की गयी गौएं जो कि (कर्णगृह्याः) कानमें पकडने योग्य हैं (वत्सं त्रिभ्यः आनयत्) बछडेसहित तीन लोगोंसे ले आए।
शौरदेव्यः कर्णगृह्याः वत्सं आनयत् = शूरके प्रयत्नसे किये योग्य कान पकडकर लाने योग्य गौएँ बछडेको अपने साथ लाती हैं।

त्रिशोक आंगिरस। (अर्धर्चः) विश्वेदेवाः (उत्तरार्ध) वरुणः। (ऋ० ८।६९।११)

अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत।

वरुण इदिह क्षयत्तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव॥ ४५४॥

(इन्द्रः अपात्) इन्द्रने सोमपान किया (अग्निः अपात्) अग्निने सोम पी लिया (विश्वे देवा अमत्सत) सभी देव हर्षित हुए, (वरुणः इत्) वरुण भी (इह क्षयत्) इधर निवास करे क्योंकि (संशिश्वरीः वत्सं इव) इकट्ठी होती हुई गायें जैसे बछडेके समीप जाती हैं वैसे ही (आपः तं अभ्यनूषत) जलोंने उसके समीप आकर प्रशंसा की है।

संशिश्वरी वत्सं अभ्यनूषत = बछडोंवाली गौएँ अपने बछडेके साथ रहती हैं।

मधुच्छन्दाः। अग्नः। गायत्री। (ऋ० ८।३१।७)

अस्य प्रजावती गृहेऽसश्चन्ती दिवे दिवे। इळा धेनुमती दुहे॥ ४५५॥

(अस्य गृहे) इसके घरपर (धेनुमती) गायोंसे युक्त (असश्चन्ती) इधर उधर न जाती हुई (दिवे दिवे) हर दिन (प्रजावती इळा दुहे) प्रजावाली गौ देवता दोहन करती है। दूध देती है।
धेनुमती प्रजावती इळा दिवे दिवे दुहे = जिसे गौएँ हुई हैं देसी बछडोंवाली गौ प्रतिदिन दूध देती है।

दीर्घतमा औचथ्यः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् । (ऋ. १।१६४।२७)

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।

दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ ४५६ ॥

(हिंकृण्वती) रँभाती हुई (वसूनां वसुपत्नी) धनोंकी स्वामिनी (मनसा वत्सं इच्छन्ती) मनःपूर्वक बछड़ेको चाहती हुई (अभि आगात्) हमारे सम्मुख आ गयी है (इयं अघ्न्या) यह अवध्य गौ (अश्विभ्यां) अश्विनौके लिए पर्याप्त मात्रामें (पयः दुहां) दूध दे डाले और (सा) यह गौ (महते सौभगाय वर्धतां) बड़े भारी सौभाग्यको पानेके लिए वर्धिंगत हो जाए।

१ मनसा वत्सं इच्छन्ती अघ्न्या अभ्यागात् = मनसे बछड़ेकी इच्छा करनेवाली अवध्य गौ हमारे पास आगयी है।

२ सा पयः दुहां = वह गौ दूध दुह कर देवे।

गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । मरुत् । जगती । (ऋ. २।३४।८)

यद्युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसोऽश्वान् रथेषु भग आ सुदानवः ।

धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे महीमिषम् ॥ ४५७ ॥

(यद् सु-दानवः) जब दानशूर तथा (रुक्मवक्षसः) छातीपर स्वर्णमाला धारण करनेहारे (मरुतः) वीर मरुत् (भगे अश्वान् रथेषु आ युञ्जते) ऐश्वर्य पानेके लिए रथोंमें घोड़े जोतते हैं, तब वे (धेनुः शिश्वे न) गौ अपने बछड़ेके लिए दूध देती है वैसेही (रातहविषे) हविष्यान्न देनेहारे (जनाय) लोगोंके लिए (स्वसरेषु) उनके ही खास घरोंमें ही (महीं इषं) बड़ी भारी अन्न समृद्धि (पिन्वते) पर्याप्त मात्रामें वे देते हैं।

धेनुः शिश्वे इषं पिन्वते = गौ अपने बछड़ेके लिये दूधकी धार पिलाती है।

दीर्घतमा औचथ्य । विश्वेदेवाः त्रिष्टुप् । (ऋ. १।१६४।२८)

गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ ।

सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ ४५८ ॥

(गौः मिषन्तं वत्सं) गाय आंख मूंदकर पड़े हुए अपने बछड़ेके (अनुमाप्य) समीप आकर (अमीमेत) शब्द करती है उसका (मूर्धानं मातवै) सरको चाटनेके लिए वह (हिङ् अकृणोत्) हिंकार करती है (सृक्वाणं घर्मं) दूध टपकाते हुए अपने गम थनोंको बछड़ा स्पर्श करे ऐसी (अभि वावशाना) चाह करनेवाली गाय (मायुं मिमाति) शब्द करती है और बछड़ेको (पयोभिः पयते) दूधकी धाराओंसे तृप्त करती है।

कुत्स आङ्गिरसः । अग्निः औपसोऽग्निर्वा । त्रिष्टुप् । (ऋ. १।९५।६)

उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।

स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥ ४५९ ॥

(यं) जिसे (दक्षिणतः) दाहिने हाथसे याजक (हविर्भिः) हविर्द्रव्योंसे (अञ्जन्ति) प्रदीप्त करते हैं (सः) वह अग्नि (दक्षाणां दक्षपतिः) बलिष्ठोंका भी अधिपति (बभूव) हो चुका है (भद्रे मेने न) दो सुन्दर महिलाओंने सेवा की जाय वैसे ही (उभे) ये दोनों प्रभा तथा रात्री इस अग्निकी (जोषयेते) सेवा कर रही हैं और (वाश्राः गावः न) रँभाती हुई गौओंके तुल्य जैसे वे

बछडोंके निकट दौडती जाती हैं वैसे ही (एवैः) अपने कर्मोंसे वे दोनों ही इस अग्निके समीप (उप तस्थुः) आजाती हैं ।

वाश्राः गाव उपतस्थु = रंभानेवाली गौवें अपने बछडोंके पास जाकर ठहरती हैं ।

वामदेवो गौतमः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् । (ऋ ४।५०।५)

स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।

बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत ।। ४६० ।।

(सः) वह बृहस्पति (सुष्टुभा) अच्छी स्तुतिसे युक्त (ऋक्वता गणेन) तेजस्वी समूहसे तथा (रवेण) बडे भारी शब्दगर्जनसे भी (फलिगं वलं रुरोज) मेघवाले बल असुरको तोड डाला। पश्चात् (हव्यसूदः) हव्य पदार्थोंकी निर्माणकर्त्री (वावशतीः उस्रियाः) और रंभाती हुई गायोंको (कनिक्रदत् उत् आजत्) सिंहगर्जना करते हुए प्राप्त किया ।

हव्यसूद वावशतीः उस्रियाः = हवनके लिये दूध देनेवाली रंभाती हुई गायें आपकी हैं ।

[१९१] गायका बछडेके प्रति प्रेम

काङ्कायनः । अघ्न्या । अनुष्टुप् । (अथर्व ६।७०।१)

यथा मांसं यथा सुरा, यथाऽक्षा अधिदेवने ।

यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।

एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ।। ४६१ ।।

(यथा मांसं) जैसे मांसमें (यथा सुरा) जैसे सुरामें (यथा अधिदेवने अक्षाः) जैसे जुएके पासोंमें (यथा वृषण्यतः पुंसः) जिस प्रकार बलवान्, कामी पुरुषका (मनः स्त्रियां निहन्यते) चित्त स्त्रीमें निरत होता है (अघ्न्ये) हे अवध्य गौ। (एवा ते मनः) उसी प्रकार तेरा चित्त (वत्से अधि निहन्यतां) बछडेमें लगा रहे ।

अङ्गिराः । १-२ आस्तारपङ्क्तिः ३ त्रिपादार्षी ४ त्रिष्टुब्गर्भा । १ २ ३ ४

प्रस्तारपंक्तिः । (अथर्व ४।३९।२-४-६-८)

पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः । सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।

आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ।। ४६२ ।।

अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वायुर्वत्सः । सा मे वायुना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।

आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ।। ४६३ ।।

द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः । सा म आदित्येन वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।

आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ।। ४६४ ।।

दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वत्सः । ता मे चन्द्रेण वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।

आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ।। ४६५ ।।

पृथिवी अन्तरिक्ष द्युलोक तथा दिशाएं गायोंके समान हैं और उनके बछडे अग्नि वायु आदित्य तथा चन्द्रमा हैं । ये सभी गायें अपने अपने उन बछडोंद्वारा मुझे अन्न और बल इच्छाके अनुसार दें तथा उत्तम दीर्घ जीवन सन्तान पुष्टि एवं धन प्रदान करें । मैं आत्मसमर्पण करता हूं ।

अथर्वा। चन्द्रमाः सांमनस्यम्। अनुष्टुप्। (अथर्व ३।३०।१)

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।

अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥ ४६६ ॥

(स-हृदयं) प्रेमपूर्ण हृदय (सां मनस्यं) मन शुभ विचारोंसे पूर्ण होना तथा (अ-विद्वेषं) प्यार स्वरूप निर्वैरता (वः कृणोमि) तुम्हारे लिए मैं करता हूँ। तुममेंसे (अन्य अन्यं अभि हर्यत) हर एक परस्परके ऊपर प्रीति करे (जातं वत्सं अघ्न्या इव) जैसे पैदा हुए बछड़के प्रति गौ प्यार दर्शाती है।

अथर्वा। कश्यपः सर्वे ऋषयो वा, छन्दांसि च, विराट्। पङ्क्तिः। (अथर्व ८।९।२)

यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः।

वत्सः कामदुघो विराजः स गुहा चक्रे तन्वः पराचैः ॥ ४६७ ॥

(त्रिभुजं योनिं कृत्वा) तीन भुजावाला आश्रयस्थान बनाकर (यः शयानः) जो विश्राम करने वाला अपने (महित्वा सलिलं अक्रन्दयत्) महत्त्वसे जलको प्रक्षुब्ध बनाता है (विराजः कामदुघः स वत्सः) तेजस्वी कामधेनुका यह बछड़ा (पराचैः गुहा) दूर और गुप्त (तन्वः चक्रे) शरीरोंको बनाता है।

विराजः कामदुघः स वत्सः = तेजस्वी कामधेनुका यह बछड़ा है।

[१९२] गायें गोशालामें जाकर बछड़ेको दूध देती हैं।

विरूप आङ्गिरसः। अग्निः। गायत्री। (ऋ. ८।४३।१७)

उत त्वाग्ने मम स्तुतो वाश्राय प्रति हर्यते। गोष्ठं गाव इवाशत ॥ ४६८ ॥

हे अग्ने! (मम स्तुतः) मेरी स्तुतियाँ (प्रति हर्यते वाश्राय) दूध चाहनेवाले बछड़के लिए (गावः गोष्ठं इव) गायें गोशालामें जैसी घुस जाती हैं वैसे (त्वा आ अशत) तुझको प्राप्त हुई हैं।

[१९३] बछड़ेको छोड़कर गौएँ दूर न चली जायँ।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः। अश्विनौ। ... । (ऋ. १।१२०।८)

मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः।

स्तनाभुजो अशिश्वीः ॥ ४६९ ॥

(अभिमित्रिणे कस्मै) किसी भी शत्रुके सामने तुम (नः) हमें (मा अभिधात) मत रखो। (स्तनाऽभुजः) अपने स्तनोंसे बछड़ेको पिलानेवाली (धेनवः) गायें (अ-शिश्वीः) बछड़ेको छोड़ कर (नः गृहेभ्यः) हमारे घरोंसे (अकुत्र) बहुत दूर कहीं भी (मा गुः) न चली जायँ ऐसा प्रबंध करो।

अ-कुत्र = जहाँ किसी औरका पता न हो ऐसे स्थानमें।

अ शिश्वीः = शिशुरहित बछड़ेको छोड़कर बछड़ोंसे बिछुड़कर गायें दूर अज्ञात स्थानमें घूमती न रहें।

[१६४] बछड़े और गायको ठीक बनाया।

वामदेवो गौतमः। ऋभवः। त्रिष्टुप्। (ऋ ४।३३।४)

यत्संवत्समृभवो गामरक्षन्यत्संवत्समृभवो मा अपिंशन्।

यत्संवत्समभरन्भासो अस्यास्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः॥ ४७० ॥

(यत् ऋभवः) चूँकि ऋभुओंने (संवत्सं गां अरक्षन्) बछड़ेके सहित गायकी रक्षा की थी (यत् ऋभवः) और जो ऋभुओंने (संवत्सं मा अपिंशन्) बछड़ेसे युक्त गौके विभिन्न अंगोंको ठीक ठीक बनाया था (यत् संवत्सं) तथा जो बछड़ेके साथ (अस्याः भासः अभरन्) इस गायको तेजस्वी बना दिया था, (ताभिः शमीभिः) ऐसे उन शक्तिपूर्ण कार्योंसे (अमृतत्वं आशुः) अमर पदको पहुंच गये।

ऋभुदेवोंने शक्तिकर्मसे उत्तम हृष्ट पुष्ट सुन्दर गाय बना दी और बछड़ेको दूध पीनेके लिये उस माताका दर्शन किया। इस तरह बछड़ा और गायका सरक्षण ऋभुदेवोंने किया।

[१६५] इन्द्रने बिछुड़े गौओंको बछड़ोंके साथ युक्त किया।

वसुक्र ऐन्द्रः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ [illegible])

समत्र गावोऽभितोऽनवन्तेहेह वत्सैर्वियुता यदासन्।

सं ता इन्द्रो असृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन्॥ ४७१ ॥

(यत् अत्र गावः) चूँकि यहांपर गौएँ (वत्सैः वियुताः) बछड़ोंसे बिछुडी हुई (अभितः) चारों ओर (इह इह) इधर उधर (सं अनवन्त) भली भांति इकट्ठी होकर झुक झुककर दौड़ने लगीं (इन्द्रः ताः सं असृजत्) इन्द्रने उन्हें बछड़ोंसे ठीक प्रकार जोड दिया (यत् सुषुताः सोमासः) जब ठीक तरह निचोड़े हुए सोमरस (ईं अस्य शाकैः अमन्दन्) इसे इसके समर्थ वीरोंके साथ हर्षित कर चुके।

सब गौओंको अपने अपने बछड़ोंके साथ संयुक्त कर दिया।

[१६६] गायें ग्राममें आती हैं, बछड़ेके पास पहुँचती है।

अर्चन् हैरण्यस्तूपः। सविता। त्रिष्टुप्। (ऋ १०।१४९।४)

गाव इव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वान्वाश्रेव वत्सं सुमना दुहाना।

पतिरिव जायामभि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विश्ववारः॥ ४७२ ॥

(दिवः धर्ता) द्युलोकका धारणकर्ता (विश्ववारः सविता) सबके स्वीकारणीय सविता (गावः ग्रामं इव) गायें जिस तरह गांवमें आती हैं या (अश्वान् यूयुधिः इव) घोड़ोंके निकट योद्धा जैसे आता है या (सुमनाः दुहाना वाश्रा इव) अच्छी मनवाली दूध देनेवाली और रंभानेवाली गाय (वत्सं इव) बछड़ेके समीप जिस प्रकार आती है वैसे ही और (जायां पतिः इव) पत्नीके समीप पति जैसे ही आता है उसी प्रकार (नः अभि नि एतु) हमें अत्यन्त अधिकतया प्राप्त हो।

१ गावः ग्रामं = गायें ग्राममें आती हैं।

२ दुहाना वाश्राः गावः वत्सं = दूध देनेवाली रंभानेवाली गौवें अपने बछड़ेके पास जाती हैं।

[१६७] रँभानेवाली गौ।

हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। इन्द्रः। त्रिष्टुप् (ऋ० १।३२।२)

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।

वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥ ४७३ ॥

(पर्वते शिश्रियाणं) पर्वतका आसरा लेकर रहनेवाले (अहिं) शत्रुपर (अहन्) प्रहार किया और उस आघात करनेवाले (त्वष्टा) कारीगरने (अस्मै) इस वीरके लिए (वज्रं ततक्ष) वज्र तैयार कर रखा। तब (स्यन्दमानाः आपः) बहनेवाले जलसमूह (वाश्राः धेनवः इव) रँभानेवाली गौओंके तुल्य (अञ्जः समुद्रं अवजग्मुः) सीधी राहसे समुद्रतक पहुँच गये।

वाश्राः धेनवः = रँभाती हुई गौएँ अपने बछडेके लिए प्यारसे गायें रँभाती हुई जाती हैं। इसमें कविने गौके प्यारका बयान किया है।

कण्वो घौरः। मरुतः। गायत्री (ऋ० १।३८।८)

वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति। यदेषां वृष्टिरसर्जि ॥ ४७४ ॥

(यत् एषां वृष्टिः असर्जि) जब ये वर्षा करते हैं तब (वाश्रा इव) रँभानेवाली गौओंके तुल्य (विद्युत् मिमाति) बिजली बडा भारी शब्द करती है और (माता वत्सं न) माता जैसे बालकको अपने समीप सुदृढ रूपसे रखती है, वैसे ही वह बिजली मेघोंको (सिषक्ति) समीप करती है मेघोंसे लिपट जाती है।

रँभानेवाली गौ बछडेके निकट जाती है वैसे ही गरजनेवाली बिजली मेघोंमें संचार करती है।

[१६८] गौ अपने जरायुको खाती है।

अथर्वा। अग्निः। अनुष्टुप् (अथर्व ६।४९।१)

न हि ते अग्ने तन्वः क्रूरमानंश मर्त्यः ।

कपिर्बभस्ति तेजनं स्वं जरायु गौरिव ॥ ४७५ ॥

हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप देव ! (ते तन्वः क्रूरं) तेरे शरीरकी क्रूरताको (मर्त्यः नहि आनंश) मानव स्वीकार नहीं सकता (कपिः तेजनं बभस्ति) मेघ प्रकाशको धारण करता है और (गौः स्वं जरायु इव) गाय अपने जरायुको जैसे खाती है।

गाय अपनी जरायुको झिल्लीको खाती है। यह झिल्लीका खाना गायके लिये हानिकारक समझा जाता है। इसलिये गौकी प्रसूति होते ही झिल्ली सिरमेपर रखे भूमिमें गाड देते हैं। आजतक यहां ऐसी प्रथा है।

[१६९] बछडोंवाली गायका शब्द।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। मण्डूकाः (पर्जन्यः)। त्रिष्टुप् (ऋ० ७।१०३।२)

दिव्या आपो अभि यदेनमायन्दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम् ।

गवामह न मायुर्वत्सिनीनां मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति ॥ ४७६ ॥

(यत्) जब (शुष्कं दृतिं न) सूखे चर्मपात्रकी तरह (सरसी शयानं एनं) तालावमें सोये हुए इस मेंढकके पास (दिव्याः आपः अभि आयन्) द्युलोकके जल समीप पहुँच गये तब (वत्सिनीनां गवां मायुः न) बछडेवाली गायोंके शब्दके समान (मंडूकानां वग्नुः) मेंढकोंकी आवाज (अत्र सं एति अह) यहाँपर ठीक प्रकार आती है।

[१७०] गौ प्रेमका प्रतीक है

हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (ऋ० १।३२।९)

नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।

उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद् दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥ ४७७ ॥

(वृत्रपुत्रा नीचावया अभवत्) वृत्रकी माता वृत्रके शरीरपर गिरपड़ी तब (इन्द्रः अव वध जभार) इन्द्रने उसके शरीरके नीचे हथियारसे मारा उस समय (सूः उत्तरा पुत्रः अधरः आसीत्) माता ऊपर और पुत्र नीचे गिरपड़ा था (धेनुः सहवत्सा न) गौ जिस प्रकार अपने बछड़ेके समीप ही रहती है उसी प्रकार (दानुः शये) यह दानवी माता अपने लड़केके समीप पड़ी थी।

इन्द्र और वृत्रके युद्धमें वज्रके आघातसे वृत्रको बचानेके लिए वृत्रकी माताने अपने शरीरसे पुत्रको ढंक दिया था तब वृत्र नीचे और उसकी माता उसके ऊपर पड़ी थी। इन्द्रने नीचेसे वज्र मारा और माताको क्षति न पहुँचा कर केवल वृत्रकोही वध कर डाला। कवि बतलाता है कि जैसे गौ अपने बछड़ेके समीप जाकर खड़ी रहती है वैसे ही वृत्रकी माता वृत्रके पास जा पड़ी थी।

वृत्रकी माताने जो प्यार दर्शाया उसे गायके बछड़ेके प्रति प्रेमकी उपमा दे दी है।

[१७१] स्तन पीनेवाला बछड़ा ।

यमः । स्वर्गः ओदनः अग्निः । त्रिष्टुप् (अथर्व० १२।३।३७)

उप स्तृणीहि प्रथय पुरस्ताद् घृतेन पात्रमभिघारयैतत् ।

वाश्रेवोस्रा तरुणं स्तनस्युमिमं देवासो अभिहिङ्कृणोत ॥ ४७८ ॥

(उप स्तृणीहि पुरस्तात् प्रथय) घी डालो आगे फैलाओ (घृतेन एतत् पात्रं अभिघारय) घीसे यह पात्र भर दो। हे देवो ! (स्तनस्युं तरुणं वाश्रा उस्रा इव) स्तन पीनेवाले बछड़ेका रँभानेवाली गौ जैसे चाहती है वैसे ही देव (इमं अभि हिंकृणोत) प्रसन्नताका शब्द करते हुए स्वीकार करें।

[१७२] गौकी रक्षा करना मानो सर्वस्वकी रक्षा करना है।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । अग्निः । गायत्री (ऋ० १।१।८)

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ॥ ४७९ ॥

(अ-ध्वराणां राजन्त) यज्ञोंके प्रकाशक (ऋतस्य गोपां) यज्ञके संरक्षक (दीदिविं) तेजस्वी और (स्वे दमे वर्धमान) अपने स्थानमें बढ़नेवाला यह अग्नि देव है।

यहांपर गो-पा शब्द रक्षण कर्ता इस अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। प्रारंभमें यह शब्द गौका रक्षक इस अर्थको व्यक्त करनेके लिए ही व्यवहृत हुआ था ऐसा दीख पड़ता है। गौकी रक्षा ही मानो सर्वस्वकी रक्षा है ऐसा अर्थ जब प्रचलित हुआ तब केवल रक्षणकर्ताके लिए भी इस शब्दका उपयोग होने लगा ऐसा ज्ञात पड़ता है।

यहां गौका विश्वरूप प्रकाश देखो। विश्वरूप ही गोरूप है अतः गौकी रक्षा सबकी रक्षा है अर्थात् गो पाः केवल गौका रक्षक नहीं है अपि तु सर्वस्वका रक्षक ही है।

नाभाकः काण्वः । वरुणः । महापङ्क्तिः (ऋ ८।४१।४)

यः ककुभो नि धारयः पृथिव्यामधि दर्शतः ।

स माता पूर्व्यं पदं तद्वरुणस्य सप्त्यं स हि गोपा इवेर्यो नभन्तामन्यके समे ॥ ४८० ॥

(यः) जो (पृथिव्यां अधि दर्शतः) भूमिपर देखने योग्य होकर (ककुभः नि धारयः) दिशाओंको ठीक रख चुका है (सः माता) वह निर्माता है। (तत् वरुणस्य पूर्व्यं पदं) वह वरुणका पुराना पद (सप्त्यं) समीप जानेयोग्य है क्योंकि (सः हि इर्यः गोपाः इव) वह सचमुच प्रभु तथा गोपालकके समान रक्षणकर्ता है (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी इसके सामने झुक जायँ।

सः गोपाः = वह गौ रक्षक है अर्थात् सर्वस्व रक्षक है।

कुत्स आंगिरसः। द्रविणोदा अग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ १।९६।४)

स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिर्विदद्‌ गातुं तनयाय स्वर्वित् ।

विशां गोपा जनिता रोदस्योर्देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ४८१ ॥

(सः मातरिश्वा) वह अन्तरिक्षमें व्यापक (पुरुवार-पुष्टिः) अनेक प्रकारके पोषण सामर्थ्योंसे युक्त (स्वः वित्) अपना तेज बढानेहारा (विशां गोपाः) सभी मानवोंका पालक तथा (रोदस्योः जनिता) द्यावा पृथिवीका उत्पादक अग्नि (तनयाय) हमारे पुत्रोंके लिए (गातुं विदत्) अच्छा मार्ग प्राप्त करा देता है। इसलिए इस (द्रविणः दां अग्निं) धन देनेहारे अग्निको (देवा धारयन्) सभी देवोंने धारण किया है।

विशां गोपाः = सभी मानवोंकि गौओंका संरक्षक मानव जातिके सर्वस्वका रक्षणकर्ता । प्रजाओंका रक्षक।

कुत्स आंगिरसः । अग्निः । जगती । (ऋ १।९४।५)

विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः ।

चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४८२ ॥

यह (विशां गोपाः) समूची प्रजाका संरक्षक है (अस्य) इसकी सहायतासे (जन्तवः) सभी प्राणी (यत् च) जिनमें (द्विपत्) द्विपाद् (उत) और (चतुः पत्) चौपाये भी समाये जाते हैं वे (अक्तुभिः) रात्रीके समय (चरन्ति) संचार कर सकते हैं। (अग्ने) हे अग्नि देव ! (चित्रः) पूजनीय तथा (प्रकेतः) पथ प्रदर्शक तू (उषसः) उषा देवीकी अपेक्षा (महान्) बहुत बडा (असि) है। इसीलिए (तव सख्ये) तेरी मित्रताके कारण (वयं मा रिषाम) हमारा कभी नाश न हो हमें क्षति न उठानी पडे।

विशां गोपा = प्रजाकी गौओंका रक्षण करनेवाला अग्नि है। यही प्रजाजनोंका संरक्षक है क्योंकि जो गौओंका संरक्षक है वही सर्वस्वका संरक्षक है।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः। अश्विनौ। विराड्-गायत्री। (ऋ १।१२०।७)

युवं ह्यास्तं महो रन् युवं वा यन्निरततंसतम् ।

ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः ॥ ४८३ ॥

हे (वसू) बसानेहारे देवो ! (युवं) तुम (महः रन्) विपुल धन देनेवाले (आस्तं) हो (युवं हि) तुमही (निः अततंसतं) सुशोभित करनेवाले हो इसलिए (ता युवां) ऐसे विख्यात तुम (नः सु-गोपा स्यातं) हमारे उत्तम संरक्षक बनो। (अघायोः वृकात्) पापी हिंसकसे (नः पातम्) हमें सुरक्षित रखो।

अश्विनीकुमार धन देनेवाले एवं शोभा बढानेवाले हैं। वे हमारी गौएँ सुरक्षित रखें, हमारे सर्वस्वका भली-भाँति परिपालन करें और पापी मनुष्यों तथा हिंसक पशुओंसे रक्षा करें। यहांका 'सु-गो-पाः' पद गौकी उत्तम रक्षा करनेवाला इस अर्थमें सूक्तमें या जो उत्तम रक्षक इस अर्थमें यहां आया है। क्योंकि सर्वस्वकी रक्षा ही वास्तविक गो-रक्षा है।

गोतमो राहूगणः। मरुतः। गायत्री। (ऋ० १।८६।१)

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः ॥४८४॥

हे (विमहसः मरुतः) विलक्षण तेजस्वी वीर सैनिको! (दिवः यस्य हि क्षये पाथ) द्युलोकमेंसे आगमन करके जिसके घरमें तुम सोमरस पीते हो (सः सुगोपातमः जनः) वह पुरुष गौओंका भलीभाँति पालन कर्ता होता है।

जो गौओंका उत्तम प्रकारसे पालन करता है वही सर्वस्वका ठीक ठीक संरक्षण करनेवाला है।

इस और पूर्वोक्त मन्त्रोंमें गो-पाः, सु-गो-पाः, सु-गो-पा-तमः ये तीन पद आये हैं। इनके क्रमशः अर्थ 'गो-रक्षक, उत्तम-गो-रक्षक, अत्यंत-उत्तम-गोरक्षक' ये हैं। परंतु यहां ये पद सर्वस्वकी उत्तम रक्षा करनेवालेके अर्थमें आये हैं। इन पदोंसे यह बात स्पष्ट हो रही है कि गोरक्षणका अर्थ ही सर्वस्वरक्षण है।

नोधा गौतमः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।६१।१०)

अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद्वज्रेण वृत्रमिन्द्रः।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥ ४८५॥

(अस्य इत् शवसा) इस वीरके ही बलसे (शुषन्तं वृत्रं) सुखानेवाले वृत्रको (इन्द्रः वज्रेण वि वृश्चत्) इन्द्रने अपने वज्रसे छिन्नभिन्न कर डाला। (गाः न) गौओंके तुल्य (व्राणाः) आवरणीय तथा (अवनीः) रक्षणीय जलप्रवाह (सचेताः) विचारपूर्वक (श्रवः अभि) अन्नप्राप्तिके उद्देश्यसे (दावने) दाताके लिए (अमुञ्चत्) उन्मुक्त किये। जिस प्रकार सबको अन्न मिले उस प्रकार कार्य किया।

व्राणाः अवनीः गाः गौओंको गोशालामें रखना चाहिए और उनका संरक्षण करना चाहिए। कभी उन्हें असुरक्षित दशामें नहीं छोडना चाहिए। (व्राणाः अवनीः, गाः) वरणीय स्वीकार करने योग्य सुरक्षित रखने योग्य गौएं हैं।

अयास्य आङ्गिरसः। बृहस्पतिः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।६७।६)

इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत्पणिमा गा अमुष्णात् ॥ ४८६॥

(दुघानां रक्षितारं) दूध देनेवाली गायोंको बचाते हुए (वलं इन्द्रः) वलको इन्द्रने (करेण इव) मानो हाथमें रखे हथियारसे ही (रवेण वि चकर्त) घोर शब्दसे टुकडे टुकडे करडाला पश्चात् (स्वेद अंजिभिः) परिश्रमके कारण पसीनेकी बूंदोंके त्रिमहोंसे आभूषणवत् धारण कर लिया हो ऐसे मरुतोंसे (आशिरं इच्छमानः) संयुक्त होनेकी इच्छा करता हुआ अथवा सोमरस देनेकी इच्छा करता हुआ वह (पणिं अरोदयत्) पणिको रुला चुका और (गाः आ अमुष्णात्) गायोंको पूर्णतया वापस लाया। शत्रुसे इन्द्रने गायें वापस लायीं।

दुघानां रक्षिता = दुही जानेवाली दूध देनेवाली गायोंका संरक्षण करनेवाला।

ऋषभो वैराजः । सपत्नघ्नम् । अनुष्टुप् । (ऋ० १ । १६६।१)

ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम् ।

हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ॥ ४८७ ॥

(समानानां) जो समान अवस्थामें रहते हैं उनके मध्य (मा ऋषभं) मुझको एक बैल जैसे प्रमुख बनाओ तथा (सपत्नानां) जो एक जाति या परिवारमें उत्पन्न होनेपर भी ऊपरचढ़ा करते हैं उनका (विषासहिं) सफलतापूर्वक विशेषरीतिसे पराभव करनेवाला करो (शत्रूणां हन्तारं) शत्रुवध करनेवाला तथा (गवां गोपतिं) अनेक गायोंका पालनकर्ता बनाओ और (विराजं कृधि) विशेषतया विराजमान मुझे बनाओ ।

यहां ऋषभं समानानां समान अवस्थामें रहनेवालोंमें मुझे बैल बनाओ इसका अर्थ 'प्रमुख मुखिया अग्रज अथवा श्रेष्ठ' बनाओ ऐसा है । बैल बनना यह अपना उत्तम सम्मान होनेका सूचक वाक्य है ।

गवां गोपतिः गायोंका पालन करनेहारा, गाइयोंका गोपालक इसका अर्थ गाइयोंके सर्वस्वकी सुरक्षा करनेवाला है ।

सव्य आंगिरसः । इन्द्रो वैकुण्ठः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १ । १०।१)

जगृभ्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।

विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ४८८ ॥

हे (शूर वसूनां वसुपते इन्द्र !) वीर और सभी धनोंके अधिपति इन्द्र ! (वसूयवः) धनकी कामना करनेहारे हम (ते दक्षिणं हस्तं जगृभ्म) तेरे दाहिने हाथको पकड चुके हैं क्योंकि (त्वा गोनां गोपतिं विद्म हि) तुझको गायोंके अधिपतिके रूपमें हम जानते ही हैं, इसलिए (अस्मभ्य वृषणं चित्रं रयिं दाः) हमें इच्छापूर्ति करनेकी क्षमता रखनेहारे अद्भुत धन दे दो ।

गोनां गोपतिं = गौओंका परिपालन करनेहारा गाइयोंके सर्वस्वका संरक्षणकर्ता ।

पणयोऽसुराः । सरमा देवता । त्रिष्टुप् । (ऋ० १० । १०८।३)

कीदृङ्ङिन्द्रः सरमे का दृशीका यस्येदं दूतीरसरः पराकात् ।

आ च गच्छान्मित्रमेना दधामाऽथा गवां गोपतिर्नो भवाति ॥ ४८९ ॥

हे सरमे ! (इन्द्रः कीदृङ्) इन्द्र भला किस प्रकारका है और (का दृशीका) उसकी दृष्टि कैसी है जो (यस्य दूती) तू जिसकी दूति बनकर (पराकात् इदं असरः) सुदूर स्थानसे यहांतक तू भागी है; वह (आ गच्छात् च) चली आए (एनं मित्रं दधाम) इसे मित्रके रूपमें रखेंगे (अथ नः गवां) पश्चात् हमारे गायोंका (गोपतिः भवाति) गोपालक या गो स्वामी बन जाए ।

गवां गोपतिः = गौओंका संरक्षक ।

प्रगाथो घौरः काण्वः । इन्द्रः । बृहती । (ऋ० ८।६२।७)

विश्वे त इन्द्र वीर्यं देवा अनु क्रतुं ददुः ।

भुवो विश्वस्य गोपतिः पुरुष्टुत भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ४९० ॥

हे (पुरुष्टुत इन्द्र) बहुतोंद्वारा प्रशंसित इन्द्र ! (विश्वे देवाः) सभी देव (ते वीर्यं क्रतुं अनु) तेरी शूरता और कार्यके अनुकूल सहायता (ददुः) देने लगे क्योंकि तू (विश्वस्य भुवः गोपतिः) सारे संसारके लिए गौओंका पालक है इसीलिये कहते हैं कि (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके दान हितकारक हैं ।

विश्वस्य गोप्ता गोपतिः = विश्वके स्वामिका गोपालक, अर्थात् सबके सर्वस्वका संरक्षक। यहां गोपतिका प्रयोग सर्वस्व रक्षक अर्थमें हुआ है।

कुत्स आंगिरसः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।५३।११)

य उदृचीन्द्र देवगोपा: सखायस्ते शिवतमा असाम।

त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ४९१ ॥

हे (इन्द्र) इन्द्र ! (उदृचि) यज्ञ समाप्तिके उपरान्त (ये देवगोपाः) जिन्हें देवताओंने सुरक्षित रखा है (ते) वेसे वे हम (शिवतमाः सखायः असाम) एक दूसरेके हितकर्ता एवं मित्र होकर रहें, उसी प्रकार हम (त्वां) तुझे (स्तोषाम) हर्षित करें क्योंकि (त्वया) तेरे ही कारण (सुवीराः) अच्छी वीर संततिका सृजन होता है और (द्राघीयः आयुः) दीर्घ जीवन (प्रतरं) अधिक विस्तृत करके (दधानाः) धारण कर सकते हैं।

देव-गो-पाः = देवोंकी गौओंका संरक्षक देवताओंका संरक्षक। गौका संरक्षण करना मानो सर्वस्वका रक्षण करना है।

मृगुः। बैकङ्कतमणिः। ककुम्मती। (अथर्व० ५।९।१)

परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि।

अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे ॥ ४९२॥

तू (पुरुषाणां परिपाणं) पुरुषोंका रक्षक (गवां परिपाणं असि) गायोंका रक्षक है (अर्वतां अश्वानां) वेगवान् तथा गतिशील घोड़ोंकी (परिपाणाय तस्थिषे) रक्षाके लिए खड़ा रहता है।

गवां परिपाणः = गौओंका रक्षण करनेवाला।

मेधातिथिः। अग्निः। गायत्री। (ऋ० १।१२।१-२)

यया गा आकरामहे सेनयाग्ने तवोत्या। तां नो हिन्व मघत्तये ॥ ४९३ ॥

आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम्। अङ्धि खं वर्तया पणिम् ॥ ४९४ ॥

हे अग्ने ! (तव यया ऊत्या सेनया) तेरी जिस संरक्षण योजना एवं सेनासे (गाः आकरामहे) गायोंको पाते हैं (तां) उसे (नः मघत्तये हिन्व) हमारी ऐश्वर्य संपन्नताके लिए प्रेरित कर।

हे अग्ने ! (पृथुं) विस्तीर्ण (स्थूरं) विशाल (गोमन्तं अश्विनं रयिं) गायों तथा घोड़ोंसे पूर्ण धनवैभवको (आभर) लादो (खं अङ्धि) आकाशको उससे भर दे और (पणिं वर्तय) पणि नामक असुरको विनष्ट कर।

ऊत्या गाः आकरामहे = संरक्षण करनेकी शक्तिसे हम गौओंके झुण्डोंको इकट्ठा करते हैं, अर्थात् इकट्ठा करके उनको सुरक्षित रखते हैं।

[१७३] कबूतर गायोंके लिये हितकारी हो।

कपोतो नैर्ऋतः। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।१६५।३)

हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्र्यां पदं कृणुते अग्निधाने।

शं नो गोभ्यश्च पुरुषेभ्यश्चास्तु मा नो हिंसीदिह देवाः कपोतः ॥ ४९५ ॥

(पक्षिणी हेतिः) डैनोंसे युक्त हथियार (अस्मान् न दभाति) हमें नहीं दबाता है और (आष्ट्र्यां अग्नि-धाने पदं कृणुते) अग्नि रखनेके स्थानमें पैर रख लेता है (नः गोभ्यः च पुरुषेभ्यः

च शं अस्तु) हमारे गायोंके पुत्रको तथा पुरुषोंको हित प्राप्त हो । हे देवो ! (इह मा कपोत मा हिंसीत्) इधर हमें कबूतर हिंसित न करे ।

गोभ्य: शं = गौओंके लिये यह चिन्ह कल्याणकारक हो ।

[१७४] गौका पालन करनेवाला पर्वत

गृत्समदः । शौनकः । बृहस्पतिः । जगती । (ऋ० २।२३।१८)

तव श्रिये व्यजिहीत पर्वतो गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः ।

इन्द्रेण युजा तमसा परीवृतं बृहस्पते निरपामौब्जो अर्णवम् ॥ ४९६ ॥

हे (अङ्गिरः बृहस्पते) अंगिरस बृहस्पते ! (यत्) जिस समय (इन्द्रेण युजा) इन्द्रकी सहाय-तासे तू (गवां गोत्रं उत्-असृजः) गायोंके रक्षण करनेहारे पर्वतको उन्मुक्त किया और (तमसा परिवृत) अंधेरेसे घिरे हुए (अपां अर्णवं) जल समूहोंके प्रवाहको (नि औब्जः) नीची जगहसे बहने दिया उस समय (पर्वतः तव श्रिये) पहाड तेरी शोभा बढानेके लिए (वि अजिहीत) मुक्त हो गया ।

बृहस्पतिने इन्द्रकी सहायतासे गौके पोषणार्थ तृण देनेहारे पर्वतको शत्रुके अधिकारसे छुडा लिया और गौएं चरा करनेके लिए निर्भयतापूर्वक जाने लगीं । अंधेरेसे व्याप्त जलप्रवाह शत्रुके अधिकारसे छुडाकर सबके लिए खुले कर दिये । जब जल बिना किसी रुकावटके बहने लगा उस समय शत्रुओंके छक्के छूट जानेसे इस वीरका पराक्रम चारों ओर विख्यात हुआ ।

गवां गोत्रं उदसृजः = गौओंके लिये (गो-त्रं) गौओंका पालनकर्ता पर्वत शत्रुके अधिकारसे छुडा लिया । पर्वत गौओंका पालन करता है पर्वतपर घास उगता है जिससे गौओंकी पालना होती है ।

गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः । जगती । (ऋ० २।१७।१)

तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत शुष्मा यदस्य प्रत्नथोदीरते ।

विश्वा यद् गोत्रा सहसा परीवृता मदे सोमस्य दृंहितान्यैरयत् ॥ ४९७ ॥

(यत् अस्य शुष्माः) चूंकि इस इन्द्रके शोषण करनेवाले बल (प्रत्नथा उत्-ईरते) पहले जैसे ही प्रकट हुए, (यत् विश्वा) जिसमें सभी (गो-त्रा) पर्वत (परिवृता दृंहितानि) घेरकर सुदृढ बना दिये और (सोमस्य मदे) सोमके आनन्दमें (सहसा) एकाएक (ऐरयत्) शत्रुको हटाकर दूर फेंक दिया (तत् अस्मै) अतः इस इन्द्रके लिए (अङ्गिरस्वत्) अंगिरसोंके समान (नव्यं अर्चत) नये स्तोत्रद्वारा गायन पूजन करते रहो ।

गोत्र = गौकी रक्षा करनेहारा पर्वत अथवा मेघ । तृण देकर पर्वत और जल देकर मेघ गौका संरक्षण करता है ।

[१७५] गोरक्षक राष्ट्रका स्वराट् है ।

बृहद्दिवो अथर्वा । वरुणः । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ५।२।८)

इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।

महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ॥ ४९८ ॥

(अग्रियः स्वः-षाः बृहद्दिवः) पहले आत्मिक प्रकाशसे युक्त महान् तेजस्वी बृहद्दिव नामक ऋषिने (शूषं इमा ब्रह्म) बलयुक्त यह स्तोत्र (इन्द्राय कृणवत्) प्रभुके लिए किया। यह इन्द्र (महः गो+त्रस्य स्वराजा क्षयति) बडे गोरक्षक राष्ट्रका स्वाधीन राजा होकर रहता है। (तुरः तप-स्वान् चित् विश्वं अर्णवत्) वेगवान्, तपस्वी होकर विश्वमें भ्रमण करता है ।

गावस्य स्वराज्या सपर्यति = गौओंका संरक्षण करनेवाले राष्ट्रका स्वराट् होकर रहना, यह गौकी उत्तम रक्षा करनेसे ही होता है।

[१७६] गौओंका सामर्थ्य स्वराज्यके लिए अनुकूल है।

गोतमो राहूगणः। इन्द्रः। पंक्तिः। (ऋ. १।८४।११)

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।

प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ ४९९ ॥

(अस्य ताः पृशनायुवः) इस इन्द्रसे मिलनेकी चाह रखनेवाली वे (पृश्नयः) गौएं (सोमं श्रीणन्ति) सोममें अपना दूध मिलाती हैं (इन्द्रस्य प्रिया धेनवः) इन्द्रकी प्यारी वे गौएं ही (सायकं वज्रं हिन्वन्ति) शत्रु विध्वंसक वज्रको दुश्मनपर फेंक देती हैं (वस्वीः) निवासमें सहायता देनेवाली वे गौएं (स्वराज्यं अनु) स्वराज्यके अनुकूल हो चुकी हैं।

१ पृश्नयः सोमं श्रीणन्ति = गौएं सोमरसमें अपना दूध मिला देती हैं [सोमरसमें गौके दूधकी मिलावट होती है]

१ धेनवः सायकं वज्रं हिन्वन्ति = गायें मारक शक्तिसे युक्त वज्रको शत्रुपर फेंक देती हैं [इन्द्र गौका दूध सोमरसमें मिश्रित करके पीता है इससे वह प्रबल बनता है, और दुश्मनपर विध्वंसक वज्र फेंक देता है। यह प्रबलता तथा शक्तिसंपन्नता गोदुग्ध सेवनसे पैदा होती है इसलिए कहा है कि गौएं स्वयं वज्र फेंक देती हैं। वास्तवमें इन्द्रकी शूरता नहीं अपि तु गोदुग्धमें छिपी पड़ी शक्ति ही इन्द्रमें व्यक्त हुई है।

१ वस्वीः स्वराज्यं अनु = गौएं सभी प्राणियोंके उपनिवेश बसानेमें सहायता देनेवाली हैं और वे (स्वराज्यं अनु) स्वराज्यके लिए अनुकूल सामर्थ्य बढानेवाली हैं। वे अपना (दूध) देकर बढाती रहती हैं। जो गौका दूध अधिक पीते हैं वे स्वराज्य स्थापने तथा उसे सुरक्षित रखनेका सामर्थ्य प्राप्त करते हैं। गौएं 'वस्वीः' हैं मनुष्योंको सुरक्षित रीतिसे बसानेवाली हैं।

[१७७] देवोंके द्वारा गौओंकी सुरक्षा।

(१) गोपालक इन्द्र।

अवस्युरात्रेयः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ. ५।३१।१)

इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम्।

यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन् ॥ ५०० ॥

(मघवा इन्द्रः) ऐश्वर्यसंपन्न इन्द्र (वाजयन्तं यं) अन्नकी चाह करनेवाले जिसपर (अध्यस्थात्) चढ चुका हो उस (रथाय) रथके लिए (प्रवतं कृणोति) निम्न भाग या आसानीसे जिस परसे चलना संभव हो ऐसा मार्ग बना देता है। (गोपाः) गौओंका पालक (पश्वः यूथा इव) गायोंके झुंडको जिस प्रकार हांक ले जाता है वैसे ही (अरिष्टः) स्वयं शत्रुसे अहिंसित होकर (व्युनोति) शत्रुसेनाको हटा ले जाता है (सिषासन् प्रथमः याति) शत्रुकी संपत्ति चाहता हुआ अग्रभागमें रहकर पहले ही आगे चला जाता है।

इन्द्रः गोपालः इन्द्र गोपालक बना है।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ ७।९८।६)

तवेद् विश्वं,अभित पशव्य यत्पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य।

गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्व ॥ ५०१ ॥

हे इन्द्र! (इदं पशव्यं विश्वं) यह पशुओंके हितार्थ बना हुआ विश्व (तव) तेरा ही है (यत्) जिसे (सूर्यस्य चक्षसा अभितः पश्यसि) सूर्यकी दृष्टिसे चारों ओरसे तू देख लेता है। (गवां एकः गोपतिः असि) गायोंका अकेला तू स्वामी है इसलिए (प्रयतस्य ते) तत्पर तेरे (वस्वः भक्षीमहि) धनका हम उपभोग लेते रहें।

गवां एकः गोपतिः असि = गायोंका अकेला एक ही पालक तू है।

वामदेवो गौतमः। इन्द्र। त्रिष्टुप्। (ऋ ४।१७।१)

का सुष्टुतिः शवसः सूनुमिन्द्रमर्वाचीनं राधस आ ववर्तत्।

ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्षिधां नो जनासः ॥ ५०२ ॥

(शवसः सूनुं इन्द्रं) बलके पुत्र इन्द्रको (राधसे) धन देनेके लिए (का सुष्टुतिः) भला कौनसी सराहना (अर्वाचीनं) हमारी ओर (आ ववर्तत्) प्रवृत्त करेगी? (जनासः) हे लोगो! (सः वीरः गोपतिः) वह शूर तथा गौओंका मालिक इन्द्र (निष्षिधां वसूनि) निषेधकर्ता दुश्मनोंके धनोंको (गृणते नः) स्तुति करनेवाले हमें (ददिः हि) अवश्य दे डालता है।

वीरः इन्द्रः गोपतिः = वीर इन्द्र गौओंका पालन करता है।

कुशिक ऐषीरथिः, विश्वामित्रो गाथिनो वा। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ ३।३१।२१)

अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्तः कृष्णाँ अरुषैर्धामभिर्गात्।

प्र सूनृता दिशमान ऋतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥ ५०३ ॥

(वृत्रहा गोपतिः) वृत्रका वध करनेवाला एवं गायोंका पालक (गाः अदेदिष्ट) हमें गायोंका दान करे, (अरुषैः धामभिः) अपने देदीप्यमान तेजोंसे (कृष्णान्) अँधेरोंको, कुटिल षड्यंत्र करनेवालोंको (अन्तः गात्) अन्त कर दे (ऋतेन) सत्यसे (सूनृताः प्रदिशमानः) सरल मार्ग दर्शाने वाला इन्द्र गोशालाओंके (विश्वाः दुरः) सभी दरवाजे और (स्वाः च) अपनी गायोंको भी (अप अवृणोत्) खुला कर डाले मुक्त कर दे।

वृत्र-हा गोपतिः = वृत्रासुरका वधकर्ता इन्द्र गायोंका रक्षक है। शत्रुका नाश करके वह गायोंको सुरक्षित रखता है।

वामदेवो गौतमः। इन्द्रः। गायत्री। (ऋ ४।३२।२२)

स घेदुतासि वृत्रहन्त्समान इन्द्र गोपतिः। यस्ता विश्वानि चिच्युषे ॥ ५०४ ॥

हे इन्द्र! (यः) जो तू (ता विश्वा) उन सभी शत्रुओंको (चिच्युषे) भगा देता है (स) ऐसा प्रसिद्ध वह तू हे (वृत्रहन्) वृत्रके वधकर्ता! (गोपतिः उत समानः असि) गायोंका मालिक और समान अर्थात् सबके साथ एकसा बर्ताव करनेवाला है।

वृत्रहा गोपतिः = इन्द्र गौओंका पालनकर्ता है।

सोभरि काण्वः। इन्द्रः। ककुप्। (ऋ ८।२१।३)

आ याहीम इन्दवोऽश्वपते गोपत उर्वरापते। सोम सोमपते पिब ॥ ५०५ ॥

हे (अश्वपते) घोड़ोंके मालिक! (गोपते) गायोंके स्वामिन्! (उर्वरापते) उर्वर भूमिके पति

इन्द्र ! (आ याहि) आओ। क्योंकि (इमे सोमाः) ये सोम रखे हुए हैं (सोमे) सोमरसमें हे सोमके अधिपति ! (पिब) पी जा।

गोपतिः = गायोंका पालक इन्द्र है।

कुशिक ऐषीरथिः विश्वामित्रो गाथिनो वा। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ३।३१।४)

अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन्।
तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः॥ ५०६॥

(जैत्रीः) विजयी सेनायें (स्पृधानं) शत्रुसे चढाऊपरी करनेवाले इन्द्रको (अभि असचन्त) आ मिलीं उस समय (महि ज्योतिः) बडा भारी उजेला (तमसः निः अजानन्) अँधेरेसे ऊपर उठ आया (तं प्रति जानतीः) उसे जाननेहारी (उषसः) उषायें (उत् आयन्) ऊपर चली आयीं, तब (गवां पतिः) गायोंके पालकके नाते (एकः इन्द्रः) अकेलाही इन्द्र (अभवत्) आगे बढा ताकि वह उनकी रक्षा कर सके।

गवां पतिः इन्द्रः = गौओंका अकेला ही पालन करनेवाला इन्द्र है।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ७।१८।२)

राजेव हि जनिभिः क्षेष्येवाऽव द्युभिः अभि विदुष्कविः सन्।
पिशा गिरा मघवन् गोभिरश्वैस्त्वायतः शिशीहि राये अस्मान्॥ ५०७॥

(जनिभिः राजा इव) महिलाओंसे नरेश जैसे युक्त होकर निवास करता है उसी प्रकार (द्युभिः क्षेषि एव) तू अपनी आभाओंसे जुडकर रहता ही है और (विदुः) ज्ञानी तथा (कविः) क्रान्तदर्शी तू (मघवन्) हे ऐश्वर्यसंपन्न ! (पिशा गोभिः अश्वैः) सुवर्णसे गायों तथा घोडोंसे युक्त (गिरः) स्तुति करनेवालोंको (अभि अव) चारों ओरसे सुरक्षित रख और (त्वायतः) तेरी भक्ति करनेवाले (अस्मान्) हमें (राये शिशीहि) धन पानेके लिए संस्कारसंपन्न एवं तीक्ष्ण कर।

गोभिः अव = गौओंके साथ रक्षा कर गौओंके द्वारा रक्षा कर। अर्थात् इन्द्र गौओंको सहायतासे भक्तकी रक्षा करे। यहां भक्तकी रक्षा करनेके साधन गौयें हैं ऐसा कहा है।

विश्वामित्रो गाथिनः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (३।३०।२१)

आ नो गोत्रा दर्दृहि गोपते गाः समस्मभ्यं सनयो यन्तु वाजाः।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मोऽस्मभ्यं सु मघवन्बोधि गोदाः॥ ५०८॥

हे (गोपते) गायोंके पालक इन्द्र ! (नः) हमारे लिए (गो त्रा आ दर्दृहि) गौओंका संरक्षण करनेवाला पर्वत पूर्णतया खुला रख दे; (गाः सनयः वाजाः) गायें तथा सेवन करने योग्य अन्न (अस्मभ्यं सं यन्तु) हमें मिलें। हे (वृषभ) बलिष्ठ इन्द्र ! (दिवक्षाः) तू द्युलोकको व्याप्त करके (सत्य शुष्म) सच्चा शक्तिमान है। हे (मघवन्) धनिक इन्द्र ! (गो-दाः) तू गाय देनेहारा है यह (अस्मभ्यं सु बोधि) हमें भलीभाँति समझा दे।

१ इन्द्र गो दाः गायोंका दाता है गायें देता है।

२ गाः वाजाः अस्मभ्यं संयन्तु = गायोंसे मिलनेवाले अन्न दूध दही घी आदि हमें प्राप्त हों।

३ गोपते ! नः गोत्रा आ दर्दृहि = हे गोपालक इन्द्र ! तू हमें गौओंके रक्षणार्थ गोचरभूके लिये पर्वत खुला कर दो।

गोचराईके लिये पर्वत खुले रखने चाहिये जहां गायें जाय और यथेष्ट घास खाए और पुष्ट हों। इस तरह पर्वत गौओंका रक्षण करते हैं अतः पर्वतोंको गो-त्र (गौओंका रक्षक) कहते हैं।

गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ। इन्द्रः। गायत्री। (ऋ० ८।१४।१२)

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्। स्तोता मे गोषखा स्यात्॥ ५०९॥

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे। यदहं गोपतिः स्याम्॥ ५१०॥

हे इन्द्र! (यथा त्वं) जैसे तू है वैसे ही (यत् अहं) अगर कहीं मैं (वस्वः एकः इत् ईशीय) धनका एकमेव मालिक बन जाऊं तो (मे स्तोता) मेरा स्तवनकर्ता (गो-सखा स्यात्) गायोंके साथ रहनेवाला गोमित्र बन जाए।

हे (शचीपते) शक्तिके स्वामिन्! (अस्मै मनीषिणे) इस विद्वानको (अहं यत् गोपतिः स्यां) मैं अगर गोस्वामी होता तो (शिक्षेयं दित्सेयं) उसे शिक्षा दूंगा और दान भी दे दूं।

गोपतिः गो सखा = गौओंका पालन कर्ता और गौओंका मित्र।

[१७८] गौकी रक्षाके लिए इन्द्रका दिव्य हथियार।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ १।१२१।९)

त्वमायस प्रति वर्तयो गोर्दिवो अश्मानमुपनीतमृभ्वा।

कुत्साय यत्र पुरुहूत वन्वञ्छुष्णमनन्तैः परियासि वधैः॥ ५११॥

हे (पुरु हूत) बहुतोंद्वारा प्रशंसित इन्द्र! (त्वं) तू (गोः) गौकी रक्षाके लिए अब (दिवः) द्युलोकसे (ऋभ्वा) तेजस्वी कारीगरने (उपनीतं) बनाकर समीप रखा हुआ (अश्मानं आयसं) कठिन फौलादका हथियार (प्रति वर्तयः) शत्रुओंपर फेंक दे चुके हो और (यत्र कुत्साय) जहाँ पर कुत्सके लिए, उसे बचानेके लिए (शुष्णं) सुखानेहारे शत्रुओंपर (अनन्तैः वधैः) अनगिनती हथियारोंसे (वन्वन्) जब आघात किए तब वहाँपर तू (परियासि) चतुर्दिक गहुंच चुका।

गोरक्षाके लिए दिव्य हथियार बनाकर उसके आघातसे शत्रुका वध किया तब भाँति भाँतिके हथियार लेकर चारोंओरसे हमला किया।

परि या— चारों ओरसे शत्रुपर चढे जाना।

[१७९] ग्वालेसे रहित गायें।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ ७।१८।१०)

ईयुर्गावो न यवसादगोपा यथाकृतमभि मित्रं चितासः।

पृश्निगावः पृश्निनिप्रेषितासः श्रुष्टिं चक्रुर्नियुतो रन्तयश्च॥ ५१२॥

(अगोपाः गावः) ग्वालेसे रहित गायें (यवसात् न) घासके लिए जैसे चली जाती हैं वैसे ही (मित्रं अभि) मित्रके सम्मुख (चितासः) इकट्ठे हुए (यथाकृतं ईयुः) जैसे पहले निर्धारित किया था उसी प्रकार चले गये और (रन्तयः नियुतः च) रममाण होनेवाले घोडे भी (पृश्नि निप्रेषितासः पृश्निगावः) धब्बेवाली भूमिद्वारा भेजे हुए और धब्बेवाली गाय रखनेवाले वीर मरुत् (श्रुष्टिं चक्रुः) शीघ्रता करने लगे।

१ अगोपाः गावः ईयुः = ग्वालेसे रहित गायें कहीं भी चली जाती हैं।

२ पृश्निनिप्रेषितासः पृश्निगावः = विविध रंगरूपवाले भागोंसे प्रेरित हुई गायें रंगरूपवाली हैं।

[१८०] गोपालक अग्नि ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । वैश्वानरोऽग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ७।१३।३)

जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून्न गोपा इर्यः परिज्मा ।

वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५१३ ॥

हे अग्ने ! (इर्यः परिज्मा) सबका अधिपति तथा चारों ओर गति करनेवाला तू (गोपाः पशून् न) गायोंका पालक पशुओंकी जैसे देखभाल करता है। वैसेही (जातः भुवना यत् व्यख्यः) उत्पन्न होनेपर भुवनोंका जो तू निरीक्षण कर चुका है इसलिए हे (वैश्वानर) सबका नेता बना तू (ब्रह्मणे गातुं विन्द) ब्रह्मके लिए मार्ग प्राप्त कर (यूयं सदा) तुम हमेशा (नः स्वस्तिभिः पात) हमें हित साधनोंसे सुरक्षित रखो ।

गोपा पशून् परिज्मा अग्निः = गौओंका पालनकर्ता सब पशुओंके चारों ओर जाकर घूमकर, उनकी देख भाल करता है। यह अग्नि ही है।

वामदेवो गौतमः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ४।१।१५)

ते गव्यता मनसा दृध्रमुब्धं गा येमानं परिषन्तमद्रिम् ।

दृळ्हं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ ५१४ ॥

(ते उशिजः नरः) वे अग्निकी कामना करनेवाले नेता लोग (गव्यता मनसा) मनमें गायें पानेकी इच्छा रखते हुए (गा येमानं) गौओंको नियन्त्रणमें रखते हुए (दृळ्हं) सुदृढ (दृध्रं) बहुत बीहड (उब्धं) चारों ओर बंधे हुए (परि सन्तं) विशाल परिमाणवाले (गोमन्तं व्रजं) गायोंसे पूर्ण बाडेको जो कि (अद्रिं) पर्वततुल्य था (वि वव्रुः) विशेष रूपसे खोल चुके ।

गव्यता मनसा गा येमानं, गोमन्तं व्रजं वि वव्रुः = गौओंकी पालना करनेकी इच्छा करनेवाले गायोंको नियन्त्रणमें रखते हुए गायोंसे परिपूर्ण बाडेको खोल चुके हैं वे (ते नरः) अग्निके उपासक मानव हैं। अर्थात् अग्निकी उपासना करनेवाले पालक गायोंकी उत्तम पालना करते हैं।

अग्निः सौचीकः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ. १०।८०।५)

अग्निमुक्थैर्ऋषयो वि ह्वयन्तेऽग्निं नरो यामनि बाधितासः ।

अग्निं वयो अन्तरिक्षे पतन्तोऽग्निः सहस्रा परि याति गोनाम् ॥ ५१५ ॥

(ऋषयः) ऋषि लोग अग्निको (उक्थैः वि ह्वयन्ते) स्तोत्रोंसे विशेषतया बुलाते हैं और (यामनि बाधितासः) यात्राके समय कष्टका अनुभव पानेपर (नरः) नेता लोग अग्निकोही पुकारते हैं (वयः अन्तरिक्षे पतन्तः) पक्षी अन्तरिक्ष प्रदेशमें उडते हुए अग्निको बुलाते हैं जो (गोनां सहस्रा परि याति) हजारों गायोंके चारों ओर चला जाता है।

गोनां सहस्रा परियाति = हजारों गौओंके चारों ओर रहकर उनका पालन अग्नि करता है।

[१८१] गोपालन विष्णुके पराक्रमकी बुनियाद है।

मेधातिथिः काण्वः । विष्णुः । गायत्री । (ऋ. १।२२।१८)

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ॥ ५१६ ॥

(गो पा) गौओंका पालनकर्ता होनेके कारण (अदाभ्यः) न दबनेवाले (विष्णुः) विष्णुने (त्रीणि पदा विचक्रमे) तीनों लोकोंमें पराक्रम किया और (अतः) इसलिए (धर्माणि धारयन्) धर्मोंका धारण किया अथवा कर्तव्य किया।

(गो पाः) गा पालनसे (अदाभ्यः) न दबनालेकी शक्ति प्राप्त होती है और पराक्रम भी हो सकते हैं। इसके पश्चात् ही धर्मका विगड़ा हुआ स्वरूप सुधर सकता है। धर्मका वास्तविक रूप प्रकट हो सकता है।

(१) गोपा = गोपालन करना; (२) अ-दाभ्यः = न दबना अर्थात् समर्थ बनना; (३) विष्णुः येविष्टि= सर्वत्र संचार करना (४) विचक्रमे = पराक्रम करना और (५) धर्माणि धारयन् धर्मोंकी सुस्थिति सुरक्षित रखना यह अनुक्रम देखने योग्य है।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। विष्णुः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ७।९९।३)

इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या।

व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ॥ ५१७ ॥

हे द्यावापृथिवी! (इरावती धेनुमती हि भूत) तुम दोनों अन्नपूर्ण तथा गायोंसे पूर्ण हो जाओ क्योंकि (सूयवसिनी) तुम उत्तम घाससे युक्त एवं (मनुषे दशस्या) मानवको देनेकी इच्छा रखने वाली हो। हे विष्णो! (एते रोदसी) इन द्यावापृथिवीको (दाधर्थ) तू धारण कर चुका है और (मयूखैः पृथिवीं अभितः) किरणोंसे पृथ्वीको चारों ओर (वि अस्तभ्ना) विशेष रीतिसे स्थिर कर चुका है।

१ सूयवसिनी धेनुमती भूत = उत्तम घाससे युक्त भूमी उत्तम गायोंसे युक्त होवे।

२ हे विष्णो! धेनुमती रोदसी दाधर्थ = हे विष्णो! हे सर्वव्यापक प्रभो! गायोंसे युक्त द्यावाभूमिको तू धारण कर। सबकी रक्षा द्वारा गौओंकी भी रक्षा कर।

[१८२] वरुण गायोंके समान रक्षा करना।

नाभाकः काण्वः। वरुणः। महापङ्क्तिः। (ऋ० ८।४१।१)

अस्मा ऊ षु प्रभूतये वरुणाय मरुद्भ्योऽर्चा विदुष्टरेभ्य।

यो धीता मानुषाणां पश्वो गा इव रक्षति नभन्तामन्यके समे ॥ ५१८ ॥

(अस्मै प्रभूतये वरुणाय) इस प्रकार प्रभावशाली वरुणके लिए और (विदुः स्तरेभ्यः मरुद्भ्यः) अत्यन्त ज्ञानी वीर मरुतोंके लिए (सु अर्च) भली भाँति पूजा करो (यः) जो (मानुषाणां धीता) मानवोंके कर्मोंको (पश्वः गाः इव रक्षति) पशु एवं गायोंके तुल्य रक्षित करता है (अन्यके समे नभन्तां) और दूसरे सभी शत्रु विनष्ट हों।

(वरुणः) गाः रक्षति = वरुण देव गौओंकी रक्षा करता है।

[१८३] विश्वेदेवा, देवोंसे रक्षित गाय।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ७।३५।१२-१३)

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ॥ ५१९ ॥

(सत्यस्य पतयः) सत्यके पालक (नः शं भवन्तु) हमारे लिए शान्तिदायक हों (नः अर्वन्तः गावः) हमारे घोड़े तथा गौएं (शं सन्तु) शान्तिकारक हों।

शं नो अजा एकपादेवो अस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥ ५२० ॥

(देवः) संकटोंसे पार ले चलनेवाला (अपां-न-पात् नः शं अस्तु) जलोंको न गिरानेवाला हमारे लिए सुखकारक हो और (देवगोपा पृश्निः) देवोंसे रक्षित गाय (नः शं भवतु) हमारे लिए सुखकारक बने।

१ गावो यः सन्तु = गायें शान्ति सुख देनेवाली हों।

२ देवगोपा पृश्निः नः शं भवतु = सब देवोंसे रक्षित गौ हमें सुख देनेवाली हो।

अथर्वा (पश्वकामः)। विश्वेदेवाः इन्द्राग्नी। अनुष्टुप्। (अथर्व ३।१५।७)

उप त्वा नमसा वयं होतर्वैश्वानर स्तुमः।

स नः प्रजास्वात्मसु गोषु प्राणेषु जागृहि ॥ ५२१ ॥

हे हवन करनेहारे वैश्वानर! (वयं त्वा नमसा उपस्तुमः) हम तुझे नमनपूर्वक प्रशंसित करते हैं (सः नः) ऐसा वह तू हमारे (आत्मसु प्राणेषु प्रजासु गोषु जागृहि) आत्मा प्राण प्रजा तथा गौओंमें रक्षणके लिए जागता रह।

गोषु जागृहि = गौओंके रक्षण करनेके कार्यमें जागता रह। गायकी रक्षा करनेके कार्यमें कभी न सो जा।

[१८४] गौकी रक्षा करनेवाले सैंकडों वीर।

कश्यपः। वशा। ५ चतुरता स्कन्धोग्रीवी बृहती। (अथर्व १०।१०।५,७)

शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधिपृष्ठे अस्याः।

ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा ॥ ५२२ ॥

अनु त्वाग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा।

ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥ ५२३ ॥

(अस्याः पृष्ठे अधि) इसकी पीठपर (शतं गोप्तारः शतं दोग्धारः शतं कंसाः) सौ संरक्षक सौ दोहन करनेवाले सौ वर्तन रखे हुए हैं (तस्यां ये देवाः प्राणन्ति) उसमें जो देव जीवित रहते हैं (ते एकधा वशां विदुः) वे अलग अलग वशा गौको जानते हैं।

हे (भद्रे वशे) कल्याणकारक वशा गौ! (त्वा अनु अग्निः सोमः प्राविशत्) तेरे पीछे अग्नि तथा सोम घुस चुके हैं (पर्जन्यः ते ऊधः) मेघ तेरा ऊधा है (ते, स्तनाः विद्युतः) तेरे स्तन विद्युत् हैं।

१ अस्याः पृष्ठे अधि शतं गोप्तारः = इस गौके पीछे सौ रक्षक वीर खडे हैं।

२ शतं कंसाः शतं दोग्धारः = इस गौके पीछे सौ पात्र हाथमें लिये सौ दोहन करनेवाले हैं।

३ तस्यां देवाः प्राणन्ति = इस गौमें अनेक देव अपना जीवन धारण करते हुए रहते हैं अर्थात् गौके आश्रयसे अनेक देव रहते हैं।

४ अग्नि सोम पर्जन्य और विद्युत् ये देव गौमें रहते हैं पर्जन्य ऊधा बना है विद्युत् स्तन बने हैं अन्य देव अन्यत्र बसे हैं।

[१८५] गौओंको निर्भय रखो।

ब्रह्मा। गावः। जगती। (अ ४।२१।४)

न ता अर्वा रेणुककाटोऽश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि।

उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥ ५२४ ॥

(रेणुककाटः अर्वा ताः न अश्नुते) पांवोंसे धूलि उडानेवाला घोडा इन गौओंकी योग्यता प्राप्त नहीं कर सकता। (ताः संस्कृतत्रं न अभि उप यन्ति) वे गौवें पाकादि संस्कार करनेवालेके पास

भी नहीं जाती। (ताः गावः) वे गौवें (तस्य यज्वनः मर्त्यस्य) उस यज्ञकर्ता मनुष्यकी (उरुगायं अभयं अनु विचरन्ति) बडी प्रशंसनीय निर्भयतामें विचरती हैं।

क्योंकि चोरोंको भी गायकी योग्यता प्राप्त नहीं होती वे गायें उन यज्ञकर्ताओंकी रक्षामें नहीं आती। वे गौवें यजमानकी निर्भय रक्षामें विचरती हैं।

गावः अभयं अनु विचरन्ति = गौवें निर्भर होकर विचरती रहें।

[१८६] अश्विनोंकी गोरक्षामें सहायता।

प्रगाथिपिः काण्वः। अश्विनौ। गायत्री। (ऋ ८।५।२६)

यथोत कृत्व्ये धनेऽशुं गोष्वगस्त्यम्। यथा वाजेषु सोभरिम्॥ ५२५॥

(उत) और (यथा कृत्व्ये धने) जिस प्रकार धनका संपादन करनेमें अंशुको और (गोषु) गायोंको पानेमें अगस्त्यको तुम दोनों सहायता दे चुके (यथा वाजेषु) जिस प्रकार अन्न प्राप्त करनेमें सोभरि ऋषिको मदद दे चुके, वैसे ही अब भी करो।

वैसी गौओंकी सुरक्षाके लिये अश्विदेवोंने प्राचीन समयमें सहायता की थी वैसी वे इस समयमें भी करें।

[१८७] उषा।

त्रित आप्त्यः। आदित्योषसः (दुःस्वप्नघ्नं)। महापङ्क्तिः। (ऋ ८।४७।१४)

यच्च गोषु दुःष्वप्न्यं यच्चास्मे दुहितर्दिवः।

त्रिताय तद्विभावर्याप्त्याय परा वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥ ५२६॥

हे (दिवः दुहितर्) द्युलोककी कन्ये! (यत् गोषु च अस्मे च) जो गायोंमें तथा हममें (दुःष्वप्न्यं) अशुभसूचक बुरा स्वप्न हो (तत्) उसे हे (विभावरी) उषादेवी! आप्तके पुत्र त्रितके लिए (परा वह) बहुत दूर ले जा क्योंकि (वः ऊतयः) तुम्हारी रक्षाएं (अनेहसः) दोषरहित हैं और (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारी संरक्षक आयोजनाएं बडी अच्छी हैं।

[१८८] गायको बाघका डर।

चातनः। दर्भोऽत्र अग्निः। अनुष्टुप्। (अथर्व ४।३६।६)

तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव।

श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम्॥ ५२७॥

(गोमतां व्याघ्रः इव) गाय समीप रखनेवालोंको जैसे बाघ डराता है वैसे ही (पिशाचानां तपनः अस्मि) मैं पिशाचोंको तपानेवाला हूं। (सिंहं दृष्ट्वा श्वानः इव) सिंहको देखकर कुत्ते जैसे तितर बितर हो जाते हैं वैसे ही वे (ते न्यञ्चनं न विन्दन्ते) तेरे आश्रयको नहीं पाते हैं।

[१८९] गौओंसे भरा हुआ घर

शुनःशेप आजीगर्तिः। अश्विनौ। गायत्री। (ऋ १।३०।१७)

आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया। गोमद्दस्रा हिरण्यवत्॥ ५२८॥

(अश्विनौ) हे अश्विनो! (अश्वावत्या) बहुतसे घोडोंके साथ (शवीरया इषा) और प्रेरक अन्नके साथ (आयातं) आओ। हे (दस्रा) अश्विनो! हमारा घर (हिरण्यवत्) स्वर्णसे भरा हुआ और (गोमत्) गौओंसे पूर्ण (अस्तु) होवे।

हमारा मकान गायें घोडे सुवर्ण तथा अन्नसे अनेक भरा रहे।

गोतमो राहूगणः । अश्विनौ । उष्णिक् । (ऋ० १।९२।१६)

अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।

अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥ ५०९ ॥

हे (दस्रा) शत्रुदलके विनाशकर्ता (अश्विना) अश्विनौ ! (अस्मत् वर्तिः) हमारा घर (गोमत् हिरण्यवत्) गोधन एवं द्रव्यसे परिपूर्ण करनेके लिए (स-मनसा) एक विचारसे युक्त होकर तुम अपना (रथं) रथ (अर्वाक्) हमारी ओर (आ नि यच्छतम्) ले आओ।

हमारे गौएं पर्याप्त मात्रामें रहें तथा धनकी भरपूर समृद्धि प्राप्त हो।

सोभरिः काण्वः । अश्विनौ । ककुप् । (ऋ० ८।२२।१७)

आ नो अश्वावदश्विना वर्तिर्यासिष्टं मधुपातमा नरा । गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥५१०॥

हे (मधुपातमा नरा) अत्यन्त मधु पीनेहारे नेता (दस्रा अश्विना) शत्रुविनाशक अश्विनौ ! (नः अश्वावत् गोमत् हिरण्यवत् वर्तिः) हमारे घोडोंसे युक्त गायोंसे पूर्ण और सुवर्णवाले घरको (आ यासिष्टं) आओ।

गोतमो राहूगणः । इन्द्रः । जगती । (ऋ० १।८३।१)

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।

तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतस ॥ ५११ ॥

हे (इन्द्र) इन्द्र ! जो (तव ऊतिभिः) तेरे संरक्षणोंसे (सु प्रावीः) सुरक्षित बना रहता है, (मर्त्यः) वह मानव (अश्वावति गोषु) अश्वों तथा गौओंसे पूर्ण घरमें (प्रथमः गच्छति) पहले ही पहुँचता है अर्थात् उसे सबसे पहले गौ घोडे आदि पर्याप्त रूपमें मिलते हैं। (त्वं) तू (तं इत्) उसीही (भवीयसा वसुना) बहुतसे धनसे (विचेतसः आपः) ज्ञानपर्वोंसे पूर्ण जलप्रवाह (यथा अभितः सिन्धुं) जैसे चारों ओरसे समुद्रको पूर्ण करते हैं। वैसे ही (पृणक्षि) परिपूर्ण करता है।

जिसकी रक्षा परमात्मा करता है उसे धीवनके पूर्ण घर प्राप्त होता है।

[१९०] गायें कूदती हुई घरके पास आ जाय।

ब्रह्मा । शाला वास्तोष्पतिः । बृहती । (अथर्व ३।१२।३)

धरुण्यसि शाले बृहच्छन्दाः पूतिधान्या ।

आ त्वा वत्सो गमेदा कुमार आ धेनवः सायमास्पन्दमानाः ॥ ५१२ ॥

हे घर ! (बृहत्-छन्दाः पूति धान्या) बडे छतवाला और पवित्र धान्यसे युक्त एवं (धरुणी असि) भण्डार धारण करनेवाला है (त्वा वत्सः कुमारः आ गमेत्) तेरे समीप बछडा तथा बालक आ जाय (आस्पन्दमानाः धेनवः साय आ) कूदती हुई गायें सायंकालके समय आ जायें।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।४१।१)

अहेळमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्दवः सुतासः ।

गावो न वज्रिन्त्स्वमोको अच्छेन्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम् ॥ ५१३ ॥

हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! (यज्ञं उप) यज्ञके समीप (अहेळमानः) क्रोध न करता हुआ (याहि) चला आ क्योंकि (सुतासः इन्दवः) निचोडे हुए सोम (तुभ्य पवन्ते) तेरे लिए टपकते हैं (गावः स्वं ओकः अच्छ न) गायें अपने निजी घरके समीप जैसे चली आती हैं वैसेही (यज्ञियानां प्रथम) पूजनीयोंमें अगुआ तू (आ गहि) इधर आ जा।

गावः स्वं ओकः अच्छ = गायें अपने घरको जाती हैं।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । विश्वे देवाः । गायत्री । (ऋ. १।३।८)

विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमागन्त तूर्णयः । उस्रा इव स्वसराणि ॥ ५३४ ॥

(उस्राः) गायें (स्व-सराणि इव) घरोंमें आजाती हैं ठीक उसी प्रकार (अप्-तुरः) शस्त्र कार्य करनेवाले (तूर्णयः) चपल (विश्वे देवासः) सभी देव (सुतं आगन्त) निचोडे हुए सोम रसके निकट चले आयें ।

इस मन्त्रमें यह आशा व्यक्त करते हुए कि सारे देव सोमपानके लिए आजायें, गौओंकी उपमा दी है जिस भाँति सायंकाल होनेपर गौएँ शीघ्रतया घर और आती हैं वैसेही सम्पूर्ण देव सोम पीनेके लिए देर न करते हुए उपस्थित हों ।

[१९१] गाइयोंके साथ आओ ।

शौनकः । मेधा । अनुष्टुप् । (अथर्व ६।१०८।१)

त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गहि ।

त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया ॥ ५३५ ॥

हे (मेधे) बुद्धि (त्वं नः प्रथमा) तू हमारे लिए प्रथम स्थानमें (यज्ञिया असि) पूजनीय है (गोभिः अश्वेभिः आ गहि) तू गायों और अश्वोंके साथ आ जा उसी प्रकार तू (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य किरणोंके साथ हमारे समीप आओ ।

[१९२] गौएँ वीरोंके पिछेसे आती हैं ।

दीर्घतमा औचथ्यः । अश्वः । त्रिष्टुप् । (ऋ. १।१६३।८)

अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भग कनीनाम् ।

अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥ ५३६ ॥

हे (अर्वन्) अश्व ! (त्वां) तुझ (अनु) अनुसरण करता हुआ (रथः) रथ (अनु मर्यः) तेरे पीछे पीछे मनुष्य (अनु गावः) तेरा अनुसरण करती हुई गौएँ (अनु कनीनां भगः) तेरे पश्चात् ही स्त्रियोंका भाग्य (अनु व्रातासः) तेरे ही पीछे वीर मनुष्योंके समूह (तव सख्य) तेरेसे मित्रता करनेके लिए (ईयुः) आते हैं और (देवाः) देवता भी (ते वीर्यं ममिरे) तेरेही पराक्रमका वर्णन करते हैं ।

[१९३] गौवोंकी वृद्धि ।

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । जगती । (ऋ. ५।५३।५)

उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।

न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ५३७ ॥

हे (दस्रा मरुतः) शत्रुविनाशकर्ता वीर मरुतो ! (यूयं) तुम लोग (पुरीषिणः) जलसे युक्त हो कर (समुद्रतः उदीरयथ) समुद्रसे जल ऊँचाईपर ले जाते हो और (वृष्टिं वर्षयथ) बारिश करते हो (वः धेनवः) तुम्हारी गौएँ (न उपदस्यन्ति) क्षीण नहीं होती हैं क्योंकि (शुभं यातां) लोक कल्याणके लिए जाते समय (रथाः अनु अवृत्सत) रथ तुम्हारे पीछे चलने लगे ।

वः धेनवः न उपदस्यन्ति= तुम्हारी गौवें क्षीण नहीं होतीं क्योंकि तुम उनका ऐसा उत्तम पालन करते हो कि उनका संवर्धन ही होता है ।

[१९४] गौओंसे भूषण ।

वसुश्रुत आत्रेयः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ५।३।२)

त्वं अर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि ।

अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि ॥ ५३८ ॥

हे (स्वधा-वन्) हे स्वधासे युक्त अग्ने ! (त्वं यत् कनीनां अर्यमा भवसि)' तू चूंकि कन्याओंका नियमनकर्ता बनता है और (गुह्यं नाम बिभर्षि) गोपनीय यश धारण करता है, (यत्) जो तू (दम्पती समनसा कृणोषि) पतिपत्नीको एक विचारवाले बना देता है, इसलिए (सुधितं मित्र न) अच्छे मित्रके समान (गोभिः अञ्जन्ति) गायोंसे तुझे विभूषित करते हैं।

[१९५] गौओंके सींग ।

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । जगती । (ऋ. ५।५९।३)

गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने ।

अत्या इव सुभ्व१श्चारवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः ॥ ५३९ ॥

(गवां शृंगं इव) मानों गायोंके सींगके तुल्य (श्रियसे) शोभाके लिए (उत्तमं) श्रेष्ठ शिरोवेष्टन तुम धारण करते हो। (सूर्यः न) सूर्यके समान (रजसः विसर्जने)' अंधेरा दूर हटानेके लिए (चक्षुः) जनताके लिए तुम लोग नेत्ररूपी बनते हो (अत्याः इव) घोडोंके तुल्य (सुभ्वः चारवः स्थन) सुन्दर एवं मनोहर रूपवाले बनते हो (नरः) तुम नेता बनकर (मर्याः इव) मानवोंके जैसे (श्रियसे चेतथ) शोभा पानेके उपायोंको तुम जानते हो।

गौओंके सींग बडे सुन्दर होते हैं।

[१९६] गायोंवाली जनताकी सख्या ।

सोभरिः काण्वः । इन्द्रः । ककुप् । (ऋ. ८।२१।११)

त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि ।

संस्थे जनस्य गोमतः ॥ ५४० ॥

हे (वृषभ) इच्छाओंकी पूर्ति करनेहारे प्रभो ! (त्वया युजा स्वित् ह) तेरी सहायता प्राप्त होनेपर जरूर हम (गोमतः जनस्य संस्थे) गायोंवाली जनताकी संस्थामें (श्वसन्तं) हमारे प्रति क्रोधके मारे हाँफते हुए, शत्रुको (प्रति ब्रुवीमहि) उचित जवाब देनेका साहस करते हैं।

[१९७] गाइयोंसे दुर्गतिको दूर करना ।

अङ्गिराः (दिव्यचक्षुष्मः) । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । अथर्व ७।५०।७

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।

वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥ ५४१ ॥

(दुरेवां अमतिं गोभिः तरेम) दुर्गतिरूप दुष्ट बुद्धिको गायोंसे पार करेंगे (पुरुहूत) हे बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! (विश्वे यवेन वा क्षुधं) हम सभी जौसे भूखको पार करेंगे (वयं राजसु प्रथमाः अरिष्टासः) हम सभी राजाओंमें अग्रगण्य होकर विनाशको न प्राप्त होते हुए (वृजनीभिः धनानि जयेम) निज शक्तियोंसे धनोंको जीत लेंगे।

[१९८] गायोंसे पूर्णता होती है।

मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० १।१६।९)

सेमं नः काममापृण गोभिरश्वैः शतक्रतो । स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥ ५४२ ॥

हे (शतक्रतो) सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र! (सः) ऐसा यह तू (नः कामं) हमारे मनोरथ (गोभिः अश्वैः) गायों और घोडोंसे (आ पृण) पूर्ण करो (स्वाध्यः) भली भाँति ध्यान देकर हम (त्वा स्तवाम) तेरी स्तुति करते हैं।

स्वाध्यः (सु-आ-ध्यः) ध्यानपूर्वक कार्य करनेवाले।

गोभिः आपृण= गायोंसे पूर्णता करो गायोंसे पूर्णता होती है। सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली गौएं हैं।

[१९९] गायसे मनुष्यों और पशुओंका नाश न हो।

ब्रह्मा । यमिनी । त्रिष्टुप्; विराड्गर्भा प्रस्तारपङ्क्तिः । (अथर्व० ३।२८।५,६)

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः ।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च ॥ ५४३ ॥
यत्रा सुहार्दां सुकृतामग्निहोत्रहुतां यत्र लोकः ।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च ॥ ५४४ ॥

(यत्र) जिधर (स्वायाः तन्वः रोगं विहाय) अपने शरीरका रोग छोडकर (सुहार्दः सुकृतः मदन्ति) अच्छे दिलवाले तथा बढिया कार्य करनेवाले हर्षित होते हैं हे (यमिनि) गौ! (तं लोकं अभिसंबभूव) उस देशमें सब प्रकार मिलकर हो जाओ (सा नः पुरुषान् पशून् मा हिंसीत्) वह भी हमारे मनुष्यों और जानवरोंकी हिंसा न करे।

[२००] दूध देनेहारी गौसे संतोष।

गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । अग्निः । जगती । (ऋ० २।२।९)

एवा नो अग्ने अमृतेषु पूर्व्य धीष्पीपाय बृहद्दिवेषु मानुषा ।
दुहाना धेनुर्वृजनेषु कारवे त्मना शतिनं पुरुरूपमिषणि ॥ ५४५ ॥

हे (पूर्व्य अग्ने) पुरातन अग्ने! (बृहत्-दिवेषु अमृतेषु) अमर देवोंमें तुझसेही (नः मानुषा धीः एव) हमारी मानवी बुद्धि तेरे यशोगानसे (पीपाय) बढाती है (वृजनेषु कारवे) यज्ञमें तेरी प्रशंसा करनेहारे भक्तको तू (त्मना इषणि) स्वयंस्फूर्तिसे ही (शतिनं पुरुरूपं) सैकडों प्रकारका और भाँति भाँतिका धन देकर (दुहाना धेनुः) दूध देकर संतुष्ट करनेवाली गायके समान प्रसन्न करनेवाला बन।

[२०१] गोशाला।

सदापृण आत्रेयः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।४५।६)

एता धियं कृणवामा सखायोऽप या माताँ ऋणुत व्रजं गोः ।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम् ॥ ५४६ ॥

(सखायः एत) हे मित्रो! इधर आओ (धियं कृणवाम) बुद्धिपूर्वक प्रशंसा करें (या माता) जो माताके समान हितकारक होकर (गोः व्रजं) गोशालाको (अप ऋणुत) खोल चुकी; (यया) जिसकी सहायतासे (मनुः विशिशिप्रं जिगाय) मनुने शत्रुको जीत लिया और (यया) जिससे

(दस्युहा वणिक्) एक आर्य व्यापारी होकर (पुरीष आप) अन्न प्राप्त कर सका।
गोः मन्न अप वृणुत= गौओंकी गोशालाको खोल दिया।

शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ० ६।४५।२४)

कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥ ५४७ ॥

(दस्युहा) दस्युका वध करनेवाला इन्द्र कुवित्सकी (गोमन्तं व्रजं) गायोंसे पूर्ण गोशालाके प्रति (प्र गमत् हि) अधिक मात्रामें चला जाता है इसमें संदेह नहीं इसलिए (शचीभिः नः अपवरत्) शक्तियोंसे वह हमारे लिए उन गायोंको खोल दे।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।१२।११)

आ परमाभिरुत मध्यमाभिर्नियुद्भिर्याह्यवमाभिरर्वाङ् ।
दृळ्हस्य चिद्गोमतो वि व्रजस्य दुरो वर्त गृणते चित्रराती ॥ ५४८ ॥

(गृणते) स्तोताके लिए (चित्रराती) विविध प्रकारका दान देनेवाले अग्निदेव! तुम (परमाभिः) श्रेष्ठ कोटिके (उत मध्यमाभिः अवमाभिः) और मँझली श्रेणी एवं निम्न दर्जेके (नियुद्भिः) घोडोंसे (अर्वाङ् आयाहि) सम्मुख आ जाओ और (गोमतः व्रजस्य) गायोंसे पूर्ण गोशालाके (दृळ्हस्य चित्) सुदृढ रहनेपर भी (दुरः विवर्तम्) दरवाजे खोल दो।

विश्वमना वैयश्वः । इन्द्रः । उष्णिक् । (ऋ० ८।२४।६)

आ त्वा गोभिरिव व्रजं गीर्भिर्ऋणोम्यद्रिवः ।
आ स्मा कामं जरितुरा मनः पृण ॥ ५४९ ॥

हे (अद्रिवः) वज्रधारी! (गोभिः व्रजं इव) गायोंको लेकर जैसे कोई गोशालामें चले जाता है वैसेही (गीर्भिः त्वा आ ऋणोमि) भाषणोंसे मैं तेरे समीप आता हूँ और (जरितुः कामं मनः) स्तोताके मनीषा एवं मनको (आ पृण स्म) पूर्णतया पूर्ण कर।

नाभाकः काण्वः । वरुणः । महापङ्क्तिः । (ऋ० ८।४१।६)

यस्मिन् विश्वानि काव्या चक्रे नाभिरिव श्रिता ।
त्रितं जूती सपर्यत व्रजे गावो न संयुजे युजे ।
अश्वाँ अयुक्षत नभन्तामन्यके समे ॥ ५५० ॥

(चक्रे) पहियेमें (नाभिः इव) केन्द्रके तुल्य (यस्मिन्) जिसमें (विश्वानि काव्या) सभी काव्य (श्रिता) आश्रित हुए हैं उस (त्रितं जूती सपर्यत) त्रितकी शीघ्रतापूर्वक पूजा करो। (व्रजे संयुजे गावः न) गोशालामें ठीक जोडनेके लिए गायें जैसे रखी जाती हैं, उसी प्रकार (युजे अश्वान् अयुक्षत) जोतनेके लिए घोडोंको जोत चुके हैं (अन्यके समे नभन्ताम्) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हों।

नृमेधः । इन्द्रः । सतो बृहती । (ऋ० ८।९९।४)

यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता ।
स नः शविष्ठ सवना वसो गहि गमेम गोमति व्रजे ॥ ५५१ ॥

हे (विश्ववार) सबसे स्वीकारने योग्य! (शविष्ठ वसो) बलिष्ठ तथा बसानेवाले इन्द्र! (यः) जो (वाजेषु तरुता) युद्धोंमें पार ले जानेवाला (दुष्टरः श्रवाय्यः अस्ति) बडी कठिनाईसे जिसके

पिद झुडायी जा सके ऐसा मोर मन्नयुक्त है ऐसा (सः) यह तू (नः सचमा आ गहि) हमारे पक्षोंमें आओ ताकि हम (गोमति व्रजे गमेम) गायोंसे भरपूर गोशालामें प्रवेश कर सकें।

त्रित आप्त्य । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ १ ।१।२)

यं त्वा जनासो अभि सञ्चरन्ति गाव उष्णं इव व्रजं यविष्ठ ।

दूतो देवानामसि मर्त्यानामन्तर्महाँश्चरसि रोचनेन ॥ ५५२ ॥

हे (यविष्ठ) अत्यन्त युवक ! (गावः उष्णं व्रज इव) गौएँ गर्म गोशालामें जैसे चली जाती हैं उसी प्रकार (जनासः यं त्वा अभि सञ्चरन्ति) लोग जिस तेरे समीप माकर इधर उधर हलचल करते हैं ऐसा (देवानां मर्त्यानां दूतः असि) तू देवों और मानवोंका दूत है मोर (महान्) बडा होता हुमा (रोचनेन अन्तः चरसि) जगमगाते मार्गपरसे अम्बर संचार करता है।

भिषगाथर्वणः । ओषधयः । अनुष्टुप् । (ऋ १ ।९७।८)

उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते ।

धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥ ५५३ ॥

(गोष्ठात् गावः इव) गोशालासे गौएँ जैसे बाहर निकलती हैं वैसेही (ओषधीनां शुष्माः) ओषधियोंके बल या सामर्थ्य (उत् ईरते) ऊपर उठ आते हैं। तपके सामने व्यक्त होते हैं हे पुरुष ! जो औषधियाँ (तव) तुझको (आत्मानं धनं सनिष्यन्तीनां) अपना आपको तथा सामर्थ्य देनेको तैयार हैं।

सविता । पशवः । त्रिष्टुप् । (अथर्व २।२६।१)

एह यन्तु पशवो ये परेयुर्वायुर्येषां सहचारं जुजोष ।

त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेदास्मिन् तान् गोष्ठे सविता नियच्छतु ॥ ५५४ ॥

(ये परा ईयुः पशवः इह आयन्तु) जो दूर चले गये हैं ऐसे गौ आदि पशु इधर आ जायँ (येषां सहचारं वायुः जुजोष) जिनका साहचर्य वायु करता है (येषां रूपधेयानि त्वष्टा वेद) जिनके स्वरूपोंको त्वष्टा अर्थात् कुशल कारीगर जानता है (सविता तान् अस्मिन् गोष्ठे नियच्छतु) मरक उन्हें इस गौओंके बाडेमें बाँधकर रख।

सविता । पशव । त्रिष्टुप् । (अथर्व २।२६।२)

इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु बृहस्पतिरानयतु प्रजानन् ।

सिनीवाली नयत्वाग्रमेषामाजग्मुषो अनुमते नि यच्छ ॥ ५५५ ॥

(पशवः इमं गोष्ठं सं स्रवन्तु) गौ आदि पशु इस गोशालामें आकर इकट्ठे हों (बृहस्पतिः प्रजानन् आनयतु) बृहस्पति जानता हुमा उन्हें ले आवे (सिनीवाली एषां अग्रं आनयतु) अग्र वाली देवी इनके अग्रभागतक ले जावे (अनुमते) हे अनुकूल बुद्धि रखनवाली देवी ! (आजग्मुषः नियच्छ) आनेवालोंको नियममें रख।

सविता । पशवः । उपरिष्टाद्विराड् बृहती । (अथर्व २।२६।३)

सं सं स्रवन्तु पशवः समश्वाः समु पूरुषाः ।

सं धान्यस्य या स्फातिः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ ५५६ ॥

(पशवः अश्वाः पुरुषाः उ सं सं स्रवन्तु) गौ आदि पशु घोडे पुरुष भी मिलजुलकर यहाँ (या धान्यस्य स्फातिः सं) जो धान्यकी वृद्धि है वह भी मिलकर बढ (संस्राव्येण हविषा जुहोमि) मैं मिलानेवाले हविसे आहुति दे डालता हूँ।

ब्रह्मा । गोष्ठः, अहः, गावः । अनुष्टुप् । (अथर्व ३।१४।१)

स वो गोष्ठेन सुषदा सं रय्या सं सुभूत्या ।

अहर्जातस्य यन्नाम तेना वः सं सृजामसि ॥ ५५७ ॥

हे गौओ ! (वः सुषदा गोष्ठेन सं) तुम्हें उत्तम बैठने योग्य गोशालासे युक्त करते हैं, (रय्या सं) उत्तम धनसे युक्त करते हैं (सु भूत्या सं) उत्तम ऐश्वर्यसे या अच्छी संतानसे युक्त करते हैं (यत् अहर्जातस्य नाम) जो दिनमें श्रेष्ठ वस्तु मिल जाय (तेन वः संसृजामसि) उससे तुम्हें जोड देते हैं ।

ब्रह्मा भृग्वङ्गिराश्च । इन्द्राग्नी, आयुष्यं, यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप् । (अथर्व० ३।११।५)

प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।

व्य१न्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान्छतम् ॥ ५५८ ॥

हे प्राण एवं अपान ! (अनड्वाहौ व्रजं इव प्र विशतं) बैल जिस भाँति गोशालामें प्रवेश करते हैं उसी प्रकार तुम प्रवेश करो । (अन्ये मृत्यवः वियन्तु) दूसरे अनेक अपमृत्यु दूर चले जायँ (यान् इतरान् शतं आहुः) जिन दूसरोंकी संख्या कहते हैं कि सौ है ।

ब्रह्मा । गोष्ठः, अहः, गावः । अनुष्टुप् (अथर्व ३।१४।५)

शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत ।

इहैवोत प्र जायध्वं मया वः सं सृजामसि ॥ ५५९ ॥

(गोष्ठः वः शिवः भवतु) गोशाला तुम्हारे लिए हितप्रद हो (शारिशाका इव पुष्यत) शालीके शाकके समान पुष्ट बनो (इह एव प्रजायध्वं) इधरही प्रजा उत्पन्न करो (मया वः संसृजामसि) मेरे साथ तुम्हें समर्पणके लिए ले जाता हूँ ।

बादरायणिः । अथर्वा । व्यवसाना षट्पदानुष्टुब्गर्भा पुरउपरिष्टाज्ज्योतिष्मती जगती । (अथर्व ४।३८।७)

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन्कर्की वत्सामिह रक्ष वाजिन् ।

अयं घासो अयं व्रज इह वत्सां नि बध्नीमः ॥ ५६० ॥

(वाजिनीवन् वाजिन्) हे अन्नवाले बलवान वीर ! (अन्तरिक्षेण सह) अपने आन्तरिक विचारके साथ (कर्की वत्सां) कर्तव्यशालिनी बछडीकी (इह रक्ष) इधर रक्षा करो । उनके लिए (अयं घासः) यह घास तथा (अयं व्रजः) यह गोशाला है (वत्सां इह निबध्नीमः) बछडीको इधर बांध देते हैं ।

१ वत्सां इह रक्ष= बछडोंको यहां सुरक्षित रखो ।

२ अयं व्रजः, अयं घासः= यह गोशाला है और यह घास यहां रखा है,

३ वत्सान् इह निबध्नीमः= बछडोंको यहां बांध देते हैं । गोशालामें ये सब प्रबंध होने चाहिये ।

ब्रह्मा । गावः । अनुष्टुप् । (अथर्व ६।५२।२)

नि गावो गोष्ठे असदन् ॥ ५६१ ॥

गौएँ गोशालामें ठहरी हैं ।

कौरुपथिः । अध्यात्मं मन्युः । अनुष्टुप् । (अथर्व ११।८।३२)

तस्माद् वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥ ५६२ ॥

(तस्मात्) इसीलिए (विद्वान् वै) ज्ञानी पुरुष सचमुच (पुरुषं इदं ब्रह्म इति मन्यते) पुरुषको यह ब्रह्म है, ऐसा मानता है, (हि) क्योंकि (सर्वाः देवताः) सभी देवता (अस्मिन्) इसमें (गोष्ठे गावः इव आसते) गोशालामें गौओंके समान बैठते हैं ।

गोतमो राहूगणः । मरुतः । गायत्री । (ऋ० १।८६।३)

उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत । स गन्ता गोमति व्रजे ॥ ५६३ ॥

(उत वा) अथवा (यस्य) जिसके (वाजिनः) बलिष्ठ वीर किसी प्रकार (विप्रं) ज्ञानीको (अनु अतक्षत) अनुकूल हो श्रेष्ठ बनाते हैं (सः) वह (गोमति व्रजे) गौओंसे परिपूर्ण बाड़में गोकुलमें (गन्ता) जाता है अर्थात् बहुतसी गौएँ मिलजाती हैं ।
यदि वीर पुरुष किसी ज्ञानीके अनुकूल हो जाँय तो उसे बहुतसी गौएँ पाना सुगम होता है ।

संवरणः प्राजापत्यः । इन्द्रः । जगती । (ऋ० ५।३४।५)

न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन ।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे ॥ ५६४ ॥

(पञ्चभिः दशभिः) पाँच या दस साधन मिलनेसे (आरभं न वष्टि) आरम्भ करना नहीं चाहता है (असुन्वता न च पुष्यता) सोमरस न निचोड़नेवाले तथा दूसरोंका पोषण न करनेहारेसे (न सचते) भेंट नहीं करता है, नहीं मिलता है पर (धुनिः) शत्रुको कंपायमान करनेवाला इन्द्र (जिनाति वा अमुया हन्ति वा) बाधा देता है या शस्त्रसे वध करता है और (गोमति व्रजे) गौओंसे युक्त बाड़ेमें (देवयुं आ भजति) देवकी कामना करनेवालेसे मिलता है ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।२७।१)

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता शवसश्चकान आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥ ५६५ ॥

(यत्) जब (ताः पार्याः धियः युनजते) उन श्रेष्ठ कार्योंको या बुद्धियोंको काममें लाते हैं, तो (नरः) नेता लोग (नेमधिता इन्द्रं हवन्ते) युद्धमें इन्द्रको पुकारते हैं हे इन्द्र ! तू (शूरः) वीर (नृषाता) मानवोंको विभिन्न कार्योंमें लगानेवाला, तथा (शवसः चकानः) बलकी इच्छा करने वाला है इस लिए (त्वं नः) तू हमें (गोमति व्रजे) गौओंसे युक्त बाड़ेमें (आ भज) पहुँचा दे ।

श्रुष्टिगुः काण्वः । इन्द्रः । बृहती । (ऋ० ८।५१।५)

यो नो दाता वसूनामिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
विद्मा ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं गमेम गोमति व्रजे ॥ ५६६ ॥

(यः) जो (नः वसूनां दाता) हमें धनोंका देनेवाला बनता है (तं इन्द्रं) उस प्रभुको (वयं हूमहे) हम बुलाते हैं, क्योंकि (अस्य नवीयसीं सुमतिं) इसकी नयी अच्छी बुद्धिको (विद्म हि) हम जानते ही हैं और (गोमति व्रजे गमेम) गायोंसे युक्त गोशालामें हम पहुंच जायँ ।

पुरहन्मा आंगिरसः । इन्द्रः । सतो बृहती । (ऋ ८।७०।६)

आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्मान् अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिन् चित्राभिरूतिभिः ॥ ५६७ ॥

हे (मघवन्) ऐश्वर्य संपन्न ! (वृषन्) इच्छाओंकी पूर्ति करनेवाले ! (वज्रिन् शविष्ठ) वज्रधारी और बलिष्ठ प्रभो ! (चित्राभिः ऊतिभिः) विलक्षण संरक्षणोंसे (गोमति व्रजे) गायोंसे युक्त बाडेमें (अस्मान् अव) हमारी रक्षा कर क्योंकि तू (महिना शवसा) बडे भारी बलसे (विश्वा वृष्ण्या) सभी इच्छापूर्तिके साधनोंको (आ पप्राथ) तू व्याप्त तथा फैला चुका है ।

मेधातिथि काण्वः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ ८।३२।५)

स गोरश्वस्य वि व्रजं मन्दानः सोम्येभ्यः । पुरं न शूर दर्षसि ॥ ५६८ ॥

हे शूर प्रभो इन्द्र ! (सः) वह विख्यात तू (मन्दानः) हर्षित होता हुआ (सोम्येभ्यः) सोमसे युक्त लोगोंके लिए (गोः अश्वस्य व्रजं) गायों तथा घोडोंके बाडेको (पुरं न) नगरीके तुल्य (वि दर्षसि) खोल देता है ।

वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ ४।१६।८)

विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ ५६९ ॥

(विश्वानि) सभी (नर्याणि) मानवोपयोगी कार्योंको (विद्वान् शक्रः) जानता हुआ इन्द्र, (निकामैः सखिभिः) नितान्त कामना करनेवाले मित्रोंके साथ (अपः रिरेच) जलोंको उन्मुक्त कर चुका; (ये उशिजः) जो कामना करनेवाले (अश्मानं चित्) पत्थरीले रहनेपर भी (गोमन्तं व्रजं) गौओंसे युक्त बाडेको (वचोभिः बिभिदुः) वाचाओंसे तोड चुके तथा (वि वव्रुः) ढक भी चुके ।

वत्सप्रिर्भालन्दनः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ १।७२।११)

त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून् विश्वा वसु दधिरे वार्याणि ।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ ५७० ॥

हे अग्ने ! (त्वां) तेरे प्रति (अनु द्यून्) प्रतिदिन (यजमानाः विश्वा वसु) यजमान लोग सारे धनोंको जो कि (वार्याणि) स्वीकारने योग्य हैं (दधिरे) धारण कर चुके हैं (उशिजः) इच्छुक (त्वया सह द्रविणं इच्छमानाः) तेरे साथ धनकी कामना करते हुए (गोमन्तं व्रजं वि वव्रुः) गायोंसे युक्त गोशालाको खोल चुके ।

नाभानेदिष्ठो मानवः । विश्वे देवाः । सतोबृहती । (ऋ १०।६२।७)

इन्द्रेण युजा निः सृजन्त वाघतो व्रजं गोमन्तमश्विनम् ।
सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः श्रवो देवेष्वक्रत ॥ ५७१ ॥

(वाघतः) ज्ञानवान लोग (इन्द्रेण युजा) इन्द्रकी सहायतासे (गोमन्तं अश्विनं व्रजं) गायों तथा घोडोंसे युक्त बाडेको खोलकर (निः सृजन्त) बद किए हुए पशुओंको बाहर छोड देते हैं (मे) मुझको (सहस्रं अष्टकर्ण्यः) हजारोंकी संख्यामें खाँपवाली गायें (ददतः) देते हुए (देवेषु श्रवः अक्रत) देवोंमें कीर्तिका विस्तार कर चुके ।

विमद ऐन्द्रः । सोमः । आस्तारपङ्क्तिः (ऋ. १०।२५।५)

तव त्ये सोम शक्तिभि' निकामासो व्यृण्विरे ।
गृत्सस्य धीरास्तवसो वि वो मदे व्रजं गोमन्तमश्विनं विवक्षसे ॥ ५७२ ॥

हे (सोम !) (त्ये धीराः) वे धीर पुरुष (तवसः गृत्सस्य ते शक्तिभिः) बलवान एवं विद्वान तुझ जैसेकी शक्तियोंसे (नि कामासः वि ऋण्विरे) अपनी कामनाओंको दूर कर विविध स्तुतियाँ करते हैं इसलिए (वः मदे) आपके आनन्दमें (गोमन्तं अश्विनं व्रजं) गाय एवं घोडोंसे पूर्ण बाडेको (वि) विशेष रूपसे प्रदान कर क्योंकि तू (विवक्षसे) बडा प्रशंसनीय है ।

वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ. ४।३१।१३)

अस्मभ्यं ताँ अपा वृधि व्रजाँ अस्तेव गोमतः । नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥ ५७३ ॥

हे इन्द्र ! (ताम् गोमतः व्रजान्) उन गौओंसे युक्त बाडोंको (अस्ता इव) फेंकनेवाले शूरके समान, (नवाभिः ऊतिभिः) नयी रक्षाओंके साथ तू (अस्मभ्य) हमारे लिए (अपावृधि) खोल कर रखा है ।

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।७३।३)

बृहस्पति' समजयद् वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एष' ।
अप सिषासन् स्व१रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ५७४ ॥

(एषः देवः बृहस्पतिः) यह देवतारूपी बृहस्पति (महः गोमतः व्रजान्) बडे भारी गौओंसे युक्त बाडोंको (वसूनि सं अजयत्) और धनोंको ठीक प्रकार जीत चुका है (अप्रतीतः बृहस्पतिः) किसीसे रुकावटका अनुभव न लेता हुआ बृहस्पति (अपः सिषासन्) जलोंको विभक्त करना चाहता हुआ (अमित्रं) अपने शत्रुको (अर्कैः हन्ति) तेजस्वी साधनोंसे मार डालता है ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ६।१०।३)

पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः ।
चित्राभिस्तमूतिभिश्चित्रशोचिर्व्रजस्य साता गोमतो दधाति ॥ ५७५ ॥

(यः विप्रः) जो ज्ञानी मानव (उक्थैः अग्नये ददाश) स्तोत्रोंसे अग्निका आहुतियाँ दे चुका हो (सः मर्त्येषु) वह मानवोंमें (श्रवसा पीपाय) अन्नसे पुष्ट होता है (चित्रशोचिः) विचित्र आभासे युक्त अग्नि (गोमतः व्रजस्य साता) गौओंसे युक्त बाडेके बँटवारेमें (चित्राभिः ऊतिभिः) अद्भुत संरक्षणकी आयोजनाओंसे (तं दधाति) उसका धारण करता है ।

सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ । अनुष्टुप् । (ऋ. ८।८।२०)

याभि' कण्वं मेधातिथिं याभिर्वशं दशव्रजम् ।
याभिर्गोशर्यमावतं ताभिर्नोऽवतं नरा ॥ ५७६ ॥

हे (नरा) नरत्व गुणयुक्त अश्विनौ ! (याभिः) जिन शक्तियोंसे मेधातिथि कण्वपुत्रकी एवं (दशव्रजं वशं) दस गायोंके बाडे रखनेवाले वशकी ओर (याभिः) जिनसे (गो शर्यं आवतं) ओज गाय रखनेवाले शयुकी रक्षा की थी (ताभिः नः अवत) उनसे हमारी रक्षा करो ।

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अप्तृणसूर्याः । (विषघ्नोपनिषद्) । अनुष्टुप् । (ऋ. १।१९१।४)

नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।

नि केतवो जनानां न्यदृष्टा अलिप्सत ॥५७७॥

(गावः गोष्ठे नि असदन्) गौवें बाडेमें सुखपूर्वक बैठी हैं (मृगासः नि अविक्षत) हरन भी अपने अपने स्थानपर बैठे हैं (जनानां केतवः) मानवोंकी पताकायें (नि) नीचे उतर आए हैं, या ज्ञानप्रवाह स्तब्ध हुए हैं, इस समय (अदृष्टाः) न दीख पडनेवाले विषयोंने मुझे (नि अलिप्सत) व्याप्त कर डाला है।

शबर काक्षीवतः । गावः त्रिष्टुप् । (ऋ. १०।१६९।४)

प्रजापतिर्मह्यमेता रराणो विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः ।

शिवाः सतीरुप नो गोष्ठमाकस्तासां वयं प्रजया सं सदेम ॥ ५७८ ॥

(विश्वैः) सभी (पितृभिः देवैः सं विदानः) पितरों तथा देवोंसे एकमत होकर (मह्यं एताः रराणः) मुझको इन गायोंका दान देता है और (शिवाः सतीः) ये कल्याणकारक होनेके कारण (नः गोष्ठं उप) हमारी गोशालाके समीप इन्हें (आ अकः) रखता है इसलिए (तासां प्रजया) उनकी सन्तानसे (वयं सं सदेम) हम युक्त होकर बैठ जायें।

शिवाः नः गोष्ठं उप आ अकः= कल्याणकारक गौवें हमारी गोशालामें लाकर रखें।

[२०२] गौओंकी परिषद्।

अथर्वा । यमः । त्रिष्टुप् । (अथर्व. १८।३।२२)

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।

शुचन्तो अग्निं वावृधन्त इन्द्रमुर्वीं गव्यां परिषदं नो अक्रन् ॥ ५७९ ॥

(सुकर्माणः सुरुचः) अच्छे कर्म करनेहारे और उत्कृष्ट कान्तिवाले (देवयन्तः) देवत्वकी कामना करते हुए (अयः न) जिस प्रकार कि सुवर्णकार तपाकर सोनेको शुद्ध करते हैं वैसे ही (जनिमा धमन्तः) अपने जन्मोंको तपरूपी तापसे तपाकर शुद्ध करते हुए (देवाः अग्निं शुचन्तः) देवगण अग्निको प्रदीप्त करते हुए (इन्द्रं वावृधन्तः) इन्द्रकी वृद्धि करते हुए (नः उर्वीं गव्यां परिषदं अक्रन्) हमारे लिए बडी भारी विस्तृत गौओंके समूहवाली परिषद बनाते हैं।

[२०३] गोशाला घीसे भरपूर हो।

उपरिबभ्रव । अघ्न्याः । त्र्यवसाना भुरिक् पथ्यापङ्क्तिः । (अथर्व. ७।७५।२)

पदज्ञा स्थ रमतयः संहिता विश्वनाम्नीः ।

उप मा देवीर्देवेभिरेत ।

इमं गोष्ठमिदं सदो घृतेनास्मान्त्समुक्षत ॥ ५८० ॥

(रमतयः पदज्ञाः स्थ) तुम आनन्द देनेवाली हो इसलिए अपने निवासस्थानको जाननेवाली हो। तुम (संहिताः विश्वनाम्नीः देवीः) इकट्ठी हुई बहुत नामवाली दिव्य गायें (देवेभिः मा उप एत) दिव्य पदार्थोंके साथ मेरे पास आओ (इमं गोष्ठं इदं सदः) इस गोशालाको और इस घरको (अस्मान्) हमें भी (घृतेन सं उक्षत) घीसे भलीभाँति सिंचित करो।

गौरिवीतिः शाक्त्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १ । ७१।७)

आ तत्त इन्द्रायवः पनन्ताऽभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ।

सकृत्स्वं १ ये पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥ ५८१ ॥

हे इन्द्र ! (ये) जो (ऊर्वं गोमन्तं) विशाल बाडेको जहांपर गौएँ रखी थीं (तितृत्सान्) रखना चाहते थे और (ये) जो (पुरुपुत्रां सहस्र धारां) बहुत सन्तानवाली खूब दूध देनेवाली (बृहतीं महीं) बडे शरीरवाली महनीय (सकृत्स्वं दुदुक्षन्) तथा एकबार प्रसूत हुई गायका दोहन कर चुके थे (ते आयवः) तेरे मनुष्य (अभि आ पनन्त) प्रशंसित हो चुके हैं ।

(१) पुरुपुत्रां सहस्रधारां महीं सकृत्-स्वं दुदुक्षन्= बहुत सन्तानोंवाली बहुत दुधारू गौका प्रसूत होते ही दूध निचोडा ।

(२) गोमन्तं ऊर्वं= बडी गोशालाको चाहते थ ।

सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती । (ऋ० १।५१।३)

त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।

ससेन चिद् विमदायावहो वस्वाजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥ ५८२ ॥

हे इन्द्र ! (त्वं अंगिरोभ्यः) तूने अंगिरा ऋषियोंके लिए (गो त्रं) गौके संरक्षण करनेवाला बाडा (अप अवृणोः) खोल रखा (शतदुरेषु अत्रये) सौ दरवाजोंसे युक्त जेलखानेमें डाले हुए ऋषि अत्रिको (गातुवित्) राह बतलायी (विमदाय चित्) ऋषि विमदको तो (ससेन वसु अवहः) अन्नके साथ धन दिया और (आजौ वावसानस्य) लडाईमें निरत वीरोंके संरक्षणार्थ (अद्रिं नर्तयन् आसि) तू अपना वज्र घुमाता रहा है ।

वावसान = एक ऋषिका नाम है जिसका अर्थ है रहनेवाला ' आजौ वावसानः = युद्धमें रहनेवाला पाने बसनेवाला । इन्द्रने यह बाडा खोलकर अंगिरसोंको गौएँ दीं ।

[२०४] गौओंके झुंड

सोभरिः काण्वः । इन्द्रः । सतोबृहती । (ऋ० ८।२१।१)

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।

आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥ ५८३ ॥

(यः अमन्दत) जो जनसमूह हर्षित हो चुका है (सः हि स्म) वह निश्चयपूर्वक (हर्यश्वं) हरे रंगके घोडोंवाले (सत्पतिं) सज्जनोंके पालनकर्ता एवं (चर्षणीसहं) शत्रुसेनाके पराभवकर्ता इन्द्रकी स्तुति करता है। (सः मघवा तु स्तोतृभ्यः नः) वह ऐश्वर्यसंपन्न वा स्तोता होनेके कारण हमें (गव्यं अश्व्यं आ वयति) गौओं और घोडोंके झुंडको दे देता है ।

श्यावाश्व आत्रेयः । तरन्तमहिषी शशीयसी । अनुष्टुप् । (ऋ० ५।६१।५)

सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम् ।

श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥ ५८४ ॥

(सा) वह महिला (अश्व्यं पशुं गव्यं शतावयं) घोडों तथा गायोंके झुंडसहित जानवरोंको जिनमें सौ भेडोंकी भी गिनती थी (सनत्) दे चुकी (या) जो (श्यावाश्वस्तुताय वीराय) श्यावाश्व प्रशंसित वीरके लिए (दोः उप बर्बृहत्) अपनी भुजा समीप कर चुकी ।

गौरिवीतिः शाक्त्यः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ५।२९।१२)

नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।

गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन्॥ ५८५॥

(नवग्वासः दशग्वासः) नौ या दस गौएँ साथ रखनेवाले लोग (सुतसोमासः) सोम निचोड़ चुकनेपर (इन्द्रं अर्कैः अभि अर्चन्ति) इन्द्रको अर्चनीय स्तोत्रोंसे पूजित करते हैं। (तं ऊर्वं) उस बड़े भारी (गव्यं चित्) गायोंके झुंडको भी (शशमानाः नरः) स्तुति करते हुए मानवोंके नेता (अपिधानवन्तं चित्) ढके हुए होनेपर भी (अप व्रन्) खोल चुके।

वामदेवो गौतमः। अग्निः सूर्यो वाऽपो वा गावो वा घृतस्तुतिर्वा। त्रिष्टुप्। (ऋ० ४।५८।१०)

अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त।

इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते॥ ५८६॥

(गव्यं आजिं) गौओंके झुंडके प्रति (सुष्टुतिं अभि अर्षत) अच्छी स्तुतिको प्रेरित करो (अस्मासु) हममें (भद्रा द्रविणानि) सुन्दर तथा हितप्रद धनोंको (धत्त) रख दो (नः इमं यज्ञं) हमारे इस यज्ञको (देवता नयत) देवोंके समीप पहुँचा दो (घृतस्य धाराः) घीकी धाराएँ (मधुमत्) मिठास भरी (पवन्ते) टपकती हैं।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ६।१७।१)

पिबा सोममभि यमुग्र तर्द ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र।

वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभिः॥ ५८७॥

हे (उग्र इन्द्र) उग्र स्वरूपवाले इन्द्र! (गृणानः) प्रशंसित होता हुआ तू (यं सोमं अभि) जिस सोमको पीनेके लिए (महि ऊर्वं गव्यं) बड़ा भारी गौओंका झुंड (तर्दः) बाहर ला चुका है (पिब) उसका पान कर। हे (धृष्णो! वज्रहस्त) शत्रुओंपर आक्रमण करनेहारे तथा हाथमें वज्र धारण करनेवाले इन्द्र! (यः) जो तू (विश्वा अमित्रिया वृत्रं) सारे शत्रुभूत वृत्रको (शवोभिः वि वधिषः) अपनी शक्तियोंसे मार चुका।

वामदेवो गौतमः। अग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ४।२।१७)

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तोऽयो न देवा जनिमा धमन्तः।

शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमूर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन्॥ ५८८॥

(सुकर्माणः) अच्छे कर्म करनेवाले (सुरुचः) अच्छी आभासे युक्त (देवयन्तः) देवत्व पानेकी कामना करनेवाले (देवाः) विद्वान लोग (अयः न) लोहेकी तरह (जनिमा धमन्तः) अपने जन्मोंको मानो धौंकनीसे अग्निके समान उज्ज्वल या प्रदीप्त या विशुद्ध करते हुए (अग्निं शुचन्तः) अग्निको प्रदीप्त करते हुए (इन्द्रं ववृधन्तः) इन्द्रको बढ़ाते हुए (परि सदन्तः) चारों ओर बैठते हुए (ऊर्वं गव्यं अग्मन्) विशाल गायोंके झुंडको पा गये हैं।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ७।१८।७)

आ पक्थासो भलानसो भनन्ताऽलिनासो विषाणिनः शिवासः।

आ योऽनयत्सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन्युधा नॄन्॥ ५८९॥

(पक्थासः) हवि पकानेवाले (भलानसः) अच्छे मुँहवाले (शिवासः विषाणिनः) हितकारक तथा शृंगधारी (अलिनासः आ भनंत) तपस्वी स्तुति करने लगे, (यः सधमाः) जो एक साथ

होनेवाला है (दस्युभ्यः) हिंसकोंसे (आर्यस्य गव्या) आर्यके गायोंके झुंड (अजगन्) प्राप्त किया तथा (आ अनयत्) छिना लाया (युधा नॄन्) लडाईसे शत्रुभूत मानवोंको पराभूत किया।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्राग्नी। बृहती। (ऋ. ६।६०।१४)

आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यै३रुप गच्छतम्।

सखायौ देवौ सख्याय शंभुवेन्द्राग्नी ता हवामहे ॥ ५९० ॥

हे इन्द्र और अग्नि! (नः उप) हमारे समीप (गव्येभिः अश्व्यैः वसव्यैः) गायोंके समूह, घोडोंके झुंड तथा धनसंपदाके समहोंके साथ (आ गच्छतं) आओ। (सखायौ) मित्र बने हुए (देवौ) दानी (सख्याय शंभुवा) मित्रताके लिए हितकारक (ता हवामहे) उन दोनोंको हम बुलाते हैं।

गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा। अश्विनौ। गायत्री। (ऋ. ८।७३।१४-१५)

आ नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रैरुप गच्छतम्। अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ५९१ ॥

मा नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रेभिरति ख्यतम्। अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ५९२ ॥

हे अश्विनौ! (नः सहस्रैः गव्येभिः अश्व्यैः) हमारे समीप हजारों गायोंके तथा घोडोंके झुंडोंके साथ (उप गच्छतं) आओ।

(नः) हमें (सहस्रेभिः गव्येभिः अश्व्यैः मा अति ख्यतं) हजारों गायोंके झुंड एवं घोडोंके समूहसे छोडकर न जाओ (वां अवः) तुम्हारी रक्षा (अन्ति सत् भूतु) समीप रहनेवाली हो जाए।

वसुश्रुत आत्रेयः। अग्निः। पङ्क्तिः। (ऋ. ५।६।७)

तव त्ये अग्ने अर्चयो महि व्राधन्त वाजिन।

ये पत्वभिः शफानां व्रजा भुरन्त गोनामिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ५९३ ॥

हे अग्ने! (तव त्ये) तेरी वे (महि अर्चयः) महत्त्वपूर्ण ज्वालाएं (वाजिनः) बलिष्ठ प्रतीत होती हैं तथा (ये) जो (शफानां पत्वभिः) खुरोंके पतनके समान शब्द करती हुई (गोनां व्रजा भुरन्त) गौओंके झुंडको चाहती हैं अर्थात् उनसे दुग्ध घृत आदि हवनीय पदार्थोंकी कामना करती हैं और (व्राधन्त) बढती हैं।

बभ्रुरात्रेयः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ. ५।३०।४)

स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित्।

अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम् ॥ ५९४ ॥

हे इन्द्र (जातः) उत्पन्न होनेपर (मनः स्थिरं चकृषे) मनको अचंचल बना देता है (एकः) अकेला रहनेपर भी (युधये) लडाईके लिए (भूयसः चित्) बहुतसे राक्षसोंसे भी जूझने रहनेके हेतु (वेषि इत्) चला जाता है, (शवसा) बलपूर्वक (अश्मानं चित्) पत्थरीले दुर्गको भी (वि दिद्युतः) तुमने फोड दिया और (उस्रियाणां गवां) दूध देनेवाली गायोंके (ऊर्वं विदः) झुंडको पा लिया।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः। इन्द्रो विश्वेदेवा वा। त्रिष्टुप्। (ऋ. १।१२१।४)

अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुस्रियाणामनीकम्।

यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्तदप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ॥ ५९५ ॥

हे इन्द्र! (अस्य मदे) इस सोमपानके आनंदके कारण (ऋताय) यज्ञके लिए उपयुक्त (स्वर्यं अपिवृतं) स्तुत्य और पणीने गुफामें बंदकर रखा हुआ (उस्रियाणां अनीकं) गौओंका झुंड

(त्वा) तुझे दिया है (यत् ह) जिस समय (प्रऽसर्गे) युद्धमें (त्रि ककुप्) तीनों लोकोंमें बड़ा इन्द्र (निवर्तत्) घुस गया उस समय (मानुषस्य दुरः) मानवोंके देहातोंके दुर्गोंके (दुरः) द्वारोंको (अप वः) खोल दिये [जिन द्वारोंमेंसे गौएँ बाहर आ निकलीं]

तिरश्चीनाङ्गिरसो द्युतानो वा मरुतः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (ऋ ८।९६।८)

त्रिः षष्टिस्त्वा मरुतो वावृधाना उस्रा इव राशयो यज्ञियासः ।

उप त्वेमः कृधि नो भागधेयं शुष्मं त एना हविषा विधेम ॥ ५९६ ॥

(त्वा) तुझको (त्रिः षष्टिः मरुतः) तीन और साठ वीर मरुत् (राशयः उस्राः इव यज्ञियासः) गायोंके बड़े बड़े झुंडके समान पूजनीय होते हुए (वावृधानाः) बढाते रहे हैं (त्वा उप आ इमः) तेरे समीप हम आते हैं (नः भागधेयं कृधि) हमारा भाग्योदय कर (ते शुष्मं) तेरे बलको (एना हविषा विधेम) इस तरहके हविर्भागसे हम पूजित करते हैं ।

वामदेवो गौतमः । इन्द्रः इन्द्रासोमौ वा । त्रिष्टुप् । (ऋ ४।२८।५)

एवा सत्यं मघवाना युवं तदिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः ।

आदर्दृतमपिहितान्यश्ना रिरिचथुः क्षाश्चित्ततृदाना ॥ ५९७ ॥

हे (मघवाना) ऐश्वर्यसंपन्न तथा (ततृदाना) शत्रुके हिंसक इन्द्र और सोम ! (युवं) तुम दोनोंने (ऊर्वं) बड़ा भारी (अश्व्यं) घोडोंका समूह तथा (गोः) गायोंका झुंड (आ अदर्दृत) पूर्णतया खोल रखा; (अपिहितानि) ढकी हुई गौएँ (क्षाः चित्) शत्रुओंकी भूमियोंको भी (अश्ना रिरिचथुः) बलसे तुम दोनोंने छुडाया था (तत् सत्यं एव) वह सत्य ही है ।

भर्गः प्रागाथः । इन्द्रः । सतो बृहती । (ऋ ८।६१।८)

त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।

आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥ ५९८ ॥

(पुरु) बहुतसे (सहस्राणि शतानि च यूथा) हजारों तथा सैकडोंकी संख्यामें झुंडोंको (त्वं दानाय मंहसे) तू दानके लिए देता है (पुरन्दरं इन्द्रं) शत्रुनगरियोंके तोडनेहारे इन्द्रको (विप्रवचस) बुद्धिमानोंसे पूर्ण वचन कहनेवाले हम (अवसे) रक्षाके लिए (गायन्तः) स्तोत्रोंका गान करते हुए (आ चकृम) अपने अभिमुख करते हैं ।

[२०५] गायोंके झुण्डकी माता ।

अत्रिर्भौमः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् । (ऋ ५।४१।१९)

अभि न इळा यूथस्य माता स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु ।

उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाऽभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः ॥ ५९९ ॥

(उर्वशी यूथस्य माता) विस्तारशील और गायोंके झुंडकी माता मातासी (इळा) भूमि (नः अभि) हमारे प्रति (गृणातु वा) अनुकूल भाव रखे; (बृहत्-दिवा) खूब जगमगानेवाली (उर्वशी वा) या फैलनेवाली (गृणाना) सराहना करती हुई (प्रभृथस्य) तेजस्क प्रदानसे (आयोः अभ्यूर्ण्वाना) मानवको ढक दे

[२०६] गायोंके झुण्ड और वधिया बैल।

वशोऽश्व्यः। इन्द्रः। गायत्री। (ऋ ।८।४६।३०)

गावो न यूथमुपयन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रय ॥ ६०० ॥

(मा उप) मेरे समीप (यूथं गावः न) झुंडके समीप गौयें जैसे चली जाती हैं वैसे ही (वध्रयः यन्ति) वधियाए हुए बैल चले आते हैं।

[२०७] काली और लाल रंगकी गौओंमें श्वेत दूध।

सुकक्ष आंगिरसः। इन्द्रः। गायत्री। (ऋ ८।९३।१३)

त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च। परुष्णीषु रुशत्पयः ॥ ६०१ ॥

हे इन्द्र! (कृष्णासु रोहिणीषु च) काली और लाल रंगवाली गायोंमें (रुशत् एतत् पयः अधारयः) तूने चमकीला यह दूध रखा है।

[२०८] इक्कीस गुना सत्तर गायें पास रखना।

वशोऽश्व्यः। वायुः। सतो बृहती। (ऋ ८।४६।२६)

यो अश्वेभिर्वहते वस्त उस्रास्त्रिः सप्त सप्ततीनाम्।

एभिः सोमेभिः सोमसुद्भिः सोमपा दानाय शुक्रपूतपाः ॥ ६०२ ॥

(यः अश्वेभिः वहते) जो घोडोंसे आगे चला जाता है और (सप्ततीनां त्रिः सप्त उस्राः) इक्कीस बार सत्तर गौयें (वस्ते) साथ रखता है। हे (सोमपाः) सोम पीनेहारे तथा (शुक्रपूतपाः) बल वर्धक और पवित्र किए सोमरस पीनवाले! (एभिः सोमेभिः सोमसुद्भिः दानाय) इन सोमों तथा सोम निचोडनेवालोंसे संतुष्ट होकर तू दानके लिए प्रवृत्त हो।

* ७×३×७० = १४७० (सप्ततीनां त्रिःसप्त उस्राः) गायें (वस्ते) अपने पास रखता है।

[२०९] बैल, सांड और गौवें।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। अग्निः। गायत्री। (ऋ ६।१६।४७)

आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि।

ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत ॥ ६०३ ॥

हे अग्ने! (ते) तेरे लिए (हृदा तष्टं हविः) मनःपूर्वक तैयार किया हुआ हवि (ऋचा) मन्त्रोंके साथ (आ भरामसि) चारों ओरसे ला देते हैं (ते) तेरे लिए (ते) वे (उक्षणः ऋषभासः) सेचनक्षम बैल (उत वशाः भवन्तु) और गौयें हों।

[२१०] गौओंके चारों ओर रहना।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ ६।१७।५)

येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानोऽवासयोऽप दृळ्हानि दर्द्रत्।

महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात् ॥ ६०४ ॥

हे इन्द्र! (येभिः मन्दसानः) जिन सोमोंसे हर्षित होता हुआ तू (दृळ्हानि अप दर्द्रत्) सुदृढ स्थानोंको दूर तोडकर फेंकते हुए (उषसं सूर्यं) उषा तथा सूर्यको (अवासयः) अपने ठौरपर बिठला चुका, (गाः परि सन्तं) गौओंके चारों ओर विद्यमान (अच्युतं महां अद्रिं) स्थिर महान् पहाडको (स्वात् सदसः परि) अपनी जगहसे (नुत्थाः) हटा चुका।

[२११] गायोंका शुद्ध वंश ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । उषा । त्रिष्टुप् । (ऋ. ६।६५।५)

इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवां अङ्गिरसो गृणन्ति ।
व्य१र्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणां अभवद् देवहूतिः ॥ ६०५ ॥

हे (अद्रिसानो उषः) पहाडपर दिखनेवाली उषा ! (इदा हि) अभी (ते गवां गोत्रा) तेरे गायोंके वंशको (अंगिरसः गृणन्ति) अंगिरस् वंशमें उत्पन्न लोग प्रकाशित करते हैं (अर्केण ब्रह्मणा च) पूजनीय साधनसे और ज्ञानसे (वि बिभिदुः) विशेष ढंगसे रुकावटको तोड चुके (नृणां देवहूतिः सत्या अभवत्) मनुष्योंकी जो देवताओंको पुकार थी, वह सच्ची हो गयी ।

गवां गोत्रा अंगिरसो गृणन्ति= गायोंके वंशोंका वर्णन अंगिरस ऋषि कर रहे हैं । वर्णन करने योग्य है गौओंके अनेक वंश परिशुद्ध हैं इसीलिये उनका वर्णन किया जा रहा है ।

[२१२] गायोंका गर्भ ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः (वृष्टिकामः) कुमार आग्नेयो वा । पर्जन्यः । गायत्री (ऋ. ७।१०२।२)

यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम् । पर्जन्यः पुरुषीणाम् ॥ ६०६ ॥

(यः पर्जन्यः) जो मेघ (ओषधीनां गवां) वनस्पतियोंमें तथा गौओंमें (अर्वतां पुरुषीणां) घोडियों और स्त्रियोंमें (गर्भं कृणोति) गर्भका स्थापन करता है ।

गवां गर्भं कृणोति= गौओंका गर्भ करता है ।

[२१३] गायोंकी प्राप्ति ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । पूषा । गायत्री (ऋ. ६।५३।९)

या ते अष्ट्रा गोओपशाऽऽघृणे पशुसाधनी । तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥ ६०७ ॥

हे (आघृणे) तेजस्वी पूषन् ! (ते या पशुसाधनी) तेरी जो पशुओंकी साधना करनेवाली (गोओपशा अष्ट्रा) गायोंको प्राप्त कर देनेवाली अंकुश है (तस्याः ते) तेरे उस अंकुशसे (सुम्नं ईमहे) हम सुख चाहते हैं ।

अंकुशसे पशुओंको प्राप्त करके उनसे गौओंकी प्राप्ति करानेवाली अंकुश है । अष्ट्रा=अंकुश

[२१४] गायोंके लिये युद्ध करते हैं ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ६।२५।४)

शूरो वा शूरं वनते शरीरैस्तनूरुचा तरुषि यत् कृण्वैते ।
तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते ॥ ६०८ ॥

(शूरः शरीरैः वा) वीर पुरुष शारीरिक बलोंसे भी (शूरं वनते) वीर शत्रुका पराभव करता है (यत्) जब (तरुषि) युद्धक्षेत्रमें (तनूरुचा) शारीरिक सामर्थ्यके कारण अग्रभागमें रहनेवाले दोनों सैनिक (कृण्वैते) लडाई करने लगते हैं (यत् तोके) जब सन्तानके निमित्त (गोषु तनये अप्सु वा) गायोंको पानेके लिए, पुत्रके लिए, जलोंके लिए और (उर्वरासु) उपजाऊ भूमियोंके लिये (क्रन्दसी वि ब्रवैते) चिल्लाते हुए विशेष रूपसे युद्ध करते हैं । तब परस्पर पराभव करनेकी इच्छा करते हैं ।

गोषु क्रन्दसी वि ब्रवैते= गौओंके लिये युद्ध करते हैं ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।१९।१२)

जनं वज्रिन् महि चिन्मन्यमानमेभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वस्मि ।
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु ॥ ६०९ ॥

हे (वज्रिन्) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! (येषु अस्मि) जिनमें मैं एक हूं उन (एभ्यः नृभ्यः) इन मानवोंके लिए (महि चित् मन्यमानं जनं) अपनेको महत्त्वपूर्ण समझनेवाले शत्रुके पुरुषको (रन्धय) वशीभूत कर दो (अध) पश्चात् (पृथिव्यां शूरसातौ) भूमिपर लडाई होनेपर (तनये गोषु अप्सु) पुत्रके लिए गौओं तथा जलोंकी आवश्यकता होनेपर (त्वा हि हवामहे) तुझे ही बुलाते हैं ।

गोषु त्वा हवामहे= गाइयोंकी प्राप्तिके लिये लडाई छिड जानेपर वीरोंको ही बुलाते हैं ।

[२१५] गौओंके झुण्डको चलानेवाला ।

वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ४।२०।८)

ईशे रायः क्षयस्य चर्षणीनामुत व्रजमपवर्तासि गोनाम् ।
शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम् ॥ ६१० ॥

(रायः) धनका (क्षयस्य) गृहका (उत चर्षणीनां) और प्रजाओंका (ईशे) तू निरीक्षण करता है (गोनां व्रजं) गायोंके झुण्डको (अपवर्ता असि) तू शत्रुओंसे दूर हटाता है। (शिक्षानरः) तू प्रजाको शिक्षा देकर नेता बननेवाला (समिथेषु प्रहावान्) युद्धोंमें महत्त्व साथ ले जानेवाला है (वस्वः) धनकी (भूरिं राशिं) प्रचण्ड राशिको (अभिनेता असि) तू जनताके सम्मुख लानेवाला है ।

गोनां व्रज अपवर्ता= गौओंके व्रजको दूर हटानेवाला शत्रुके गौएं वापस लानेवाला है ।

[२१६] गायोंको हांकनेका दण्ड ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । वसिष्ठ पुत्राः इन्द्रो वा । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।३३।६)

दण्डा इवेद्गोअजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥ ६११ ॥

(अर्भकासः भरताः) छोटे छोटे भरतवंशीय लोग (गो-अजनासः दण्डाः इव) गायोंको हांकनेमें उपयुक्त डंडोंके समान (परिच्छिन्नाः आसन्) छिन्नविच्छिन्न हो गये तब उनका (वसिष्ठः पुरएता अभवत् च) वसिष्ठ अग्रगन्ता हुए (आत् इत्) पश्चात् ही (तृत्सूनां विशः अप्रथन्त) तृत्सु वंशोंकी प्रजा विस्तारयुक्त हो गयी ।

[२१७] गायको रस्सीसे बांधना ।

ब्रह्मा भृग्वङ्गिराः । इन्द्राग्नी आयुष्यं यक्ष्मनाशनम् । त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा जगती । (अथर्व ३।११।८)

अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा ।
यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया ।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद् बृहस्पतिः ॥ ६१२ ॥

(उक्षणं गां रज्ज्वा इव) जैसे बैल या गायको रस्सीसे बांध रखते हैं वैसे ही (जरिमा त्वा

आसि भाहित) बुढापेने तुझे बाँध दिया है। (या मृत्युः) जो मौत (आपमार्ग रखा सुपाथ्या जन्म धत्त) उत्पन्न होते हुए ही तुझे अच्छ फन्देसे बाँध चुकी है (ते तं) तेरी उस मौतको (सत्यस्य हस्ताभ्यां बृहस्पतिः उदमुञ्चत्) सत्यके दोनों हाथोंसे बृहस्पति छुडा देता है।

[२१८] नाना रंग रूपवाली गौवें।

शबरः काक्षीवतः। गावः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।१६९।२)

याः सरूपा विरूपा एकरूपा यासामग्निरिष्ट्या नामानि वेद।
या अङ्गिरसस्तपसेह चक्रुस्ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥ ६१३ ॥

(याः) जो गौवें (स-रूपाः) समान रूपवाली (वि-रूपाः) विभिन्न स्वरूपसे युक्त और (एक रूपाः) एक ही रूप धारण करनेवाली हैं (यासां नामानि) जिनके नामोंको अग्नि (इष्ट्या वेद) यज्ञोंके कारण जानता है तथा (याः) जिन्होंने (इह तपसा) इधर तपश्चर्यासे युक्त (अङ्गिरसः चक्रुः) अंगिराओंको बना दिया (ताभ्यः) उन्हें हे पर्जन्य ! (महि शर्म यच्छ) बडा भारी सुख देदो।

याः सरूपाः विरूपाः एकरूपाः यासां नामानि वेद= गौवें सरूप विरूप एकरूप ऐसी नाना रूपों और रंगोंवाली हैं इनके नाना प्रकारके नाम होते हैं।

[२१९] गायको बुलाना।

देवमुनिरैरम्मदः। अरण्यानी। अनुष्टुप्। (ऋ० १०।१४६।४)

गामङ्गैष आ ह्वयति दार्वङ्गैषो अपावधीत्।
वसन्नरण्यान्यां सायमक्रुक्षदिति मन्यते ॥ ६१४ ॥

(अङ्ग) अजी ! (एषः गां आह्वयति) यह गायको बुलाता है, (एषः दारु अप अवधीत्) यह दूसरा लकडी काटकर दूर फेंक चुका है, और तीसरा (अरण्यानां वसन्) जंगलमें रहता हुआ (सायं) शाम होनेपर (अक्रुक्षत् इति मन्यते) कोई चिल्लाया ऐसा मानता है।

सायंकालके[1] समयकी यह स्थिति है। एक अपने गायोंको अपने पास (गां आह्वयति) बुलाता है दूसरे लकडियाँ तोडकर अपना दिनभरका कार्य समाप्त किया है तीसरा अपनेको कोई बुला रहा है ऐसा मानकर उसके आवाजको सुनना चाहता है।

[२२०] घीका काजल स्त्रियाँ आँखमें डालती है।

संकुसुको यामायनः। पितृमेधः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।१८।७)

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ६१५ ॥

(इमाः सुपत्नीः) ये अच्छी पत्नियाँ (अविधवाः) वैधव्य दोषसे रहित होकर (सर्पिषा आञ्जनेन) घृतके काजलका अञ्जन लगाकर (सं विशन्तु) इकट्ठी हो प्रवेश करें, (जनयः) पुत्रोंको जन्म देनेवाली ये नारियाँ (अन् अश्रवः) आँसुओंसे रहित हो अर्थात् आनन्द प्रसन्न और (अन्-अमीवाः) निरोगी होकर (सुरत्नाः) अच्छे रत्नोंसे युक्त (योनिं अग्रे आरोहन्तु) घरमें पहले बैठ जायें।

१ विशन्तु= घीके काजलसे बनाया अञ्जन लगाकर स्त्रियाँ उत्तम स्थानपर आ जाँय।

यहां सर्पिषा आञ्जनेन का अर्थ ठीक तरह समझ लेना चाहिये। (१) घृतयुक्त अञ्जनसे (२) घृत अथवा अञ्जनसे अथवा (३) घृतसे और अञ्जनसे ऐसे इसके अर्थ होते हैं।

तिलोंके तेलका कज्जल मक्खनमें अथवा घृतकीके तेलमें मिलाकर आंखमें डालनेकी प्रथा आजतक हम देखते हैं। कर्पूरकी ज्योतीका कज्जल बालकोंके आंखोंमें डालते हैं। मूर्तिकी पूजा करनेवाले घीसे दीपसे मिलनेवाला कज्जल मूर्तिकी आंखोंमें डालनेके लिये बर्तते हैं। दीप तिलोंके तेलका घीका कर्पूरका हो उसपर कुछ बर्तन रखनेसे कज्जल मिलता है। यह मक्खनमें घृतकीके तेलमें मिलाकर आंखोंमें डालते हैं। अञ्जनके विषयमें वैद्यग्रन्थोंमें बहुत लिखा है। इस मन्त्रमें वैदिक प्रथाका वर्णन है।

[२२१] गायका दूध दुष्ट न पीये।

वासवः। अग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।८७।१७; अथर्व ८।३।१७)

संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद् यातुधानो नृचक्षः।

पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात् तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मणि ॥ ६१६ ॥

हे (नृ-चक्षः) मानवोंके निरीक्षक! (उस्रियायाः संवत्सरीणं पयः) गायका सालभरका मिलनेवाला जो दूध है (तस्य यातुधानः मा आशीत्) उसका पान यातना देनेवाला दुष्ट न करे! हे अग्ने! (यतमः पीयूषं तितृप्सात्) उनमेंसे जो दुष्ट दूधरूपी अमृतको पीयेगा (तं प्रत्यञ्चं अर्चिषा मर्मणि विध्य) उसे सबके सामने अपने तेजसे मर्मस्थलमें वेध डाल।

१ उस्रियायाः पयः यातुधानः मा आशीत्= गायका दूध दुष्ट मनुष्य न पीवे।

२ यतमः पीयूषं तितृप्सात् तं मर्मणि विध्य= इन दुष्टोंमेंसे जो दूध पीवेगा, उसे मर्मस्थलमें वेध डाल।

पायुर्भारद्वाजः। रक्षोहाग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।८७।१६)

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः।

यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥ ६१७ ॥

हे अग्ने! (यः यातुधानः) जो राक्षस (पौरुषेयेण क्रविषा) मानवी मांससे तथा (अश्व्येन पशुना समङ्क्ते) घोडेके मांससे पुष्ट होता है और (यः अघ्न्यायाः क्षीरं भरति) जो अवध्य गायके दूधको छीन लेता है, (तेषां शीर्षाणि) उनके सरको (हरसा अपिवृश्च) अपने तेजसे काट डालो।

यः यातुधानः अघ्न्यायाः क्षीरं हरति तेषां शीर्षाणि अपिवृश्च= जो दुष्ट गौके दूधका अपहरण करते हैं उनके सिरोंको काट डालो।

पायुर्भारद्वाजः। रक्षोहाग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।८७।१८)

विषं गवां यातुधानाः पिबन्त्वा वृश्च्यन्तामदितये दुरेवाः।

परैनान्देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥ ६१८ ॥

(यातुधानाः गवां विषं पिबन्तु) राक्षस गायोंका विष पी जायें और (अदितये) अदीनताके लिए (दुरेवाः आ वृश्च्यन्तां) दुःखदायक लोग तेरे लिए दूर हथियारसे टुकडे टुकडे हो गिर पडें। (देवः सविता) दानी तथा उत्पादक परमात्मा (एनान् परा ददातु) इन्हें दूर फेंक दे और (ओषधीनां भागं)-ओषधियोंके हिस्सेके पानेसे वे (पराजयन्तां) वंचित रहें।

[२२२] सफेद सौ बैल।

कुसः काण्वः । इन्द्रः मरुत्वान् । गायत्री (ऋ० ८।५५।२)

शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचन्ते । मह्ना दिवं न तस्तभुः ॥ ६१९ ॥

(श्वेतासः शतं उक्षणः) सफेद रंगवाले सौ बैल (तारः दिवि न रोचन्ते) तारकागण द्युलोकमें जिस तरह जगमगाते हैं उसी प्रकार शोभायमान होते हैं और (मह्ना) महनीय तेजसे (दिवं न) द्युलोक सदृश उत्कृष्ट विभागको (तस्तभुः) स्थिर कर चुके हैं।

[२२३] अमृत जैसा दूध देनेवाली गाय।

अथर्वा । कश्यपः सर्वे ऋषयः छन्दांसि च, विराट् । त्रिष्टुप् । (अथर्व ८।१०।२१)

केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिर्वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना ।

अथातर्पयच्चतुरश्चतुर्धा देवान् मनुष्याँ३असुरानुत ऋषीन् ॥ ६२० ॥

(केवली: गृष्टिः) सिर्फ गाय ही (पीयूषं प्रथमं दुहाना) अमृतरूपी दूध सबसे प्रथम देनेवाली (इन्द्राय वशं दुदुहे) इन्द्रके लिए अनुकूलताके साथ दुहती है (अथ चतुरः) और चारों देव मानव असुर एवं ऋषियोंको (चतुर्धा अतर्पयत्) चार प्रकारसे तृप्त करती है।

केवली गृष्टि पीयूषं दुहाना वशं दुदुहे चतुरः अतर्पयत् = केवल अकेली गाय ही अमृत जैसा दूध देती है और चारों प्रकारके लोगोंको तृप्त कर देती है।

ब्रह्मा । ऋषभः । त्रिष्टुप् । (अथर्व ९।४।४)

पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां अथो पिता महतां गर्गराणाम् ।

वत्सो जरायु प्रतिधुक्पीयूष आमिक्षा घृतं तद्वस्य रेतः ॥ ६२१ ॥

(वत्सानां पिता) बछड़ोंका पिता (अघ्न्यानां पतिः) गौओंका पति और (महतां गर्गराणां पिता) बड़े प्रवाहोंका पालक (वत्सः जरायु) बछड़ा जन्मते ही (प्रति धुक पीयूषः) प्रतिदिन अमृतका दोहन करता हुआ (आमिक्षा घृतं) दही और घी देता है (तत् उ अस्य रेतः) वही सचमुच इसका वीर्य है।

अघ्न्यानां पतिः पीयूषः प्रतिधुक् आमीक्षा घृतं तद् अस्य रेतः = सांड गौओंका पति होता है प्रतिदोहनमें (उसके वीर्यसे उत्पन्न हुई गौमें) अमृत जैसा दूध ही दोहन करके देता है दही और घी भी वही देता है यही इसके रेतका महत्त्व है।

सांडके वीर्यसे उत्पन्न होनेवाली गौमें दूध दही और घीकी मात्रा न्यूनाधिक रहती है। अर्थात् इनकी मात्रा न्यूनाधिक होना सर्वथा सांडके वीर्यपर अवलम्बित है।

अथर्वा । मधु अश्विनौ । त्रिष्टुभार्षी पङ्क्तिः । (अथर्व ९।१।२)

महत्पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः ।

यत ऐति मधुकशा रराणा तत्प्राणस्तदमृतं निविष्टम् ॥ ६२२ ॥

(अस्याः पयः) इस गायका दूध (महत् विश्वरूपं) बड़ा सब रूप बतानेवाला है (उत) और (त्वा समुद्रस्य रेत आहुः) तुझे समुद्रका वीर्य कहते हैं (यतः) जहाँसे (मधुकशा रराणा एति) यह मीठा दूध देनेवाली गौ शब्द करती हुई आती है (तत् प्राणः) वह दूध प्राण है (तत् अमृतं निविष्टं) वह अमृत ही सब जगह प्रविष्ट है।

अस्याः पयः अमृतं निविष्टं = इस गौका दूध ऐसा है कि जिसमें अमृत रखा है।

पराशरः शाक्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।७१।९)

मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे ।

राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥ ६२३ ॥

(य एकः सूरः) जो अकेला सूर्य (मनः न) मनके समान (अध्वनः) अपने मार्गका (सद्य एति) तुरन्त आक्रमण करता है वह (वस्वः सत्रा ईशे) सभी प्रकारके धनोंका संपूर्ण स्वामी है उसी प्रकार (राजाना सुपाणी) तेजस्वी उत्तम हाथवाले (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण दोनों देव (गोषु प्रियं अमृतं) गौओंमें पाया जानेवाला सबका प्यारा दुग्ध (रक्षमाणा वर्तेते) सुरक्षित रखते हैं ।

समान वसों और धनोंका एकमेव प्रभु सूर्य है और वही तेजस्वी मित्र अग्निका रूप है । वरुण जलका अधिष्ठाता है । ये दोनों देव गायके स्तनमें अच्छा पौष्टिक दूध पैदा करके उसका संरक्षण भी करते हैं । यह दूध देवोंका सुरक्षित किया हुआ धन है इसीलिए वह श्रेष्ठ है । यदि दूधमें श्रेष्ठ गुण न हों तो, भला देवता उसकी रक्षाके लिए इतना परिश्रम क्यों उठाते ? देव भी इसकी रक्षामें दत्तचित्त हैं इसलिए दुग्धकी श्रेष्ठता निर्विवाद है ।

मित्रावरुणा गोषु प्रियं अमृतं रक्षमाणा वर्तेते = मित्र और वरुण गायोंमें दूधरूपी प्रिय अमृत सुरक्षित रखनेका काम करते रहते हैं ।

अथर्वा । भैषज्यं आयुष्यं ओषधयः । पञ्चपदा विराडति शक्वरी । (अथर्व ८।७।१२)

मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव ।

मधुमत् पर्णं मधुमत् पुष्पमासां मधोः संभक्ता अमृतस्य

भक्षो घृतमन्नं दुह्रतां गोपुरोगवम् ॥ ६२४ ॥

(आसां वीरुधां) इन वनस्पतियोंका (मूलं मधुमत्) मूल मीठा है (अग्रं मधुमत्) अगला भाग मीठा है (मध्यं मधुमत् बभूव) बीचका हिस्सा भी मीठा है, (आसां पर्णं मधुमत्) इनका पत्ता मिठाससे युक्त और (पुष्पं मधुमत्) फूल मीठा हो, (मधोः संभक्ता) मधुसे भरपूर सींची हैं और (अमृतस्य भक्षः) अमृतका भक्ष ही है (गो पुरो-गवं) गाय जिसके अग्रभागमें रखी हुई है ऐसा (घृतं अन्नं दुह्रतां) घी और अन्न दे दे ।

गो पुरो गवं अमृतस्य भक्षः घृतं अन्नं दुह्रतां = गौ जिसमें मुख्य है ऐसा अमृत अन्न जो घृत आदि रूप ही है वह हमें गौ देवे । दूध दही घी आदि पदार्थ अमृत अन्न हैं जो गौ आदिसे न मारकर ही मिलते हैं । ये पदार्थ पर्याप्त प्रमाणमें हमें गौसे मिलें ।

[२२४] मधुर दूध देनेवाली गाय ।

अथर्वा । यमः मन्त्रोक्ताः । त्रिष्टुप् । (अथर्व १८।४।३)

कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलमिडां धेनुं मधुमतीं स्वस्तये ।

ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेष्वग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ॥ ६२० ॥

(स्वस्तये) कल्याणके लिए (चतुर्बिलं) चार स्तनरूपी छिद्रोंसे युक्त (कोशं कलशं) मानों जो दूधका खजाना है एवं घड़ेके तुल्य स्तनसे युक्त (मधुमतीं इडां धेनुं) मीठे दूधवाली इडा नामक गायको (दुहन्ति) निचोड़ते हैं । हे अग्ने ! (जनेषु ऊर्जं मदन्तीं) जनतामें अपने दुग्धरूपी अन्नसे बल पैदा करती हुई (अदितिं) मारनेके अयोग्य गायको (परमे व्योमन्) विश्वमें (मा हिंसीः) मत मार ।

मधुमतीं इरां धेनुं चतुर्धिकां कलशां स्वस्तये दुहन्ति = मधुर रसवाली अन्न देनेवाली गौसे चार थनवाले कलशको सबके कल्याणके लिये दुहते हैं।

अन्नेषु ऊर्जं मदन्तीं अदितिं मा हिंसीः = अन्नोंको बलवर्धक बल देनेवाली और घृत स्रवनेवाली यह गौ है अतः इसकी हिंसा न कर।

गोतमो राहूगणः। विश्वेदेवाः। गायत्री। (ऋ. १।९०।८)

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ ६२६ ॥

(नः वनस्पतिः) हमारे लिए सभी पेड़ (मधुमान् अस्तु) मीठा रस देनेवाला बनें (सूर्यः मधुमान्) सूर्य हमें मधुर प्रकाश दे (नः गावः) हमारी गौएँ (माध्वीः भवन्तु) मधुर दूध देनेवाली बनें।

नः गावः माध्वीः भवन्तु = हमारी गौवें मधुररस देनेवाली हों।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः (वृष्टिकामः) कुमार आग्नेयो वा। पर्जन्यः। त्रिष्टुप्। (ऋ. ७।१०१।१)

तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा या एतद्दुह्रे मधुदोघमूधः।

स वत्सं कृण्वन् गर्भमोषधीनां सद्यो जातो वृषभो रोरवीति ॥ ६२७ ॥

(ज्योतिः अग्राः तिस्रः वाचः प्र वद) जिनके अग्रभागमें प्रकाश है, ऐसी तीन वाणियोंको उच्च स्वरसे बोल (याः) जो (एतत् मधुदोघं ऊधः दुह्रे) इस मधुमय रसका दोहन करनेवाले दुग्धाशय रूपी मेघको दुहती हैं। (सः वृषभः) वह बैलके समान गरजनेवाला मेघ (सद्यः जातः) तुरन्त पैदा होकर (ओषधीनां गर्भं) वनस्पतियोंके गर्भको (वत्सं कृण्वन्) बछड़ा करते हुए (रोरवीति) खूब गरजता है।

मधुदोघं ऊधः दुह्रे = मधुररसका खजाना ऐसा यह थैला दुहा जाता है।

वामदेवो गौतमः। क्षेत्रपतिः। त्रिष्टुप्। (ऋ. ४।५७।२)

क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व।

मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥ ६२८ ॥

हे (क्षेत्रस्य पते) खेतके मालिक! (धेनुः पयः इव) गाय दूध जिस प्रकार देती है वैसे ही (मधुमन्तं ऊर्मिं) मीठे तरंगको (अस्मासु धुक्ष्व) हममें दोहन करके रखो (ऋतस्य पतयः) सत्यके अधिपति (सुपूतं मधुश्चुतं घृतं इव) अत्यन्त विशुद्ध तथा मधु टपकानेहार घृतके समान (नः मृळयन्तु) हमें सुख दें।

विश्वामित्रो गाथिनः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ. ३।३९।६)

इन्द्रो मधु संभृतमुस्रियायां पद्वद्विवेद शफवन्नमे गोः।

गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान् ॥ ६२९ ॥

इन्द्रने (उस्रियायां संभृत मधु) गौमें इकट्ठा कर रखा हुआ मीठा दूध (विवेद) प्राप्त किया। पश्चात् (पद्वत् शफवत् गोः नमे) पैरोंसे युक्त एवं खुरवाली गौएँ लाया (दक्षिणावान्) दानशूर इन्द्रने (गुहा हितं) गुफामें छिपे हुए (गुह्यं) गुप्त छिपकर संचार करनेवाले तथा (अप्सु गूळ्हं) जलोंमें गुप्त रूपसे रहनेवाले धनको (दक्षिणे हस्ते दधे) दाहिने हाथमें धर दिया पकड़ रखा।

उस्रियायां संभृतं मधु विवेद = गौमें भरा हुआ मधुर रस प्राप्त किया।

सूर्याः काश्यपः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।१०६।१०)

आरङ्गरेव मध्वेरयेथे सारघेव गवि नीचीनबारे ।
कीनारेव स्वेदमासिष्विदाना क्षामेवोर्जा सूयवसात्सचेथे ॥ ६३० ॥

हे अश्विनौ ! (आरंगरा इव) दो गर्जना करनेवाले मेघोंकी तरह तुम दोनों (मधु आ ईरयेथे) जलको चारों ओरसे भेजते हो (गवि नीचीनबारे) गायमें नीचे मुंहवाले छेदमें (सारघा इव) मधुमक्खियोंके समान मधुर दूध प्रेरित करते हो (कीनारा इव) जैसे साधारण मनुष्य काम करनेपर पसीनेसे तर हो जाते हैं वैसे ही तुम (स्वेदं आसिष्विदाना) पसीना टपकाते हो और (सूयवसात् क्षामा इव) अच्छे घासके खानेसे दुबलीपतली गाय जैसे पुष्ट हुआ करती है वैसे ही तुम (ऊर्जा सचेथे) बलको प्राप्त करते हो ।

गवि नीचीनबारे मधु आ ईरयेथे= गायमें नीचेकी ओर मुंह करके छेदमें मधुर दूध रखता है, उसे तुम प्रेरित करते हो ।

सूयवसात् क्षामा ऊर्जा सचेथे= उत्तम घास खाकर दुर्बल गौ भी बलको प्राप्त करती है यह तुम्हारी ही योजना है ।

[२७५] ओषधियोंका रस ही दूध है ।

गौरिवीतिः शाक्त्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।७३।९)

यत्क यद्स्वाप्स्वा निषिक्त उतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥ ६३१ ॥

(अस्य यत् अर्क) इसका जो एक बढिया (अप्सु आ निषिक्तं) जलोंमें छिडकाया गया है (उत) और (तत् अस्मै) जो उसे (मधु चच्छद्यात् इत्) मधुका दान करता रहे इसलिये (यत् ऊधः पृथिव्यां अति सितं) जो इसका भाण्डार भूमिमें रखा है वही (ओषधीषु गोषु) वनस्पतियोंमें और गायोंमें (पयः अदधाः) दुग्ध या रस रूपमें रख दिया गया है ।

जो रस जलोंमें है वही भूमिमें प्रविष्ट होकर औषधियोंके रूपसे ऊपर आता है उनको गौवें खाती हैं और वही रस दूधके रूपमें हमें प्राप्त होता है ।

यत् अप्सु निषिक्तं यत् पृथिव्यां अतिसितं, (यद्) ओषधीषु मधु चच्छद्यात् (तत्) गोषु पयः अदधाः= जो जलोंमें रस था जो पृथिवीमें घुस गया था और जो औषधियोंमें मधुर रस था वही गौओंमें दूधके रूपसे मिलता है ।

मेधातिथिः काण्वः । आपः । गायत्री । (ऋ० १।२३।१६)

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् । पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥ ६३२ ॥

(अध्वरीयतां) यज्ञकी इच्छा करनेहारे हमारे सदृश लोगोंकी (जामयः अम्बयः) प्रिय तथा पूज्य गोमाताएं (मधुना) अत्यन्त माधुर्यसे युक्त (पयः पृञ्चतीः) दूध देती हुई (अध्वभिः यन्ति) मार्गोंसे जाती हैं । (मधुना पयः पृञ्चतीः) मिठाससे भरा दूध देनेवाली (जामयः अम्बयः) पूज्य गोमाताएं हैं ।

पराशर शाक्त्यः । अग्निः । द्विपदा विराट् । (ऋ० १।६९।२)

वेधा अदृप्तो अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां स्वाद्मा पितूनाम् ।
जने न शेव आहूर्यः सन्मध्ये निषत्तो रण्वो दुरोणे ॥ ६२३ ॥

(वेधाः) कर्मकुशल (अ-दृप्तः) गर्वरहित (विजानन्) विशेष रीतिसे जानता हुआ (अग्निः) अग्नि (गोनां ऊधः न) गायोंके स्तनोंकी नाई (पितूनां) सब अन्नोंको (स्वाद्म) मधुरता देनेवाला है (जने न शेवः) जनतामें सेवा करनेयोग्य मानवके तुल्य (दुरोणे निषत्तः) घरमें बैठा हुआ यह अग्नि (रण्वः) रमणीय है ।

गोनां ऊधः पितूनां स्वाद्म= गायोंके स्तन अन्नोंको मधुरिमामय बना देता है । जिससे अन्नोंमें मिठास आती है ऐसा पेय गायके स्तनोंसे ही मिलता है।

त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।५।४)

ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते ।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम् ॥ ६२४ ॥

(ऋतस्य वर्तनयः) यज्ञके प्रवर्तक (प्रदिवः इषः) अत्यन्त दिव्य अन्न पानेकी इच्छा करनेवाले (वाजाय सुजातं हि सचन्ते) बल या अन्नके लिए सुन्दर ढंगसे प्रकट अग्निकी सेवा करते हैं, इसके समीप जाते हैं (वावसाने रोदसी) सबको ढकनेवाली द्यावापृथिवीके (अधिवासं) ऊपर निवास करनेवाले अग्निको (मधूनां घृतैः अन्नैः वावृधाते) मधुओंसे युक्त घृतों और अन्नोंसे बढाते हैं ।

वव्रिरात्रेयः । अग्निः । अनुष्टुप् । (ऋ० ५।१९।४)

प्रियं दुग्धं न काम्यमजामि जाम्योः सचा ।
घर्मो न वाजजठरोऽदब्धः शश्वतो दभः ॥ ६२५ ॥

(दुग्धं न) दूधके तुल्य (प्रियं काम्यं) प्यारे और कमनीय स्तोत्रको जो (अजामि) निर्दोष है उसे (जाम्योः सचा) द्यावापृथिवीके साथ रहनेवाला अग्नि जो (शश्वतः दभः) हमेशा शत्रुका विनाशकर्तापर (अदब्धः) शत्रुसे कभी परास्त न होता हुआ (घर्मः न) घर्मके तुल्य (वाजजठरः) अन्नसे जिसका पेट भरा हो ऐसा है सुन ले।

प्रियं काम्यं दुग्धं= दूध ही सबका प्रिय और इष्ट है ।

[२२६] गायका दोहन ।

अथर्वा । कश्यप सर्वे ऋषयः छन्दांसि, विराट् । त्रिष्टुप् । (अथर्व ८।९।१)

कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः कस्माल्लोकात् कतमस्याः पृथिव्याः ।
वत्सौ विराजः सलिलादुदैतां तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा ॥ ६२६ ॥

(तौ कुतः जातौ) वे दोनों कहाँसे प्रकट हुए, (सः अर्धः कतमः) वह कौनसा अर्ध भाग है ? और वह (कस्मात् लोकात्) किस लोकमेंसे तथा (कतमस्याः पृथिव्याः) किस भूविभागसे (सलिलात् विराजः) जलतत्त्वसे विराजमान होकर (वत्सौ उत् ऐतां) दो बछडे प्रकट होते हैं ? (तौ त्वा पृच्छामि) उन दोनोंके बारेमें मैं तुमसे पूछता हूँ, उनमेंसे वह गाय (कतरेण दुग्धा) किससे दुही जाती है ?

गायका दोहन किसने किया ? क्योंकि कुशल हाथोंसे ही गायका दोहन होना चाहिये वैसा हुआ या नहीं ?

अगस्त्यस्वसा । बन्धवादयः । अनुष्टुप् । (ऋ १ ।६०।११ अथर्व- ६।९१।२)

न्य१ग् वातो वाति न्यक् तपति सूर्यः ।
नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग् भवतु ते रपः ॥ ६३७ ॥

(वातः न्यक् वाति) अपान वायु निम्न गतिसे चलता है (सूर्यः न्यक् तपति) सूर्य निम्नभागमें तपता है (अघ्न्या नीचीन दुहे) गाय निम्न भागसे दूध देती है । (ते रपः न्यक् भवतु) तेरा दोष नीचकी राहसे दूर हो जाय ।

अघ्न्या नीचीन दुहे = गाय निम्न भागसे दुही जाती है ।

नोधा गौतमः । मरुतः । जगती । (ऋ १।६४।५)

ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान्विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥ ६३८ ॥

(ईशानकृतः) राज्यपर अधिनायकोंको प्रस्थापित करनेवाले (धुनयः) शत्रुको हिलानेवाले (रिशादसः) शत्रु विध्वंसक (तविषीभिः वातान् विद्युतः अक्रत) अपने सामर्थ्यसे वायुप्रवाहों तथा बिजलियोंको प्रवर्तित कर चुके । (परिज्रयः धूतयः) वेगपूर्वक हमले करके शत्रुको हटा देने वाले वीर पुरुष (दिव्यानि ऊधः) दिव्य स्तनोंका (दुहन्ति) दोहन करते हैं और (पयसा भूमिं पिन्वन्ति) दुग्ध या जलसे भूमिको नमीसे युक्त कर देते हैं ।

दिव्यानि ऊधः दुहन्ति = दिव्य स्तनोंका दुग्ध निकालते हैं, मेघसे जलोंकी वृष्टि कर देते हैं । दिव्य स्तनोंसे निकला दुग्धका पान करते हैं । यहां मेघसे होनेवाली वृष्टीका वर्णन गौके स्तनसे दूध दुहनेके समान किया गया है ।

शशकर्णः काण्वः । अश्विनौ । अनुष्टुप् । (ऋ ८।९।१९)

यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः ।
यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥ ६३९ ॥

(यत्) जब (ऊधभिः गावः न) अपने स्तनोंसे गौएं जिस प्रकार दूध देती हैं उसी प्रकार (आपीतासः अंशवः दुह्रे) पीये हुए सोमरस आनन्दका दोहन करते हैं । (यत् वा) अथवा जब (देवयन्तः) देवोंकी कामना करनेवाले (वाणीः प्र अनूषत) वाग्मियोंने खूब स्तुति की तब अश्विनोंने दया करना शुरु किया ।

गावः ऊधभिः दुह्रे = गौवें अपने स्तनोंसे दूध देती हैं ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । सरस्वती । त्रिष्टुप् । (ऋ ७।९५।२)

एकाचेतत्सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥ ६४० ॥

(गिरिभ्यः) पहाडोंसे (आ समुद्रात्) समुद्रतक (एका सरस्वती) एक सरस्वती ही जो कि (नदीनां शुचिः) नदियोंमें पवित्र है (यती अचेतत्) चली जाती हुई समझ गयी और (भुवनस्य भूरेः रायः चेतन्ती) भुवनके बडे भारी धनसंपदाको जनाती हुई (नाहुषाय) नहुष पुत्रके लिए (घृत पयः दुदुहे) घी और दूधका दोहन कर चुकी ।

सरस्वती घृतं पयः दुदुहे = दूधका भण्डार नदी देनेवाली भी दूध देती है ।

[२२७] गायका दूध दुहनेवाली (कन्या) दुहिता ।

सुबन्धुरेष आत्रेयः । अग्निः । गायत्री । (ऋ० ५।३।११)

त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः । अस्मे रयिं नि धारय ॥ ६४१ ॥

हे (दिवः दुहितः) स्वर्गकन्या उषादेवी (त्वं) तू (त्येभिः वाजेभिः आ गहि) इन अन्नोंके साथ इधर आ और (अस्मे रयिं नि धारय) हमें पर्याप्त धन दे दो ।

दुहिता कन्याका पर्यायवाची शब्द है जो सूचित करता है कि, गायका दोहन करना कन्याके सुपुर्द है। गौका दूध निचोडना कन्याके लिए अभिमानकी बात थी । दुहिता= (दोग्धेः निरुक्त)=दुहिता वह है कि जो गौका दोहन करती है ।

[२२८] कामदुघा धेनु (कामधेनु) ।

अथर्वा । यमः मन्त्रोक्ताः । ३३ उपरिष्टाद्बृहती, ३४ त्रिष्टुप् । (अथर्व १८।४।३३-३४)

एतास्ते असौ धेनवः कामदुघा भवन्तु ।

एनीः श्येनीः सरूपा विरूपास्तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु त्वात्र ॥ ६४२ ॥

एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते ।

तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः ॥ ६४३ ॥

(असौ) हे अमुक नामवाले पुरुष ! (एताः) ये गायें (ते) तेरे लिए (कामदुघाः भवन्तु) कामनाओंको पूर्ण करनेवाली हों (एनीः) सफेद जैसे रंगवाली (श्येनीः) सफेद (सरूपाः) एक रूपवाली और (विरूपाः) विविध रूपवाली (तिलवत्साः) तिलरूपी बछडेसे युक्त गायें (अत्र) इधर (त्वा उपतिष्ठन्तु) तेरी सेवा करती रहें ॥ ३३ ॥

(अस्य ते) इस तेरे (हरिणीः धानाः) हरे रंगवाले धान (एनीः श्येनीः धेनवः) अरुण और सफेद गायें हों (कृष्णाः धानाः) काले धान (रोहिणीः धेनवः) लाल रंगकी गायें बनें (तिलवत्साः) तिलरूपी बछडोंवाली (अनपस्फुरन्तीः) कभी न नष्ट होती हुई (अस्मै) इसके लिए (विश्वाहा) हमेशा (ऊर्जं दुहानाः सन्तु) बलदायक रस दूधको दोहती रहें ॥ ३४ ॥

एताः ते कामदुघाः सन्तु धेनवः ऊर्जं दुहानाः सन्तु= ये गौवें तेरे लिये यथेच्छ दूध देनेवाली हों, वे गौवें तेरे लिये बलवर्धक अन्न दुहकर देनेवाली बनें ।

[२२९] दूध देनेवाली भूमि जैसी गौ है ।

अथर्वा । भूमिः । त्रिष्टुप् । (अथर्व १२।१।५९)

शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।

भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥ ६४४ ॥

(शन्तिवा सुरभिः स्योना) शांतिदायक, सुगन्धयुक्त और सुखकारक (कीलालोध्नी) अन्न भाण्डारसे पूर्ण (पयस्वती) दूध या जलसे समृद्ध (मे पृथिवी भूमिः) मेरी विस्तारशील मातृभूमि जैसी गौ (पयसा सह अधि ब्रवीतु) दूधके प्रदानके साथ जो कुछ कहना हो सो कह दे ।

गौ और भूमिका समान रूपसे यहां वर्णन है ।

[२२०] पांच पशुओंमें प्रथम गौओंकी गणना ।

अथर्वा । भव-शर्व-रुद्राः । आर्षी । (अथर्व० ११।२।९)

चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दशकृत्वः पशुपते नमस्ते ।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥ ६४५ ॥

हे पशुओंके स्वामिन् ! (भवाय चतुः अष्टकृत्वः नमः) उत्पत्ति करनेवाले देवको चार चार तथा आठ बार नमन हो । (ते दशकृत्वः नमः) तेरे लिए दस बार नमस्कार हो (इमे पञ्च पशवः) ये पांच पशु (तव विभक्ताः) तेरे लिए रखे हैं जैसे (गावः अश्वाः, पुरुषाः अजावयः) गायें घोडे, पुरुष तथा बकरियाँ और भेडें ।

पांच पशुओंमें गौकी प्रथम गणना है । गायें घोडे पुरुष (मानव) बकरियां और भेडें । इनमें गौओंका नाम प्रथम है ।

[२२१] गोदुग्ध पीनेवाले देव ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।३५।१४)

आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तेदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥ ६४६ ॥

(इदं नवीयः) यह नया (ब्रह्म क्रियमाणं) स्तोत्र तैयार हो रहा है उसका आदितिके पुत्र वसु और रुद्र (जुषन्त) स्वीकार करें, (दिव्याः) द्युलोकमें उत्पन्न (ये) जो (गोजाताः पार्थिवासः) गोदुग्ध पीकर बढे हुए भूलोकके (उत यज्ञियासः) तथा पूजनीय हैं वे (नः शृण्वन्तु) हमें ध्यान दें हमारा कथन सुन लें ।

आदित्य रुद्र और वसु ये (गो-जाताः यज्ञियासः) गौके हित करनेके लिये उत्पन्न हुए देव यज्ञमें रहते हैं । वे गोदुग्ध पीते हैं और गौका हित करते हैं ।

[२२२] तीनों लोकोंमें दूधकी प्रतिष्ठा ।

बृहस्पतिः । फालमणिः वनस्पतिः । ५ षट्पदा जगती ६ सप्तपदा विराट् शक्वरी त्र्यवसाना अष्टापदा अष्टिः ११ १० पथ्यापंक्तिः । त्र्यवसाना षट्पदा जगती । (अथर्व १० ।६।५।६ १२ २५ ३१)

तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे ॥ ६४७ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ॥ ६४८ ॥
स मायं मणिरागमत्सह गोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह ॥ ६४९ ॥
मधोः घृतस्य धारया ॥ ६५० ॥
यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धमुपासते ।
स मायं अधिरोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥ ६५१ ॥

(तस्मै) उसके लिए (घृतं सुरां मधु+अन्नं अन्नं क्षदामहे) हम घी सुरा शहदका अन्न तथा खाद्यसामग्री इकट्ठा कर रहे हैं (ओजसे) बल पानेके लिए (बृहस्पतिः य) बृहस्पतिने जिस (खदिरं उग्रं घृतश्चुतं फालं मणिं अबध्नात्) खदिर पेडके बने हुए तेजस्वी घृत टपकाने वाले फाल मणिको बाँध रखा है (सः मणिः) वह मणि (मा) मेरे समीप (गोभिः प्रजया

•

अश्वावद्भिः अन्नेन सह) गायों सतान बकरी भेड़ और अन्नके साथ (आगमत्) आ जाय - मीठे घृतकी धाराके साथ आए ।

(यस्य दुग्धं पयः) जिसके निचोडे हुए दूधको (इमे त्रयः लोकाः उपासते) ये तीन लोक पूज्य मानते हैं । (सा मम मतिः श्रेष्ठयाय) वही यह मेरी श्रेष्ठताके लिए (मा भूयसा अभिरोहतु) मुझपर सरपरस्त रहे ।

इमे त्रयो लोकाः दुग्धं पयः उपासते= ये तीनों लोक दूधकी उपासना करते हैं इतनी दूधकी महिमा है।

[२३३] घीके सेवनसे शरीरका संवर्धन ।

बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः । असुनीतिः । त्रिष्टुप् । (ऋ १०।५९।५)

असुनीते मनो अस्मासु धारय जीवातवे सु प्र तिरा न आयुः ।
रारन्धि नः सूर्यस्य संदृशि घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व ॥ ९५१ ॥

हे (असु नीते) प्राण ले चलनेवाली देवि ! (अस्मासु मनः धारय) हममें मन रख दे और (नः आयुः) हमारे जीवनको (सु प्र तिर) खूब विस्तृत कर (नः सूर्यस्य संदृशि रारन्धि) हमें सूर्यके दर्शनमें प्रस्थापित कर और (त्वं) तू (घृतेन तन्वं वर्धयस्व) घीसे शरीरकी वृद्धि कर ।

घृतेन तन्वं वर्धयस्व = घीसे शरीरकी वृद्धि कर।

[२३४] घीके सेवनसे सुंदरताकी प्राप्ति ।

चित्रमहा वसिष्ठ । अग्निः । जगती । (ऋ १०।१२२।२)

जुषाणो अग्ने प्रति हर्य मे वचो विश्वानि विद्वान् वयुनानि सुक्रतो ।
घृतनिर्णिग्ब्रह्मणे गातुमेरय तव देवा अजनयन्ननु व्रतम् ॥ ९५२ ॥

हे (सुक्रतो) सुन्दर कर्मवाले अग्ने ! तू (विश्वानि वयुनानि विद्वान्) सभी ज्ञानोंको जानता हुआ एवं (घृत-निर्णिक्) घृतके सेवनसे शुद्ध रूपवाला बनकर (मे वचः जुषाणः) मेरा भाषण आदरपूर्वक सुनता हुआ (प्रति हर्य) उसकी इच्छा कर और (ब्रह्मणे गातुं एरय) ज्ञानीके लिए मार्ग प्रेरित कर क्योंकि (तव व्रतं अनु) तेरे व्रतके पीछे (देवाः अजनयन्) देवोंने कर्मका उत्पादन किया ।

घृत निर्णिक् = घृतसे सुंदर रूपकी प्राप्ति करनेवाला । (जैसा घृतका हवन होते ही अग्निका रूप और तेज बढता है वैसा ही घृतका सेवन करनेसे मनुष्यका रूप और तेज बढता है ।)

[२३५] घृतमिश्रित अन्नका भक्षण ।

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् । (ऋ ६।६७।८)

ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद् वां सत्यो अरतिर्ऋते भूत् ।
तद् वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं दाशुषे वि चयिष्टमंहः ॥ ९५४ ॥

(सुमेधा) बुद्धिमान पुरुष (ता सदं) उन दोनोंको हमेशा (जिह्वया इदं आ) भाषणसे इसकी याचना करता है (यद्) जब (वां अरतिः) तुम दोनोंका गमनशील भक्त (ऋते सत्यः आ भूत्) यज्ञमें सच्चा बने । हे (घृतान्नौ) घृतको अन्नके रूपमें स्वीकार करनेवाले (वां तद् महित्वं अस्तु)

तुम दोनोंका यह महत्त्व वैसे ही बना रहे (दाशुषे) दानीके लिए (युवं) तुम दोनों (अंहः चित् चक्रथुः) पापसे दूर कर दो।

घृताची (घृत + अञ्ची) = घृत ही जल रूपमें लानेवाले अथवा घृतमिश्रित जल लानेवाले। देव घृतमिश्रित जलका सेवन करते हैं।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्राविष्णू। त्रिष्टुप्। (ऋ० ६।६९।६)

इन्द्राविष्णू हविषा वावृधानाऽग्राद्वाना नमसा रातहव्या।

घृतासुती द्रविणं धत्तमस्मे समुद्र' स्थ कलश सोमधानः॥ ९५५॥

हे (घृतासुती इन्द्राविष्णू) घृतयुक्त अन्नका सेवन करनेवाले इन्द्र और विष्णु! (हविषा वावृधाना) हविसे बढते हुए (अग्राद्वाना) सबसे पहले सोमको खानेवाले (नमसा रातहव्या) नमन पूर्वक जिन्हें हविर्भाग दिया गया है ऐसे तुम दोनों (अस्मे द्रविणं धत्तं) हमें धन दे डालो, क्योंकि तुम (सोमधानः कलशः समुद्रः स्थः) सोम रखा हुआ घडा और समुद्रके तुल्य परिपूर्ण हो।

घृतासुती = घृतमिश्रित जल खानेवाले देव हैं। जलमें घी मिलाते और उस जलको खाते हैं।

[२२६] गोस्वामी, ग्वाले और गौओंका परस्पर प्रेम।

वसुक्र ऐन्द्रः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।१०।८)

गावो यवं प्रयुता अर्यो अक्षन्ता अपश्य सहगोपाश्चरन्तीः।

हवा इदर्यो अभितः समायन्कियदासु स्वपतिश्छन्दयाते॥ ९५६॥

(प्र-युताः गावः) इकट्ठी हुई गौएं (यवं अक्षन्) जौ तृण आदि खाचुकी हैं (ताः सहगोपाः चरन्तीः अपश्यं) उन ग्वालोंके साथ चरनेवाली गायोंको मैंने देख लिया था (हवाः) दुहनेके लिए पुकारने योग्य गायें हैं (अर्यः अभितः इत्) ये अपने स्वामीके चारों ओर ही (सं आयन्) मिल कर आगयी हैं, (स्वपतिः) उन गायोंका मालिक (आसु) इन गायोंमें (कियत् छन्दयाते) कितना दूध दुहलेना चाहता है?

गायें इकट्ठी होकर गोचर भूमिमें चरती हैं जवादिका भक्षण करती हैं, उनके साथ उनके ग्वाले भी रहते हैं। इन सबको मैं प्रेमसे देख रहा हूं। दूध दुहनेके समय स्वामी गौओंको बुलाता है बुलाते ही वे गौवें स्वामीके पास आकर खडी हो जाती हैं और स्वामी उनका दूध निकालता है।

गोचर भूमिमें जो दृश्य रहता है उसका यह उत्तम वर्णन है। गोस्वामी ग्वाले और गौवें इनका परस्पर प्रेम कैसा रहना चाहिये, यह इस मन्त्रमें देखा जा सकता है।

[२२७] दूधको चूसते हुए पीना चाहिए।

मेधातिथि काण्वः। द्यावापृथिव्यौ। गायत्री। (ऋ० १।२२।१४)

तयोरिद्घृतवत्पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः। गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे॥ ९५७॥

(गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे) गन्धर्वके स्थिर स्थानमें-अन्तरिक्षमें (तयोः इत्) उन दोनों ही गोमाताओंके (घृतवत्) घीसे भरा हुआ (पयः) दूध (विप्राः) ज्ञानी (धीतिभिः) ध्यानपूर्वक (रिहन्ति) चूस कर पीते हैं।

द्यौ तथा पृथिवी द्युलोक और भूलोक दोनों गोमाताके स्वरूप हैं। उनका स्निग्ध दूध ज्ञानी चाटकर पीते हैं। द्युलोकका दूध वर्षाका पानी और भूमीका दूध धान्य है।

(घृतवत् पयः) जिसमें घी भरपूर है ऐसा दूध पीना चाहिए। [धीति = Wisdom, Understanding; ज्ञान भक्ति (निघं० ३।५) विचार मार्गका ध्यान। धिट्‌=धिट्‌= चाटना चूसना suck, sip taste; दूध चूसकर पीना ठीक है।] अथवा घी दूधमें डालकर पीना चाहिये।

[२३८] दूध, घी और अन्नकी विपुलता।

मथितो यामायनः। गावो अनुष्टुप्। (ऋ० १० ।१९।७)

परि वो विश्वतो दध ऊर्जा घृतेन पयसा।
ये देवाः के च यज्ञियास्ते रय्या सं सृजन्तु नः॥ ६५८॥

(विश्वतः वः) चारों ओरसे आये हुए तुम्हें (घृतेन ऊर्जा पयसा) घी, बलदायक अन्न एवं दूधसे (परि दधे) चारों ओर धारण करता हूँ, इसलिए (ये के च यज्ञियाः देवाः) जो कोई पूजनीय देव हों, (ते नः) वे हमें (रय्या सं सृजन्तु) धन वैभवसे ठीक तरह युक्त करें।

घृतेन पयसा ऊर्जा वः विश्वतः परि दधे = घी, दूध और अन्नसे आपको चारों ओरसे घेरता हूँ अर्थात् विपुल प्रमाणमें देता हूँ।

गोतमो राहूगणः। मरुतः। जगती। (ऋ० १।६४।६)

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम्॥ ६५९॥

(सु-दानवः) अच्छे दानी (आ भुवः) प्रभावी मरुत् (विदथेषु) युद्धोंमें (घृतवत् पयः) घीके साथ दूध और (अपः पिन्वन्ति) जलोंकी समृद्धि करते हैं, (अत्यं न) घोड़ेके तुल्य (वाजिनं मिहे वि नयन्ति) बलवान् मेघोंको वर्षाके लिए इधर उधर ले जाते हैं, और पश्चात् (स्तनयन्तं उत्सं) गरजनेवाले उस मेघका (अक्षितं दुहन्ति) लगातार दोहन करते हैं।

घृतवत् पयः= घृत डालकर दूध पी लेते हैं। वीरोंका यह स्वास्थ्यवर्धक पेय है।

[२३९] गौके दूधका भरपूर उपयोग करो।

सविता। पशवः। भुरिगनुष्टुप्। (अथर्व २।२६।४)

सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम्।
संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ॥ ६६०॥

(गवां क्षीरं सं सिञ्चामि) मैं गायोंका दूध सींचता हूँ (बलं रसं आज्येन सं) बलवर्धक रसको घीके साथ साथ मिलाता हूँ (अस्माकं वीराः संसिक्ताः) हमारे वीर सींचे गये हैं (मयि गोपतौ गावः स्थिराः) मुझ गोपतिमें गायें स्थिर हों।

१ गवां क्षीरं सं सिञ्चामि= गौओंके दूधका मैं सिंचन करता हूँ अर्थात् उसका उपयोग पर्याप्त प्रमाणमें करता हूँ।

२ आज्यं रसं बलं सं= घीसे मिश्रित हुए अन्न रस बल बढाते हैं।

३ अस्माकं वीराः संसिक्ताः= हमारे वीर दूध और घीसे सींचे जांय अर्थात् उनको ये पदार्थ भरपूर मिलें।

४ मयि गोपतौ गावः स्थिराः= मैं गौओंका पालन करता हूँ अतः मेरे पास उत्तम गौएँ स्थिर रूपसे बनी रहें।

[२४०] सुखसे दुही जानेवाली गौवें।

अवस्युरात्रेयः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ. ५।३१।३)

उद्यत्सहः सहस आजनिष्ट देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा।
प्राचोदयत्सुदुघा वव्रे अन्तर्वि ज्योतिषा संववृत्वत्तमोऽवः ॥ ६६१ ॥

(सहसः) उपःकालीन तेजसे (सहः उत् यत् आजनिष्ट) तेजस्वी जब प्रकट हुआ तब (विश्वा इन्द्रियाणि) सारे इन्द्रियोंद्वारा उपभोग्य धनोंको (इन्द्रः देदिष्ट) इन्द्रने दिया था, (वव्रेः अन्तः) ढकनेवाले पहाडी गुफाके भीतर (सुदुघाः प्राचोदयत्) रखी हुई और सुगमतासे दुही जानेयोग्य गायोंको बाहर निकल आनेके लिए प्रेरणा दे डाली और (सं ववृत्वत् तमः) गौवें बन्द करने वाला अंधेरा (वि अवः ज्योतिषा) प्रकाशसे हटा दिया।

सुदुघाः प्राचोदयत् = सुगमतासे दुही जानेवाली गौवोंको प्रेरित किया। अर्थात् शत्रुके पाससे अपने घर लाया।

ब्रह्मा। वृषभः। आस्तारपङ्क्तिः। (अथर्व ७।७।२१)

अयं पिपान इन्द्र इद्रयिं दधातु चेतनीम्।
अयं धेनुं सुदुघां नित्यवत्सां वशं दुहां विपश्चितं परो दिवः ॥ ६६२ ॥

(अयं पिपानः इन्द्रः इत्) यह पुष्ट होता हुआ इन्द्र ही (चेतनीं रयिं दधातु) चेतना देनेवाले धनका धारण करे। (अयं) यह (सुदुघां नित्यवत्सां वशं दुहां) उत्तम दोहनेयोग्य बछडोंके साथ रहनेवाली वशमें रहकर दुहने योग्य (विपश्चितं धेनुं) समझदार गौको (परः दिवः) श्रेष्ठ द्युलोकके परेसे धारण करे।

सुदुघां नित्यवत्सां विपश्चितं धेनुं वशं दुहां = सुखसे दुहने योग्य नित्य बछडे देनेवाली समझदार गौको वशमें रखकर दूध प्राप्त करो।

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। विश्वे देवाः। त्रिष्टुप्। (ऋ. १।१८६।४)

उप व एषे नमसा जिगीषोषासानक्ता सुदुघेव धेनुः।
समाने अहन् विमिमानो अर्कं विषुरूपे पयसि सस्मिन्नूधन् ॥ ६६३ ॥

(देवाः) देवो! (नमसा) नम्र होकर (जिगीषा) विजयकी इच्छासे (उषासा-नक्ता) प्रातः और सायंकाल (सुदुघा इव धेनुः) उत्तम दूध देनेहारी गौके समान (सस्मिन् ऊधन्) एक ही थनमें उत्पन्न हुए (विषुरूपे पयसि) विशेष सुन्दर रीतिसे पकनेवाले दूधमेंसे (अर्कं) पूज्य अन्न (समाने अहन्) उसी दिन (वि-मिमानः) निर्माण करता हुआ मैं तुम्हारे (उप आ एषे) समीप आना चाहता हूँ।

सुदुघा धेनुः। समाने अहन् सस्मिन् ऊधन् वि-षु रूपे पयसि अर्कं विमिमानः उप आ ईषे= उत्तम दुहनेयोग्य वह गौ है। एक दिनमें दुहे हुए, एक ही थनके अतिसुन्दर दूधसे उत्तम अन्न तैयार करनेवाला मैं तुम्हारे समीप आता हूँ। और तुम्हारी उपासना करना चाहता हूँ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। उषासानक्ता। त्रिष्टुप्। (ऋ. ७।२।६)

उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः।
बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेताम् ॥ ६६४ ॥

(उत न) और हमारे लिए (सुदुघा धेनुः इव) सुखपूर्वक दुहनेयोग्य गायके तुल्य (दिव्ये

मही योषणे) पृथ्वीलोकमें उत्पन्न बड़ी भारी युवतियाँ जो कि (मघोनी पुरुहूते) ऐश्वर्यसंपन्न, अधिक लोगोंसे बुलायी हुई (यस्मिन् बर्हिः सदः) यज्ञमें आनेयोग्य कुशासनपर बैठनेवाली (उपासा-नक्ता) उषा और रात्री (सुपिताय न आ यमेताम्) भलाईके लिए आश्रय लें।

सुदुघा धेनुः = सुखसे दुहनेयोग्य गौ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ७।१८।१)

त्वे ह यत्पितरश्चिन्न इन्द्र विश्वा वामा जरितारो असन्वन्।

त्वे गावः सुदुघास्त्वे ह्यश्वास्त्वं वसु देवयते वनिष्ठः॥ ६६५॥

हे इन्द्र! (यत् नः पितरः चित्) चूँकि हमारे पितर भी (जरितारः) स्तोता बनकर (त्वे ह) तेरे आश्रयमें ही (विश्वा) सभी (वामा असन्वन्) चाहनेयोग्य धन पा चुके वैसे ही (त्वं देवयते) तू देवकी कामना करनेवाले मानवको (वसु वनिष्ठः) धन खूब देता है (त्वे गावः सुदुघाः) तेरी छत्रछायामें गायें सुखसे दुहनेयोग्य हुआ करती हैं और (अश्वाः त्वे हि) घोडे भी तुझसे ही पाये जाते हैं।

त्वे सुदुघाः गावः = तेरी गायें सुखसे दुहनेयोग्य हैं।

आयुः काण्वः। इन्द्रः। सतोबृहती। (ऋ० ८।५२।४)

यस्य त्वमिन्द्र स्तोमेषु चाकनो वाजे वाजिञ्छतक्रतो।

तं त्वा वयं सुदुघामिव गोदुहो जुहूमसि श्रवस्यवः॥ ६६६॥

हे इन्द्र! (वाजिन् शतक्रतो) बलिष्ठ और सैकडों कार्य करनेवाले! (यस्य स्तोमेषु) जिसके स्तोत्रोंमें (वाजे त्वं चाकनः) यज्ञमें तूने दिलचस्पी ली (तं त्वा) उस प्रसिद्ध तुझको (गोदुहः सुदुघां इव) गायका दोहन करनेवालेके पाससे सुखपूर्वक दुही जानेवाली गायके तुल्य (श्रवस्यवः वयं जुहूमसि) यशकी कामना करनेवाले हम बुला रहे हैं।

गोदुहः सुदुघा = गौका दोहन करनेवालेके पास सुखसे दुही जानेवाली गाय है।

वामदेवो गौतमः। अग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ४।१।१३)

अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभि प्र सेदुर्ऋतमाशुषाणाः।

अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आजन्नुषसो हुवानाः॥ ६६७॥

(मनुष्याः) मानव, जो कि (अस्माकं पितरः) हमारे पितर हैं वे (अत्र) यहाँपर (ऋतं आशुषाणाः) सत्यको प्राप्त करते हुए (अभि प्रसेदुः) चारों ओर बैठ गये और (वव्रेः अन्तः) जिसके अन्दर (अश्मव्रजाः) पथरीले बाडोंमें छिपी हुई (सुदुघाः उस्राः) सुखपूर्वक दुहनेयोग्य गौओंको (उषसः हुवानाः) उषाओंको बुलाते हुए (उत् आजन्) ढूँढकर प्राप्त किया।

सुदुघाः उस्राः = सुखपूर्वक दुही जानेवाली गायें।

सुमित्रो वाध्र्यश्वः। अग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।६९।८)

त्वे धेनुः सुदुघा जातवेदोऽसश्चतेव समना सबर्धुक्।

त्वं नृभिर्दक्षिणावद्भिरग्ने सुमित्रेभिरिध्यसे देवयद्भिः॥ ६६८॥

हे (जातवेदः अग्ने) उत्पन्न हुएको पहचाननेहार अग्ने! (त्वे सबर्धुक्) तेरे पास अमृत रसका दोहन करनेवाली (सुदुघा धेनुः) सुगमतापूर्वक दुहने योग्य गाय है जो (समना असश्चता इव)

उत्तम मनवाली और सतत दूध देनेवाली है अतः (त्वं) तू (दक्षिणावाद्भिः देवयाद्भिः) दक्षिणा वाले देवोंकी कामना करनेवाले तथा (सुमिनेभिः नृभिः) अच्छी मित्रतासे युक्त नेताओंद्वारा (इभ्यसे) प्रदीप्त किया जाता है।

सबर्दुघ् सुदुघा धेनु= उत्तम दूध देनेवाली सुखसे दुहनेवाली गौ है।

परुच्छेपो दैवोदासिः। वायुः। अत्यष्टिः। (ऋ. १।१३४।४)

तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसु रश्मिषु

चित्रा नव्येषु रश्मिषु।

तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते।

अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥ ६६९ ॥

हे वायो! (तुभ्य) तेरे लिए ये (शुचयः उषसः) दीप्तिमान उषा (दंसु रश्मिषु) अपने घरके समान प्रकाशपूर्ण (नव्येषु रश्मिषु) नये नये किरणोंमें (परावति) बहुत दूर अन्तरिक्षमें (भद्रा चित्रा वस्त्रा) कल्याणकारक और अनूठे कपडे (तन्वते) बुन रही है, अतः (तुभ्यं) तेरे लिए (सबर्दुघा धेनुः) अधिक दूध देनेहारी गाय (विश्वा वसूनि दोहते) सभी प्रकारका धन दिया करती है और तू (वक्षणाभ्यः) नदियोंके लिए या (दिवः वक्षणाभ्यः) दिव्य नदियोंके लिए (मरुतः आ अजनयः) मरुतोंका निर्माण कर चुका है।

अधिक दूध देनेवाली गौ अपनी ओरसे सभी तरहके धन दे देती है। गायसे जो कुछ भी पैदा हो वह साराका सारा धन है। ऐसी गायोंके लिए घास उत्पन्न हो इसलिए नदियोंका जलप्रवाह अविरत रूपसे बहता रहे और इसके लिए मरुतोंका यानी वायुओंका सृजन हुआ है। इन्हींसे वर्षा होती है नदियोंमें बाढ आती है हर जगह हरियाली लहराने लगती है। इस नये घासको खाकर गौवें हृष्टपुष्ट हुआ करती हैं।

सबर्दुघा धेनुः विश्वा वसूनि दोहते= उत्तम दूध देनेवाली गौ सब प्रकारके धन दुहती है देती है।

मेधातिथि मेध्यातिथी काण्वौ। इन्द्रः। बृहती। (ऋ. ८।१।१०)

आ त्वा१द्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम्।

इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरंकृतम् ॥ ६७० ॥

(अद्य तु) आज तो (गायत्रवेपसं त्वा इन्द्रं) विभूषित गायत्रीसमीप वेगवाले इन्द्रको और (उरुधारां सुदुघां) विशाल धारावाली सुखपूर्वक दुहनेयोग्य (सबर्दुघां अन्यां इषं धेनुं) सबके लिए दूध दुहनेवाली दूसरी अन्न देनेवाली गायको (आ हुवे) मैं बुला लेता हूं।

उरुधारां सुदुघां सबर्दुघां इषं धेनुं आ हुवे= बडी धाराओंसे सुखपूर्वक दूध देनेवाली, उत्तम पुष्टि देने वाला दूध जिसका है ऐसी गौको मैं बुलाता हूं।

चित्रमहा वासिष्ठः। अग्निः। जगती। (ऋ. १०।१२२।६)

इषं दुहन्त्सुदुघां विश्वधायसं यज्ञप्रिये यजमानाय सुक्रतो।

अग्ने घृतस्नुस्त्रिर्ऋतानि दीद्यद्वर्तिर्यज्ञं परियन्त्सुक्रतूयसे ॥ ६७१ ॥

हे (सुक्रतो) अच्छे कार्य करनेहारे अग्ने! तू (यज्ञप्रिये यजमानाय) यज्ञके प्रिय याजकके लिए (सुदुघां विश्वधायसं) सुगमतासे दुहनेयोग्य एवं सबकी पुष्टि करनेहारी गायसे (इषं दुहन्)

दूध रूपी अन्नका दोहन करता हुआ (घृतस्नुः) घृतसे युक्त होकर (भानूनि दीद्यत्) प्रकाशोंको प्रकाशित करता हुआ (यज्ञ बर्हिः परियन्) यज्ञके और घरके चारों ओर चलता हुआ (सुक्र-तूयसे) अच्छे कर्म करनेवालेके तुल्य आचरण करता है ।

सुदुघां विश्वधायसं इषं दुहन् = उत्तम दूधसे दोहन, सबका पोषण करनेवाली गायसे दूध रूपी अन्नका दोहन करता है ।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ. १।४।१)

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ ६७२ ॥

(गोदुहे) गौका दुग्ध निकालनेवालेके लिए (सुदुघां इव) अच्छी दुग्ध देनेवाली या सुख पूर्वक जिसका दोहन हो सके ऐसी गायको बुलाते हैं वैसे ही (द्यविद्यवि) हर दिन (ऊतये) हमारी रक्षा करनेके लिए (सुरूप कृत्नुं) सुन्दर रूप करनेहारे इन्द्रको प्रभुको (जुहूमसि) हम बुलाते हैं ।

उत्तम दूध देनेवाली गायके तुल्य यह इन्द्र हमारी रक्षा करनेहारा है । जिस तरह (गोदुहे सुदुघा) गौ दोहन कालमें सुखसे दूध देनेवाली गौ सहायक होती है उसी तरह यह इन्द्र हमारा सहायक है ।

[२४१] गायोंसे (दूध आदिसे) युक्त अन्न ।

वत्सः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ. ८।६।२३)

आ न इन्द्र महीमिषं पुरं न दर्षि गोमतीम् । उत प्रजां सुवीर्यम् ॥ ६७३ ॥

हे इन्द्र ! (नः) हमारे लिए (महीं गोमतीं इषं) बहुत अधिक तथा गायोंसे युक्त अन्नको (पुरं न) नगरीके समान (आ दर्षि) देनेकी इच्छा कर (उत) और (सुवीर्यं प्रजां) अच्छी वीरतासे युक्त प्रजाको दे दो ।

आ महीं गोमतीं इषं आ दर्षि = हमारे लिये बड़ा आदरणीय गायोंसे बननेवाला अर्थात् गौके दूध दही घी आदिसे बननेवाला अन्न चाहिये ।

वामदेवो गौतमः । ऋभवः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ४।३४।१०)

ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।

ते अग्रेपा ऋभवो मन्दसाना अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति ॥ ६७४ ॥

(गोमन्तं वाजवन्तं) गौओंसे युक्त तथा अन्नसे युक्त (सुवीरं रयिं) और उत्तम वीरोंवाले धनसंपत्तिको (वसुमन्तं पुरुक्षुं) निवासयोग्य वस्तुओं तथा अत्यधिक अन्नसे भरपूर होकर (धत्थ) जो तुम धारण करते हो । (ते अग्रेपाः) वे सबसे प्रथम रक्षक होनेवाले (मन्दसाना ऋभवः) तथा हर्षित होनेवाले ऋभु ! (अस्मे ये गृणन्ति च) हमें तथा जो स्तुति करते हैं, उन्हें (रातिं धत्त) दान दे डालो ।

गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ = गौओंसे युक्त तथा गौओंसे प्राप्त अन्नसे युक्त उत्तम वीरोंसे युक्त धन हमारे लिए धारण करो ।

वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ. ४।३२।६, ७)

भूयामो षु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः । युजो वाजाय घृष्वये ॥ ६७५ ॥

त्वं ह्येक ईशिष इन्द्र वाजस्य गोमतः । स नो यन्धि महीमिषम् ॥ ६७६ ॥

हे इन्द्र ! (त्वावतः गोमतः) तेरे सदृश गौओंसे युक्तके (सखायः) मित्र बने हुए हम (घृष्वये वाजाय) बड़े भारी अन्नको पानेके लिए (युजः सु भूयाम) अच्छी भाँति तेरे सहायक बनेंगे ।

हे इन्द्र ! (वाजस्य गोमतः) गौओंसे युक्त अन्नका (त्वं) तू (एकः हि इसलिये) अकेला ही प्रभु है, अतः (सः) ऐसा वह तू (नः) हमें (मही इषं यन्धि) भारी अन्नसामग्रीका प्रदान करो ।

गोमतः वाजस्य महीं इषं नः यन्धि = गौओंसे उत्पन्न अन्नकी बडी भारी सामग्री हमें प्रदान करो ।

मेधा मानुच्छन्दसः । इन्द्रः । अनुष्टुप् । (ऋ. १।११।३)

पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।

यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ६७७ ॥

(इन्द्रस्य पूर्वीः रातयः) प्रभुकी देन पहलेसे ही बहुत विख्यात हैं अब (यदि) अगर (स्तोतृभ्यो) स्तोताओंको (गोमतः वाजस्य) गौओंसे युक्त अन्नका (मघं मंहते) दान मिलेगा तो उनके (ऊतयः) संरक्षण कभी (न विदस्यन्ति) कम नहीं होंगे ।

यदि गोमतः वाजस्य मघ मंहते ऊतयः न विदस्यन्ति = जिसमें गोरस पर्याप्त रहता हो ऐसा अन्न जहाँ होगा वहाँ आत्मसंरक्षक शक्ति कभी नहीं घट जायगी । अर्थात् गोरसयुक्त अन्नसे संरक्षण शक्ति बढ जाती है । अतः स्वास्थ्यलाभ करनेके लिए पर्याप्त गोरसका सेवन करना चाहिए ।

अवस्युरात्रेयः । उषाः । पङ्क्तिः । (ऋ. ५।७९।८)

उत नो गोमतीरिष आ वहा दुहितर्दिवः ।

साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ६७८ ॥

हे (दिवः दुहितः) द्युलोककन्ये ! (सुजाते उषः) सुन्दर उषा ! (उत) और (सूर्यस्य रश्मिभिः साकं) सूर्यकिरणोंके साथ (शोचद्भिः अर्चिभिः शुक्रैः) देदीप्यमान रूपकोंसे तेजस्वी सूर्य-किरणोंके साथ (नः) हमें (गोमतीः इषः आवह) गायोंसे युक्त अन्न ला ।

गोमतीः इषः नः आवह = गौओंसे प्राप्त होनेवाला दुग्धादि अन्न हमारे लिये ले आ ।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ. १।७।११)

स नो नियुद्भिरापृण कामं वाजेभिरश्विभिः । गोमद्भिर्गोपते धृषत् ॥ ६७९ ॥

हे (गोपते) गायोंके पालनकर्ता तथा (धृषत्) साहसी इन्द्र ! (सः) ऐसा विख्यात वह तू (नः कामं) हमारी इच्छाको (गोमद्भिः अश्विभिः वाजेभिः) गायोंसे पूर्ण तथा घोडोंसे युक्त अन्नोंसे और (नियुद्भिः आ पृण) घासपातसे पूर्ण कर ।

गोमद्भिः वाजेभिः नः कामं आ पृण = गौओंसे उत्पन्न अन्नोंसे हमारी इच्छाएं पूर्ण कर ।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ. १।१०।२३)

न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत् सीं उप श्रवद् गिरः ॥ ६८० ॥

(वसुः) सबका बसानेहारा इन्द्र (गोमतः वाजस्य दानं) गायोंसे पूर्ण अन्नका प्रदान (न घ) कदापि नहीं (नि यमते) रोक रखता है । (यत्) जब कि (सीं गिरः उप श्रवत्) हम हमारे भाषणोंको वह सुनता रहे ।

वसुः गोमतः वाजस्य दानं न नियमते = जो लोगोंका निवास कराता है वह गायोंसे उत्पन्न अन्नका अर्थात् दूध दही घी आदि पदार्थोंका दान रोकता नहीं यानी दानको प्रतिबंध नहीं करता । क्योंकि इन पदार्थोंकी अत्यंत आवश्यकता लोगोंका निवास सुखमय होनेके लिये रहती है ।

प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः । बृहती । (ऋ. १।४८।१५)

उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।

प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥ ६८१ ॥

हे (उषः) उषा देवी ! (यत् अद्य भानुना) चूँकि आज तू सूर्यके तेजके साथ (यत् दिवः द्वारौ वि ऋणवः) द्युलोकके द्वारतक तू आ पहुँचती है इसलिए (नः अवृकं पृथु च्छर्दिः) हमें सर्वत्र सुरक्षित एवं विस्तीर्ण घर (प्रयच्छतात्) दे दो और हे देवी ! (गोमतीः इषः) गौओंके साथ अन्न (प्र यच्छतात्) दे दो ।

अन्न तो अवश्य चाहिए और उसके साथ गौएँ भी चाहिए । क्योंकि गोरस अत्यन्त आवश्यक वस्तु है । 'गोमतीः इषः प्रयच्छतात्' = गौसे प्राप्त दूध, दही घी आदि पदार्थ जिनमें हैं ऐसे अन्न हमें दे दो ।

[२४२] गौसे पोषण ।

अथर्वा । यमः । त्रिष्टुप् । (अथर्व. १८।३।६१)

विवस्वान् नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः ।

इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥ ६८२ ॥

(विवस्वान्) सूर्य (नः अभयं कृणोतु) हमें अभय बनाए (यः सुत्रामा) जो अच्छी तरह सबकी रक्षा करनेवाला (जीरदानुः) जीवनदाता (सुदानुः) उत्तम दाता है (इह) इस संसारमें (इमे वीराः) ये पुत्रपौत्रादि वीर (बहवः भवन्तु) बहुत हो जायँ और (गोमत् अश्ववत्) गायों तथा घोड़ोंसे युक्त (पुष्टं मयि अस्तु) पोषण मुझमें रहे ।

गोमत् पोषं = गौओंमें रहनेवाला पोषणका सामर्थ्य (मयि अस्तु) मुझे प्राप्त हो ।

[२४३] गायोंका दुग्ध पर्याप्त मिले ऐसा मार्ग ।

गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । अश्विनौ । गायत्री । (ऋ. २।४१।७)

गोमदू षु नासत्याऽश्वावद् यातमश्विना । वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ६८३ ॥

हे (नासत्या) सत्यस्वरूपी तथा (रुद्रा) शत्रुको रुलानेवाले अश्विनौ ! तुम अपने (गोमत् अश्ववत्) गोधन तथा वाजिधनसे पूर्ण (वर्तिः) मार्गसे (नृपाय्य) मानवोंके पीनेयोग्य सोमरसकी ओर (यात) आओ ।

गोमत् वर्तिः = जिस मार्गपर अनेक गौओंके कारण बहुत दूध मिलता है वह मार्ग । वह अच्छा ही मार्ग है ।

[२४४] गोरसका अन्न ।

गोतमो राहूगणः । अग्निः । उष्णिक् । (ऋ. १।७९।४)

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।

अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ६८४ ॥

(सहसः यहो अग्ने) हे बलिष्ठ अग्ने ! तू (गोमतः वाजस्य) गौओंसे युक्त अन्नका (ईशानः) स्वामी है इसलिए (जातवेदः) हे सर्वज्ञ देव ! (अस्मे) हमें उस प्रकारका (महि श्रवः धेहि) बहुतसा अन्न दे दो ।

सहसः यहुः = (सहस्) = शत्रुका नाश करनेका सामर्थ्य । इस सामर्थ्यसे (यहुः) पुत्र, सामर्थ्यवान् विजयी प्रतापी, बलका पुत्र बलिष्ठ पुत्र ।

श्रवः = यश कीर्ति धन । वाजः = बल बढानेवाला अन्न ।

गोमतः वाजस्य ईशानः = मानवोंके पुष्ट अन्नका स्वामी प्रभु है । अग्निदेव है । दूध घी आदि अन्न गौसे प्राप्त होता है जो अग्निमें हवन किया जाता है ।

[२४५] अपरिपक्व गौमें पक्व दुग्ध ।

गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । सोमापूषणौ । त्रिष्टुप् । (ऋ. २।४०।२)

इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा ।

आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्रियासु ॥ ९८५ ॥

(इमौ देवौ) ये सोम तथा पूषा (जायमानौ) जब उत्पन्न हो रहे थे तब (जुषन्त) सबोंने उनकी सेवा की (इमौ अजुष्टा तमांसि गूहतां) इन दोनोंने असेवनीय अँधियारीको विनष्ट किया । (आभ्यां सोमापूषभ्यां) इन सोम तथा पूषाकी सहायतासे (आमासु उस्रियासु अन्तः) तरुण गायोंके अन्दर (इन्द्रः पक्वं जनत्) इन्द्रने पका दूध तैयार कर रखा बनाया ।

आमासु उस्रियासु पक्वं जनत् = अपरिपक्व गायोंमें पका दूध बना दिया ।

वामदेवो गौतमः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ४।३।९-१०)

ऋतेन ऋतं नियतमीळ आ गोरामा सचा मधुमत् पक्वमग्ने ।

कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय ॥ ९८६ ॥

ऋतेन हि ष्मा वृषभश्चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन ।

अस्पन्दमानो अचरद् वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥ ९८७ ॥

हे अग्ने ! (ऋतेन नियतं) सत्यसे नियत किया हुआ जुडा हुआ (गोः ऋतं) गौका दूध (आ ईळे) मैं प्रशंसा करके पाना चाहता हूँ (आमा) पूर्ण तैयार न हुई वह भी (मधुमत् पक्वं) मीठा तथा परिपक्व दूध (सचा) धारण कर लेती है (कृष्णा सती) यह गौ काले वर्णकी होनेपर भी (रुशता) चमकीले (धासिना) प्राणियोंके धारणकर्ता (जामर्येण) प्रजाओंको अमर बनाने हारे (पयसा) दूधसे (पीपाय) जनताको पुष्ट करती है ।

(पुमान् वृषभः) पौरुषसे पूर्ण और कामनाओंकी वर्षा करनेहारा (अग्निः चित्) अग्नि भी (ऋतेन पृष्ठ्येन) सत्य स्वरूप धारणकर्ता (पयसा) दूधसे (अक्तः हि स्म) सींचा गया है (वयोधाः) अन्न धारण करनेहारा वह (अस्पन्दमान अचरत्) स्थिर रूपसे संचार कर चुका (वृषा पृश्निः) बलिष्ठ एवं विविध वर्णधारी गायने (ऊधः) ऊधसे (शुक्रं दुदुहे) तेजस्वी, धवल पीले दूधका दोहन किया ।

गो- ऋतं आमा मधुमत् पक्वं पयसा पीपाय= गौका दूध अपक्व गौमें भी मीठा पका दूध मिलता है इस दूधसे वह गौ सबको पुष्ट करती है ।

वृषा पृश्निः ऊधः शुक्रं दुदुहे = बल बढानेवाली गौ अपने ऐनेसे स्वच्छ और वीर्यवर्धक दूध दुहकर देती है ।

नृमेध-पुरुमेधावाङ्गिरसौ । इन्द्रः । बृहती । (ऋ० ८।८९।७)

आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामन् तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥ ९८८ ॥

हे इन्द्र ! (पक्वं आमासु ऐरयः) पके दूधको तू अपक्व गायोंमें प्रेरित कर चुका और (दिवि सूर्यं आ रोहयः) द्युलोकमें सूर्यको चढा चुका इसलिए (सुवृक्तिभिः) अच्छी स्तुतियोंसे (घर्मं न) ग्रीष्मकालकी तरह (सामन् तपत) सामगानसे तीक्ष्ण करो, तथा (गिर्वणसे जुष्टं बृहत्) वाणियोंसे प्रार्थनीय इन्द्रके लिए प्रचण्ड सामगायनका प्रबंध करो ।

आमासु पक्वं ऐरयः= नव प्रसूत गायोंमें भी परिपक्व दूध बनाया है ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रासोमौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।७२।४)

इन्द्रासोमा पक्वमामास्वन्तर्नि गवामिद् दधथुर्वक्षणासु ।
जगृभथुरनपिनद्धमासु रुशच्चित्रासु जगतीष्वन्तः ॥ ९८९ ॥

हे इन्द्र और सोम ! (गवां आसु आमासु) गायोंके इन अपक्व (वक्षणासु) थनोंमें (पक्वं इत्) पका दूध ही (निदधथुः) तुम दोनों रख चुके और (आसु चित्रासु) इन विविध (जगतीषु अन्तः) गतिशील गायोंके अन्दर विद्यमान (अनपिनद्धं रुशत् जगृभथुः) न रुका हुआ चमकीला दूध धारण कर चुके ।

१ गवां आसु आमासु पक्वं निदधथुः= गौओंमेंसे इन नवीन गौओंमें पका दूध रखा है ।

२ आसु जगतीषु अन्तः अनपिनद्धं रुशत् जगृभथुः= नवीन गौओंमें रुका न रहनेवाला तेजस्वी दूध मिलता है ।

[२४६] गायोंमें भोजनके लिए आवश्यक सभी पदार्थ हैं ।

विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ३।३०।१४)

महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामा पक्वं चरति बिभ्रती गौः ।
विश्वं स्वाद्म संभृतमुस्रियायां यत्सीमिन्द्रो अदधाद्भोजनाय ॥ ९९० ॥

(वक्षणासु) नदियोंमें (महि ज्योतिः निहितं) बडा भारी तेज रखा हुआ है उन नदियोंके समीप ही (आमा गौः) अभी हालमें ही ब्याई हुई गाय (पक्वं बिभ्रती) पक्व दूध धारण करती हुई (चरति) घूमती है (यत्) जब इस इन्द्रने (सीम् विश्वं स्वाद्म) ये सारे सुस्वादु पदार्थ (उस्रियायां, गायोंमें (सम् भृतं) इकट्ठे किये तभी उस इन्द्रने (भोजनाय अदधात्) भोजनके लिए वहाँपर रख दिये ।

१ पक्वं बिभ्रती आमा गौः वक्षणासु चरति= पक्व दूधको धारण करनेवाली गौ नदियोंके तटपर चरती है ।

२ विश्वं स्वाद्म उस्रियायां संभृतं भोजनाय अदधात्= सब स्वादु (दूध घी आदि पदार्थ) गौमें इकट्ठे किये हैं, वे भोजनके लिये ही वहां धारण किये गये हैं ।

शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।४४।२४)

अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक्सप्तरश्मिम् ।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ॥ ९९१ ॥

(अयं) यह सोम (द्यावापृथिवी विष्कभायत्) द्युलोक तथा भूलोकको विशेषतया स्थिर रूपसे बना चुका है (अयं सप्तरश्मिं रथं अयुनक्) यह सात किरणोंवाले रथको तैयार कर चुका है,

(अयं सोमः) यह सोम (दान्त्या) अपनी शक्तिके कारण (गोषु अन्तः) गायोंके अन्दर (पक्वं दधयत्तं उस्रं दाधार) पक्व अर्थात् पूर्णतया तयार दस यशपाल झरनेको रख चुका है।

गोषु अन्तः पक्वं उस्रं दाधार= गायोंके अन्दर परिपक्व दूधका दोष अर्थात् दुग्धाशय धारण किया है।

मेधातिथिः काण्वः। इन्द्रः। गायत्री। (ऋ० ८।३२।२५)

य उद्नः फलिगं भिनन्न्य१क्सिन्धूँरवासृजत्। यो गोषु पक्वं धारयत् ॥ ६९२ ॥

(यः) जो (उद्नः) पानीके लिए (फलिगं भिनत्) मेघको तोड चुका और जिसने (सिन्धून् न्यक् अव असृजत्) नदियोंके समान जलप्रवाहोंको नीचेकी ओर डाल दिया एवं (यः पक्वं गोषु धारयत्) जो पके दूधको गायोंमें रख चुका।

गोषु पक्वं यः अधारयत् = गौओंमें जिसने पके दूधका धारण किया है।

भूतांशः काश्यपः। अश्विनौ। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।१०६।११)

अध्याम स्तोमं सनुयाम वाज आ नो मन्त्रं सरथेहोप यातम्।

यशो न पक्वं मधु गोष्वन्तरा भूतांशो अश्विनोः काममप्राः ॥ ६९३ ॥

(स्तोमं अध्याम) स्तोत्रको हम बढायेंगे (वाजं सनुयाम) अन्न हविर्भाग देंगे, इसलिए हे अश्विनौ! (सरथा इह नः मन्त्रं उपयात) रथवाले होकर इधर हमारे मननीय स्तोत्रके समीप आओ। तुमने (गोषु अन्तः) गायोंमें (यशः न) यशतुल्य (पक्वं मधु) पुष्ट तैयार मीठा दूध रखा है। अतः भूतांश ऋषिने अश्विनौकी इच्छा पूर्ण (अप्राः) कर डाली।

गोषु अन्तः पक्वं मधु = गौओंके अन्दर पका मधुर दूध है।

[२४७] पुष्ट स्तनोंवाली गाय।

सुदाः पैजवनः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।१३३।७)

अस्मभ्यं सु त्वमिन्द्र तां शिक्ष या दोहते प्रति वरं जरित्रे।

अच्छिद्रोध्नी पीपयद्यथा नः सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥ ६९४ ॥

हे इन्द्र! (या जरित्रे) जो गाय प्रशंसा करनेवालेको (वरं प्रति दोहते) श्रेष्ठ कोटिका दुग्ध पूर्णतः दुहकर देती है (तां अस्मभ्यं) उस गौको हमें (त्वं सु शिक्ष) तू भलीभाँति दे डाल और (यथा नः) जिस ढंगसे वह (सहस्रधारा मही गौः) हजार धाराओंवाली महनीय गौ (अच्छिद्रोध्नी) छिद्ररहित अर्थात् पुष्ट और अक्षत थनोंवाली होकर (पयसा पीपयत्) दूधसे पुष्ट करे ऐसा प्रबंध कर।

सहस्रधारा मही गौः अच्छिद्रोध्नी पयसा पीपयत् = सहस्र धाराओंसे दूध देनेवाली यह महनीय गाय थनके निर्दोष होनेसे दूध देकर हमें पुष्ट करे।

गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः। मरुतः। जगती। (ऋ० २।३४।५)

इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिरध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः।

आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥ ६९५ ॥

हे (समन्यवः भ्राजद् ऋष्टयः मरुतः) उत्साही तथा तेजस्वी हथियार धारण करनेवाले वीर मरुतो! (इन्धन्वभिः रप्शद् ऊधभिः) भासमान तथा सराहनीय बड़ले मोटे स्तनोंसे युक्त (धेनुभिः) गायोंसे युक्त हो (अध्वस्मभिः) अविनाशी (पथिभिः) मार्गोंसे (मधोः मदाय) सोमरसके

आगमनके लिए इस यज्ञके समीप (हंसासः स्वसराणि न) हंस जैसे अपने निवासस्थलकी ओर चले जाते हैं उसी तरह (आ गन्तन) पधारो।

इन्धन्वभिः रप्शदूधभिः धेनुभिः आगन्तन = तेजस्वी दूध भरे मोटे थनोंसे युक्त गौओंके साथ आओ।

[२४८] दूधसे परिपूर्ण गाय।

गयः प्लातः। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।६४।१२)

यां मे धियं मरुत इन्द्र देवा अददात वरुण मित्र यूयम्।
तां पीपयत पयसेव धेनुं कुविद्गिरो अधि रथे वहाथ॥ १९६॥

हे मरुतो! हे इन्द्र! मित्र! वरुण! आदि (देवाः) देवो! (मे) मुझको (धियं यां अददात) तुमने जो बुद्धि दे डाली है, (तां) उसे (धेनुं पयसा इव) गायको दूधसे जैसे पूर्ण करते हैं वैसे ही (पीपयत) परिपूर्ण या पुष्ट करो। (गिरः कुवित्) भाषणोंको बहुत बार सुनकर तुम इधर आनेके लिए (रथे अधि वहाथ) रथपर चढ़कर यात्रा करते हो।

धेनुं पयसा पीपयत = गायको दूधसे पुष्ट करो।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ७।३६।३)

आ वातस्य ध्रजतो रन्त इत्या अपीपयन्त धेनवो न सूदाः।
महो दिवः सदने जायमानोऽचिक्रदद् वृषभः सस्मिन्नूधन्॥ १९७॥

(ध्रजतः वातस्य इत्या) हलचल करते हुए वायुकी गतिसे (आरन्त) पूर्णतया रममाण होते हैं (सूदाः धेनवः न) दूध देनेवाली गायोंकी तरह (अपीपयन्त) पुष्ट हुए। (दिवः महः सदने जायमानः) द्युलोकके बड़े घरमें पैदा होता हुआ (वृषभः) वर्षा करनेवाला मेघ (सस्मिन् ऊधन् आदि ध्वनत) उस महान् द्युभाग-अन्तरिक्षमें गरज चुका है।

सूदाः धेनवः अपीपयन्तः = उत्तम दूध देनेवाली गायें पुष्ट करती हैं।

वृषभः अचिक्रदत् = बैल गर्जता है।

[२४९] सदैव दूध देनेवाली गौएँ।

पराशरः शाक्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।७३।६)

ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम्॥ १९८॥

(ऋतस्य हि वावशानाः) यज्ञकी इच्छा करनेवाली (स्मत्-ऊध्नीः) अपने स्तनोंमें हमेशा दूध रखनेवाली और (द्युभक्ताः) प्रकाशका सेवन करनेवाली तेजस्वी (धेनवः) गौएँ (पीपयन्त) बहुत दूध पिला चुकी हैं यज्ञके लिए पर्याप्त दूध दे चुकी हैं और (सुमतिं भिक्षमाणाः) सद्बुद्धिकी याचना करनेवाली यज्ञको चाहनेवाली (सिन्धवः) नदियाँ (परावतः) दूरवर्ती स्थानसे (अद्रिं) पहाड़तक (विसस्रुः) बहने लगीं और यज्ञके लिए अन्न उत्पन्न करने लगीं।

यज्ञके लिए अपने थनोंमें सदैव दूध धारण करती हुई गौएँ यज्ञके लिए पर्याप्त दूध देती हैं। यज्ञको ही निगाह मेरे लिए नदियां भी उसका सृजन करती हैं। इस भाँति यज्ञको पूर्ण करनेमें गौओं और नदियोंसे सहायता मिलती है।

स्मदूध्नीः – सदैव दूध देनेवाली गौओंकी विशेषताएँ।

द्युभक्ताः – पूर्ण प्रकाशमें रहनेवाली गौओंकी विशेषताएँ।

स्मदूध्नीः द्युभक्ताः धेनवः पीपयन्त = अपने थनोंमें सदा दूध रखनेवाली प्रकाश चाहनेवाली गौएँ बहुत दूध पिलाती रही हैं।

पुरुमर (आङ्गिरसः सौचहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । इन्द्रस्त्वष्टा वा । जगती । (ऋ० २।१८।१)

अहेळता मनसा श्रुष्टिमा वह दुहानां धेनुं पिप्युषीं असश्चतम् ।
पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनं त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा ॥ ६९९ ॥

हे (पुरुहूत) बहुतोंद्वारा प्रार्थित इन्द्र ! (पद्याभिः) पैरोंसे मी (आशुं वाजिनं त्वां) वेगवान घोडेके समान जल्द जानेवाले तुझे (विश्वहा) हमेशा (वचसा) अपने भाषणोंसे (हिनोमि) मैं प्रेरणा करता हूं कि (अहेळता च मनसा) द्वेष भावशून्य मनसे तू (श्रुष्टिं दुहानां) ऐश्वर्य या दूध देनेवाली (पिप्युषीं) हृष्टपुष्ट (असश्चतं) शीघ्रही न सूखनेवाली (धेनुं आवह) गाय हमारे समीप लादो ।

असश्चतं= न दौडनेवाली शीघ्र न सूखनेवाली ।

श्रुष्टिं दुहानां पिप्युषीं असश्चतं धेनुं आवह= दुग्ध रूपी ऐश्वर्य दुहकर देनेवाली, पोषण करनेवाली, सतत दूध देनेवाली अर्थात् शीघ्र न सूखनेवाली गौको यहां ले आ ।

दीर्घतमा औचथ्यः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१५२।६)

आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥ ७०० ॥

(ब्रह्मप्रियं मामतेयं) उपासनाप्रिय ममताके पुत्रको (अवन्तीः धेनवः) सुरक्षित रखती हुई गौएं (सस्मिन् ऊधन्) अपने स्तनोंमें विद्यमान दूधसे उसका (आ पीपयन्) पोषण कर चुकीं । (वयुनानि विद्वान्) कर्मके तत्वको जाननेहारा यह ऋषि (पित्वः आसा भिक्षेत्) हुतशेष अन्नकी अपने मुखसे तुम्हारे समीप याचना करेगा, तथा सर्व देवोंकी (आ विवासन्) सेवा करनेहारा यह ऋषि (अ-दितिं) पूर्णतया अपना कर्म (उरुष्येत्) समाप्त करेगा ।

मामतेयं अवन्तीः धेनवः सस्मिन् ऊधन् आ पीपयन्= ममताके पुत्रकी रक्षा करनेवाली गौवें अपने थैलेमें रहनेवाले दूधसे उसका पोषण करती हैं ।

दीर्घतमा औचथ्यः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१५३।३)

पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।
हिनोति यद्वां विदथे सपर्यन्त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥ ७०१ ॥

हे मित्र एवं वरुण ! (सः रातहव्यः सपर्यन्) वह हविष्यान्न देनेहारा भक्त तुम्हारी पूजा करता हुआ (होता मानुषः न) हवन करनेहारे मानवके समान (यद् वां विदथे) जिस समय तुम्हें यज्ञमें (हिनोति) प्रेरित करता है (तदा) तब (ऋताय हविः दे) यज्ञके लिए हविद्रव्य देनेहारे उस (जनाय) पुरुषके लिए (अदितिः धेनुः पीपाय) अवध्य गौ अपना दूध देकर उसका पोषण करती है ।

अदितिः धेनुः पीपाय= अवध्य तथा अन्न देनेवाली गौ पोषण करती है ।

[९५०] दूधसे पुष्ट करनेवाली गायें गोशालामें रहें ।

शबरः काक्षीवतः । गावः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।१६९।२)

या देवेषु तन्व१मैरयन्त यासां सोमो विश्वा रूपाणि वेद ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि ॥ ७०२ ॥

(याः) जो (देवेषु) देवोंमें (तन्वं ऐरयन्त) अपने शरीरोंको प्रेरित कर चुकी हैं और (यासां विश्वा रूपाणि) जिनके सभी स्वरूपोंको (सोमः वेद) सोम जानता है (ताः) उन गायोंको

जो कि (प्रजावतीः) सन्तानयुक्त एवं (अस्मभ्यं) हमारे लिए (पयसा पिन्वमानाः) दूधसे पुष्टि प्रदान करनेवाली हैं हे इन्द्र ! इनको (गोष्ठे रिरीहि) हमारी गोशालामें भेज दो ।

१ याः देवेषु तन्वं ऐरयन्त= गौवें देवकार्यमें अपने आपको अर्पण देती हैं लगा चुकी हैं। देवकार्यके लिये ही उत्पन्न हुई हैं ।

२ ताः प्रजावतीः गोष्ठ रिरीहि पयसा पिन्वमानाः= वे गौवें संतानोंसे युक्त होकर हमारी गोशालामें रहें और अपने दूधसे हमें पुष्ट करें ।

[२५१] गायें दूधसे तृप्ति करती हैं ।

सर्वहरिर्वा ऐन्द्रः । हरिः । जगती । (ऋ १ ।९६।२)

हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन्हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तं अर्चत ॥ ७०३ ॥

(ये) जो स्तोतागण (यथा दिव्यं सदः) जैसे दिव्य सभा स्थानतक (हरी हिन्वन्तः) घोड़े इन्द्रको ले जायें इसलिये प्रेरणा करते हैं और (हरिं योनिं हि अभि समस्वरन्) हरे रंगवाले सोमकी स्तुति करते हैं (यं धेनवः) जिसे गौवें (हरिभिः न पृणन्ति) सोमवल्लियोंके रससे तृप्ति करनेके समान अपने आनन्ददायक दुग्ध घृत आदिसे तृप्ति करती हैं, उस (इन्द्राय) इन्द्रके लिए उसके (हरिवन्तं शूषं अर्चत) सोमपानसे बढे बलकी प्रशंसा करते रहो ।

धेनवः पृणन्ति= गौवें अपने दूधसे सबको तृप्त करती हैं ।

अथर्वा । मधु, अश्विनौ । बृहतीगर्भा संस्तारपङ्क्तिः । (अथर्व ९।१।८)

हिङ्करिक्रती बृहती वयोधा उच्चैर्घोषाभ्येति या व्रतम् ।
त्रीन्घर्मानभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ ७०४ ॥

(या हिङ्करिक्रती वयो-धाः) जो हिंकार करनेवाली अन्न देनेवाली (उच्चैः घोषा व्रतं अभ्येति) ऊँचे स्वरसे पुकारनेवाली यज्ञके समीप आती है (त्रीन् घर्मान् अभि वावशाना) तीनों यज्ञोंको वशमें रखनेवाली (मायुं मिमाति) सूर्यके बालका मापन करती है और (पयोभिः पयते) दूधकी धाराओंसे दूध देती है पुष्टि करती है ।

हिंकरिक्रती वयोधाः पयसा पयते= हिंकार करनेवाली अन्नका दान करनेवाली गौ अपने दूधसे सबकी पुष्टी करती है ।

अथर्वा । विश्वे देवाः । अनुष्टुप् । विराड् बृहतीगर्भा । (अथर्व ३।८।४)

इहेदसाथ न परो गमाथेर्यो गोपाः पुष्टपतिर्व आजत् ।
अस्मै कामायोप कामिनीर्विश्वे वो देवा उपसंयन्तु ॥ ७०५ ॥

(इह इत् असाथ) इधर ही रहो (परः न गमाथ) दूर न चले जाओ (इर्यः गोपाः) भाग्यवान् गौका पालन करनेवाला (पुष्टपतिः वः आजत्) पुष्टि करता हुआ तुम्हें यहाँ लावे, (विश्वे देवाः) सभी देव (अस्मै कामाय) इस कामनाकी पूर्तिकी (कामिनीः वः) इच्छा करनेवाली तुम प्रजाओंको (उप सं यन्तु) समीप समीप आकर आनन्दित करें ।

गोपाः पुष्टपतिः= गौओंका पालनकर्ता पुष्टिका पति है ।

वामदेवो गौतमः। वैश्वानरोऽग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ ४।५।९)

इदमु त्यन्महि महामनीकं यदुस्रिया सचत पूर्व्यं गौः ।

ऋतस्य पदे अधि दीद्यानं गुहा रघुष्यद् रघुयद् विवेद ॥ ७०६ ॥

(त्यत् महि) वह महत्त्वपूर्ण (महां अनीकं) तेजस्वियोंका समूह (इदं उ) यही है (यत् पूर्व्यं) जो पूर्वकालीन है (उस्रिया गौः) दूध देनेवाली गाय जिसकी (सचत) सेवा करती है (गुहा रघुस्यत्) गुफामें शीघ्र ही टपकता हुआ और (ऋतस्य पदे) यज्ञके स्थानमें (अधि दीद्यानं) अधिकतया चमकते हुए (रघुयत्) शीघ्रगामीको (विवेद) समझ गया।

उस्रिया गौः सचत= दूध देनेवाली गौ दूध देकर सबकी सेवा करती है।

अत्रिर्भौमः। वरुणः। त्रिष्टुप्। (ऋ ५।८५।२)

वनेषु व्य१न्तरिक्षं ततान वाजं अर्वत्सु पय उस्रियासु ।

हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्व१ग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ॥ ७०७ ॥

(वनेषु अन्तरिक्षं) पेड़ोंमें अन्तरिक्षको (अर्वत्सु वाजं) घोड़ोंमें बलको तथा (उस्रियासु पयः) गायोंमें दूधको (वि ततान) विस्तृत रूपसे फैला चुका (हृत्सु क्रतुं) कार्यको मानवी अन्तःकरणमें (अप्सु अग्निं) जलोंमें अग्निको (अद्रौ सोमं) पहाड़ोंपर सोमको और (दिवि सूर्यं वरुणः अदधात्) द्युलोकमें सूर्यको वरुण रख चुका।

वरुणः उस्रियासु पयः अदधात्= वरुण देवने गौओंमें दूधको रख दिया है।

नाभानेदिष्ठो मानवः। विश्वे देवाः। त्रिष्टुप्। (ऋ १ ।६१।२६)

स गृणानो अद्भिर्देववानिति सुबन्धुर्नमसा सूक्तैः ।

वर्धदुक्थैर्वचोभिरा हि नूनं व्यध्वैति पयस उस्रियायाः ॥ ७०८ ॥

(देववान् सुबन्धुः इति) देवयुक्त तथा अच्छा बन्धु है ऐसे (नमसा सूक्तैः अद्भिः) नमन युक्त यज्ञके भाषण एवं जलोंके द्वारासे (गृणानः सः) प्रशंसित होता हुआ वह (उक्थैः वचोभिः) स्तोत्रोंसे (वर्धत्) बढ़ता जाए (नूनं) सचमुच (उस्रियायाः पयसः अध्वा) गौके दूधका मार्ग (आ हि वि एति) सम्मुख ही विशेष ढंगसे प्राप्त करता है।

उस्रियायाः पयसः अध्वा= गौके दूधका मार्ग यज्ञ ही है। यज्ञसे गौका दूध मिलता और बढ़ता है।

[२५२] गौका दुग्ध एवं घृत आश्रय करनेयोग्य वस्तुएँ हैं।

परुच्छेपो दैवोदासिः। वायुः। अत्यष्टिः। (ऋ १।१३४।६)

त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।

उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम् ।

विश्वा इत् ते धेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ॥ ७०९ ॥

हे वायु! (त्वं अपूर्व्यः) तू सबमें पहला है इसलिए (एषां सोमानां पीतिं) इन सोमरसोंका पान करनेके लिए (अर्हसि) तुही योग्य है, (उतो) और (वि-हुत्मतीनां) हवन करनेहारी (ववर्जुषीणाम्) निष्पाप (विशां) प्रजाओंकी (विश्वाः इत् धेनवः) सारी गौएँ (ते) तेरे लिए (आशिरं) दुग्धका (दुह्रे) दोहन करती हैं और (आशिरं घृतं) मिलावटके लिए बहुत बढ़िया घी (दुह्रते) दुहकर देते हैं।

आशिरः= (आश्रि) आश्रय करनेके लिए योग्य द्रव्य दूध सोमरस रस।

१ विश्वाः धेनवः आशिरं दुह्रे= सभी गौवें दूध दुहकर देती हैं। सोमरसमें मिलानेके लिये गौवें दूध देती हैं।

२ आशिरं घृतं दुहते= (सोमरसमें मिलानेके लिये) घी दुहकर देती हैं।

गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः। इन्द्रवायू। गायत्री। (ऋ. २।४१।३)

शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः। आ यातं पिबतं नरा ॥ ७१० ॥

हे (नरा) नेता बने हुए (इन्द्रवायू) इन्द्र तथा वायु! तुम दोनों (अद्य नियुत्वता) आज नियोजित (गो आशिरः) गायके दुग्धसे मिश्रित (शुक्रस्य) सोमरसका पान करनेके लिए (आयात) आओ। (पिबतं) इस रसका पान करो।

मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ। इन्द्रः। बृहती। (ऋ. ८।१।१७)

सोता हि सोममद्रिभिरेमेनमप्सु धावत।

गव्या वस्त्रेव वासयन्त इन्नरो निर्धुक्षन्वक्षणाभ्यः ॥ ७११ ॥

(अद्रिभिः सोमं सोत हि) पत्थरोंसे सोमको निचोडते ही रहो (एनं अप्सु आ धावत) इसे जलोंमें पूर्णतया धोते रहो, (नरः) नेता लोग (इत् वक्षणाभ्यः) इसे नदियोंसे प्राप्त करके (वस्त्रा इव गव्या वासयन्त) कपडोंके तुल्य गोदुग्धसे सोमरसको ढकते हुए गौओंको (निर्धुक्षन् इत्) पर्याप्तया दोहन कर चुके हैं।

सोमं गव्या वस्त्रा वासयन्तः निर्धुक्षन्= सोमको गौसे उत्पन्न दूधरूपी वस्त्रसे ढंक देनेके लिये, अर्थात् दूधसे मिश्रित करनेके लिये गौओंका दोहन करते हैं।

श्यावाश्व आत्रेयः। मरुतः। सतोबृहती। (ऋ. ५।५३।७)

तर्दवाना सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा।

स्यन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तन्त एन्यः ॥ ७१२ ॥

(यथा धेनवः) जिस प्रकार गौएँ दूध टपकाती हैं वैसे ही (सिन्धवः) बहते हुए, (तर्दवानाः) मेघोंको तोडते फोडते (क्षोदसा रजः प्र सस्रुः) जलसे अन्तरिक्षको भर देते हैं। (स्यन्ना अश्वा इव) शीघ्रगामी घोडोंके तुल्य (अध्वनः विमोचने) मार्ग छोड भाग चलनेके लिए (एन्यः वि वर्तन्ते) नदियाँ विविध प्रकारोंसे बरसती हैं।

धेनवः प्र सस्रुः= गौवें दूध टपकाती हैं देती हैं।

वामदेवो गौतमः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ. ४।२२।६)

ता तू ते सत्या तुविनृम्ण विश्वा प्र धेनवः सिस्रते वृष्ण ऊध्नः।

अधा ह त्वद् वृषमणो भियानाः प्र सिन्धवो जवसा चक्रमन्त ॥ ७१३ ॥

(तुविनृम्ण) हे अधिक यशवाले इन्द्र! (ते) तेरे (ता विश्वा तु सत्या) वे सभी कर्म तो सत्य ही हैं (वृष्णः) बलीष्ठपर्यक तुझसे प्रेरणा पाकर (धेनवः ऊध्नः) गौएँ थनोंसे (प्र सिस्रते) पयस दूध टपकाती हैं (अध) और (वृषमणः त्वत्) बलिष्ठ तुझसे (भियानाः ह) भयभीत होती हुई (सिन्धवः) नदियाँ (जवसा प्र चक्रमन्त) वेगसे इधरउधर तथा गति करने लगीं।

धेनवः ऊध्नः प्र सिस्रते= गौवें अपने थनसे दूध टपकाती हैं देती हैं।

अवत्सारः काश्यपः, सुतंभरश्च । विश्वेदेवाः । जगती । (ऋ ५।४४।१३)

सुतंभरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः ।

भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयोऽनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन् ॥ ७१४ ॥

(सत्पतिः सुतं भरः) अच्छे लोगोंका अधिपति जो उत्पन्न किये हुए अन्नको दूसरोंके लिए दे डालता है, वह (यजमानस्य विश्वासां धियां) यजमानकी सारी बुद्धियोंके (ऊधः उदञ्चनः) ऊपर उठानेवाला भाण्डार है। (धेनुः) गौ (रसवत् पयः) रसीला दूध (भरत्) दे देती है क्योंकि वह (शिश्रिये) उसे आश्रय देती है (अनुब्रुवाणः) लगातार बोलता हुआ (न स्वपन्) न सोता हुआ (अधि एति) इधर आता है।

धेनुः रसवत् पयः भरत्= गौ रसीला दूध भर देती है।

[२५३] गौ मानवोंके लिए सभी पुष्टिकारक चीजें देती हैं।

पर्वच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्रः । अत्यष्टिः । (ऋ १।१३।५)

त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवेऽच्छा समुद्रमसृजो रथाँ इव वाजयतो रथाँ इव ।

इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् ।

धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥ ७१५ ॥

हे इन्द्र! (त्वं वृथा) तू सहजहीमें सभी- (नद्यः समुद्रं अच्छ) समुद्रकी ओर नदियोंको (सर्तवे) जानेके लिए (रथान् इव) साधारण रथोंके समान या (वाजयतः रथान् इव) संग्रामकी ओर जानेवाले रथोंके तुल्य (असृजः) बना चुका है। (मनवे विश्वदोहसः) मानवके लिए दूध देनेहारी (धेनुः इव) गौओंकी नाईं (जनाय विश्वदोहसः) जन्मे हुए लोगोंको सारे सुख पहुँचानेवाली तेरी (ऊतीः) संरक्षणक्षम शक्तियाँ (समानं अर्थं अक्षितं) एक ही उद्देश्यसे (इतः) इधर तू (अयुञ्जत) जोड चुका है।

मनवे विश्वदोहसः धेनुः= मानवोंको सभी पुष्टिकारक पदार्थ देनेवाली गाय है।

पराशरः शाक्त्यः । अग्निः । द्विपदा विराट् । (ऋ १।६६।१)

रयिर्न चित्रा सूरो न संदृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः ।

तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा ॥ ७१६ ॥

(रयिः न चित्रा) ऐश्वर्यके समान आश्चर्यकारक (सूरः न संदृक्) सूर्यके समान तेजस्वी (आयुः न प्राणः) जीवनके समान चेतनशक्ति बढानेवाला (नित्यः सूनुः न) औरस पुत्रवत् प्रिय (तक्वा न भूर्णिः) पक्षीकी नाईं वेगवान् (धेनुः पयः न) गौ जिस प्रकार दूधसे पोषण करती है वैसे ही (शुचिः विभावा) विशुद्ध और विद्योतमान अग्नि (वना सिषक्ति) जंगलोंमें अवस्थित रहता है।

पयः धेनुः न= पुष्टिकारक दूध गौ देती है (वैसे ही अग्नि देव अन्न देता है।)

[२५४] क्रमसे बछडा देनेवाली गौ।

भृगुः । पञ्चौदनोऽज आत्मोक्तः । अनुष्टुप् । (अथर्व ९।५।२९)

अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपबर्हणम् ।

वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् ॥ ७१७ ॥

(अनुपूर्ववत्सां धेनुं) क्रमसे बछडा देनेवाली गायको (अनड्वाहं) बैलको (उपबर्हणं वासः

हिरण्यं) भोजमी कपड़ा और सोना (दत्वा ते उत्तमं दिवं यन्ति) देकर वे उत्तम स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं।

अनुपूर्ववत्सा धेनुः= क्रमपूर्वक प्रतिसमय गर्भ धारण करनेवाली गौ।

[२५५] दूधसे भरा हुआ गौका छेवा।

गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० २।१४।१)

अध्वर्यव॑ः पयसोधर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम्।

वेदाहमस्य निभृतं म एतद् दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥ ७१८ ॥

हे अध्वर्यु लोगो! (यथा गोः ऊधः) जिस प्रकार गौका छेवा (पयसा) दूधसे परिपूर्ण रहता है उसी प्रकार (ईं भोजं इन्द्रं) इस भोजन देनेहारे इन्द्रको (सोमेभिः पृणत) सोमरसोंसे पूर्ण करो पेट भर पीनेके लिये दो (मे अस्य) मेरे इस सोमकी (एतद् निभृतं) यह रहस्यमय बात (अहं वेद) मैं जानता हूँ (दित्सन्तं) दानीको (यजतः) पूज्य इन्द्र (भूयः चिकेत) सदैव पहचानता है।

गोः ऊधः पयसा= गौका छेवा दूधसे भरा रहता है।

गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः। मरुत्। जगती। (ऋ० २।३४।१०)

चित्रं तद्वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः।

यद्वा निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्या॑ः ॥ ७१९ ॥

हे वीर मरुतो! (वः तत् चित्रं) तुम्हारा वह आश्चर्यकारक (यामः) आक्रमण (चेकिते) सबको ज्ञात है, (यत्) क्योंकि सबसे (आपयः) मित्रता प्रस्थापित करनेहारे तुम (पृश्न्याः अपि ऊधः दुहुः) गायके छेवेका दोहन करते हुए तुरन्त उसे पी लेते हो; उसी प्रकार हे (अदाभ्याः रुद्रियाः!) न दबानेवाले महावीरो! तुम्हारे (नवमानस्य) उपासकके (निदे) निन्दकको और (त्रितं) त्रितनामक ऋषिका (जुरतां) वध करनेवाले शत्रुओंके (जराय वा) विनाशके लिए तुम ही प्रयत्न करते हो, यह बात प्रसिद्ध है।

पृश्न्याः ऊधः दुदुः= गौका छेवा दुहते हैं।

मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः। इन्द्र। गायत्री। (ऋ० ८।२।१२)

हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्। ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥ ७२० ॥

(सुरायां दुर्मदासः न) मद्य पी लेनेपर बुरे मदसे युक्त होकर लोग जैसे लड़ पड़ते हैं वैसे ही (हृत्सु) अन्तःकरणोंमें (पीतासः युध्यन्ते) पीये हुए सोमरस खलबली मचाते हैं और (नग्नाः) नग्न होकर (ऊधः न जरन्ते) दुग्धपूर्ण दुग्धाशयवाली गौके समान शब्द करते हैं।

ऊधः जरन्ते= दूधके भरे छेवेवाली गौवें पुकारती हैं रंभाया करती हैं। छेवेमें दूध भर जानेसे गौवें शब्द करती हैं और सूचना देती हैं कि आओ और दूध लेओ।

अथर्वा। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (अथर्व० ७।७३।३)

आतं मन्य ऊधनि आतमग्नौ सुशृतं मन्ये तदृतं नवीयः।

माध्यन्दिनस्य सवनस्य दध्न॑ः पिबेन्द्र वज्रिन् पुरुकृज्जुषाणः ॥ ७२१ ॥

(ऊधनि आतं मन्ये) गायके स्तनमें परिपक्व हुआ है ऐसा मानता हूँ। (अग्नौ आतं) पश्चात् आगपर पक्व हुआ है, इसलिए (तत् ऋतं नवीयः सुशृतं मन्ये) वह सच्चा नवीन दुग्ध भलीभाँति

परिपक्व हुआ है ऐसी मेरी राय है। (पुरुकृत् वज्रिन् इन्द्र !) हे बहुत कर्म करनेहारे वज्रधारी इन्द्र ! (सुपानः) इसका सेवन करता हुआ (माध्यं-दिनस्य सवनस्य दध्नः पिब) मध्यदिनके समय सवनके दहीको पान कर।

१ ऊधनि आर्तं= गौके थैलेमें दूध पक होता है,

२ अग्नौ आर्तं= वह दूध अग्निपर पकाया जाता है

३ तत् आर्तं नवीयः सुशृतं= वह दूध ताजा रहनेके समय भी अर्थात् धारोष्ण रहनेकी अवस्थामें भी उत्तम पक ही रहता है। अर्थात् इस समय वह सेवन करने योग्य है।

४ माध्यंदिनस्य सवने दध्नः पिब= मध्यदिनके सवनमें सोमरस दहीके साथ पीओ। [अर्थात् अन्य दोनों सवनोंमें सोमरस दूधके साथ पीया जाय।]

संवर्त आङ्गिरस। उषाः। द्विपदा विराट्। (ऋ० १ ।१०१।१)

आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥ ७२२ ॥

(यत् गावः ऊधभिः सह) जो गायें अपने दुग्धाशयोंसे (वर्तनिं सचन्त) यज्ञके मार्गपर आ इकट्ठी होती हैं इसलिए (वनसा सह आ याहि) स्वीकार करने योग्य धनके साथ आजाओ।

गावः ऊधभिः सह वर्तनिं सचन्त= गौवें अपने दुग्धाशयोंसे यज्ञमार्गकी सेवा करती हैं।

इन्द्रो वैकुण्ठः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १ ।४८।१)

अहं तदासु धारयं यदासु न देवश्चन त्वष्टाधारयद्रुशत्।

स्पार्हं गवामूधस्सु वक्षणास्वा मधोर्मधु श्वात्र्यं सोममाशिरम् ॥ ७२३ ॥

(अहं आसु गवां ऊधस्सु) मैं इन गायोंके थैलोंमें (तत् रुशत् स्पार्हं धारयं) उस चमकीले स्पृहणीय दूधको रख चुका हूं (यत्) जिसे (देवः त्वष्टा चन) द्योतमान त्वष्टा भी (आसु न अधारयत्) इनमें न रख सका। वैसे ही (वक्षणासु) नदियोंमें (श्वात्र्यं मधु) शीघ्रगामी जलको (आ मधोः) वर्षाकी उत्पत्तितक तथा (सोमं आ शिरं) सोमको जो कि आश्रयणीय है, रख चुका हूं।

अहं गवां ऊधःसु रुशत् स्पार्हं धारयं= मैंने गौवोंके थैलोंमें तेजस्वी और स्पृहणीय दूधका धारण किया है।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ६।२०।१)

मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्नेर्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः।

अपा नस्तस्य सचनस्य देवेषो युवस्व गृणते गो अग्राः ॥ ७२४ ॥

(मन्द्रस्य कवेः) आनन्ददायक एवं कवित्व शक्ति देनेवाले (दिव्यस्य वह्नेः) दिव्य रूपवाले और होनेवाले (विप्रमन्मनः) बुद्धिमानोंसे प्रशंसित (वचनस्य) वाणीद्वारा प्रशंसनीय तथा (तस्य मध्वः) उस मधुरिमामय सोमरसको जो कि (सचनस्य) सेवनीय है तथा (नः) हमारा बनाया हुआ है (अपाः) तू पान कर चुका है इसलिए हे देवता रूपी प्रभो ! (गृणते) प्रशंसा करनेवालेके लिए (गो-अग्राः इषः युवस्व) गायें जिनके अग्रभागमें हैं, ऐसी अन्नसामग्रियोंको इकट्ठा कर।

गो-अग्राः इषः युवस्व= ऐसे अन्न प्राप्त कर जिनमें गौवोंसे उत्पन्न दूध दही घी आदि पदार्थ प्रमुख स्थान रखते हैं।

अत्रिर्भौमः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।४१।१८)

तां वो देवाः सुमतिमूर्जयन्तीमिषमश्याम वसवः शसा गोः ।

सा नः सुदानुर्मृळयन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुविताय गम्याः ॥ ७२५ ॥

हे (वसवः देवा) बसानेहारे देवो ! (शसा) प्रशंसासे (वः तां ऊर्जयन्तीं इषं) तुम्हारी उस बलकारक अन्नसामग्रीको तथा (सुमतिं) अच्छी बुद्धिको (गोः अश्याम) गौसे हम प्राप्त करें (सा मृळयन्ती) वह सुख देनेवाली (सुदानुः देवी) अच्छी दान देनेवाली देवतारूप गौ (नः सुविताय) हमारी भलाईके लिए (द्रवन्ती प्रतिगम्याः) दौडती हुई आ जाए ।

गोः ऊर्जयन्तीं इषं अश्याम= गौसे बलवर्धक अन्न हम प्राप्त करेंगे अर्थात् गौसे मिलनेवाले दूध आदिसे हम अपना पोषण करेंगे ।

[२५६] न दुही गायें ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । बृहती । (ऋ० ७।३२।२२)

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।

ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ ७२६ ॥

हे शूर इन्द्र ! (स्वः दृशं) सबके देखनेहारे (अस्य जगतः तस्थुषः ईशानं) इस गतिशील एवं स्थायी विश्वके प्रभु (त्वा अभि) तुझको सामने रखकर हम (अदुग्धाः धेनवः इव) न दुही हुई गायोंके समान सोमरससे पूर्ण होते हुए (नोनुमः) प्रणाम करते हैं ।

न दुही गायें दूधके भारसे नम्र होती हैं ।

[२५७] दोहनके समय गायको बुलाना ।

शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० ६।४५।७)

ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखायमृग्मियम् । गां न दोहसे हुवे ॥ ७२७ ॥

(ब्रह्माणं) सबसे बडे (ऋग्मियं) ऋचाओंसे पूजनीय (ब्रह्मवाहसं सखायं) स्तोत्रोंसे पहुँचाने योग्य एवं मित्रभूत इन्द्रको (दोहसे गां न) दुहनेके लिए गायको जिस तरह बुलाते हैं वैसे ही (गीर्भिः हुवे) भाषणोंसे बुलाता हूँ ।

दोहसे गां हुवे= दोहन करनेके लिए गौको मैं बुलाता हूँ ।

सविता । पशवः । अनुष्टुप् । (अथर्व० २।२६।५)

आहरामि गवां क्षीरं आहार्षं धान्यं रसम् ।

आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ॥ ७२८ ॥

(गवां क्षीरं आहरामि) गायोंका दूध लाता हूँ । (अस्माकं वीरा आहृता) हमारे वीर इधर इकट्ठे हुए हैं और (पत्नीः इदं अस्तकं आ) पत्नियाँ भी इस घरमें आ पहुँची हैं ।

गवां क्षीरं आहरामि= गौओंका दूध मैं यहां लाता हूँ मैं गायके दूधका स्वीकार करता हूँ ।

[२५८] गोदुग्धसे भूखको दूर करो ।

कृष्ण आङ्गिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।४२।१०)

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।

वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ ७२९ ॥

हे (पुरु-हूत) बहुतोंद्वारा बुलाये हुए प्रभो ! (दुरेवां अमतिं) बुरी चालवाली अबुद्धिको और (विश्वां क्षुधं) सारी भूखको (गोभिः यवेन तरेम) गायों और जौसे पार कर लें । (वयं प्रथमा

धनानि) हम पहली श्रेणीके धनोंको (राजभिः) नरेशोंसे प्राप्त करें जिन्हें (मज्मना न वृजनेन जयेम) हमारे बलसे जीत लेंगे ।

विश्वां क्षुधं गोभिः तरेम= सब भूखको हम गौओंसे अर्थात् गौओंके दूधसे दूर करेंगे। यवसेन जौके भोजनसे दूर करेंगे ।

कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । भावयव्यः । त्रिष्टुप् । (ऋ १।१२६।५)

पूर्वामनु प्रयतिमा ददे वस्त्रीन्युक्ताँ अष्टावरिधायसो गाः ।

सुबन्धवो ये विश्या इव व्रा अनस्वन्तः श्रव ऐषन्त पज्राः ॥ ७२० ॥

हे (सुबन्धवः) अच्छे बन्धुओ ! (पूर्वां प्रयतिं अनु) पहले दिये हुए दानके अनुसार ही (वः त्रीन् अष्टौ च) तुमसे तीन और आठ (युक्तान्) घोडे जोते हुए रथ और (अरि धायसः) धार्मिक लोगोंका पोषण करनेहारी बहुतसी (गाः) गायें मा चुकी उनका (आ ददे) मैं स्वीकार करता हूं क्योंकि (विश्या इव व्राः) प्रजाओंके समूहके तुल्य सामुदायिक रूपसे रहनेवाले (पज्राः) ऋषि आंगिरस (अनस्वन्तः) रथोंके साथ सज्ज होकर (श्रवः) यशद्वारा उत्पन्न कीर्तिकी (ऐषन्त) इच्छा करते हैं, (इसीलिए तुम्हारे इस दानका स्वीकार हो गया है ।)

अरिधायसः गाः आ ददे= पोषण करनेवाली गायोंका दान मैं स्वीकार करता हूं ।

गोतमो राहूगण । अग्नीषोमौ । अनुष्टुप् (ऋ १।९३।२)

अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति ।

तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥ ७२१ ॥

हे (अग्नीषोमा !) अग्नि तथा सोम ! (यः अद्य) जो आज (वां) तुम्हें (इदं वचः सपर्यति) यह स्तुतिपूर्ण वचन या स्तोत्र अर्पण करेगा (तस्मै) उसे (सुवीर्यं) अच्छा बल और (गवां पोषं) गौओंका पुष्टिकारक अन्न, गोरस तथा (सु-अश्व्यं) उत्तम घोडे (धत्तं) दे दो । गायोंसे अच्छी पुष्टि मिलती है ।

सुवीर्यं गवां पोषं धत्तं= उत्तम वीरता बढानेवाला गौओंसे प्राप्त होनेवाला पोषक दूध आदि अन्न दे दो ।

ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् । (ऋ ६।५०।११)

ते नो रायो द्युमतो वाजवतो दातारो भूत नृवतः पुरुक्षोः ।

दशस्यन्तो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या मृळता च देवाः ॥ ७२२ ॥

हे देवो ! (ते) ऐसे विख्यात वे तुम (नः) हमें (नृवतः पुरुक्षोः) वीरसंतानयुक्त तथा बहुतोंके द्वारा वर्णनीय (द्युमतः वाजवतः रायः) द्योतमान और अन्नयुक्त धनको (दातारः भूत) देनेवाले बनो और तुम (दिव्याः पार्थिवासः) द्युलोकमें विद्यमान भूमण्डलवर्ती (गोजाताः) गौसे उत्पन्न (अप्याः च) तथा जलमय प्रदेशमें वर्तमान सभी देव हमें (मृळत) सुख देते रहो।

गो जाता= गौसे उत्पन्न दूध दही घी आदि पदार्थ स्वीकार करनेयोग्य हैं क्योंकि वे सुख देते हैं ।

वसुक्रो वासुक्रः । विश्वेदेवाः । जगती । (ऋ १० ।६५।६)

या गौर्वर्तनिं पर्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवारतः ।

सा प्रबुवाणा वरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते ॥ ७२३ ॥

(या व्रतनीः गौः) जो व्रत चलानेवाली गाय (पयो दुहाना) दूध दुहती हुई (अवारतः) बिना मार्गबाधके भी (निष्कृतं वर्तनिं) पूर्णरूपसे बनाये हुए मार्गपर (परि एति) चली जाती है

(मधुवाच्या सा) प्रकाशित होनेपर यह (दाशुषे यजमाय) दानी यजमानको तथा (देवेभ्यः हविषा विधते) देवोंको हविसे विशेषतया सेवा करते हुए, मुझको (दावात्) दूध देवे।

अतनीः गोः पयो दुहाना दाशत्= मधको ठीक तरह चलानेवाली गौ दूध देती हुई (हमें रक्षा) प्रदान करती है।

[२५९] गौओंसे पुष्ट होना।

विश्वामित्रो गाथिनः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ३।५०।४)

इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च।

स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥ ७३४ ॥

हे इन्द्र (इमं कामं) मेरी इस इच्छाको (गोभिः) गायों तथा (अश्वैः) घोडोंसे पुष्ट एवं (चन्द्रवता राधसा) आनन्ददायक धनसे (मन्दय) तृप्त कर और हमें (पप्रथः च) वृद्धिगत कर। (स्वः-यवः विप्राः कुशिकासः) स्वर्ग सुखकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी कुशिकोंने (तुभ्यं इन्द्राय) तुझको इन्द्र पदपर अधिष्ठित होनेके कारण (मतिभिः) अपनी बुद्धियोंके अनुसार (वाहः अक्रन्) यह स्तोत्र बनाया है।

इमं कामं गोभिः मन्दय= इस इच्छाको गौओंसे तृप्त कर गौवें मिलनेसे मेरी तृप्ति होगी।

[२६०] प्रभु याजकसे गायको दूर नहीं करता।

एवो वैश्वामित्रः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।१६०।३)

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति।

न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥ ७३५ ॥

(यः देवकामः) जो देवको चाहनेवाला (उशता मनसा) लालसामय मनसे तथा (सर्वहृदा) पूरी लगनसे (अस्मै सोमं सुनोति) इसके लिए सोम निचोडता है, इन्द्र (तस्य गाः) उसकी गायोंको (न परा ददाति) दूर नहीं करता है परन्तु (अस्मै) इस पुरुषको (चारुं प्रशस्तं इत्) सुन्दर एवं भव्य धन ही (कृणोति) निर्माण कर देता है।

तस्य गाः न परा ददाति= प्रभु उसकी गौओंको दूर नहीं करता। अर्थात् याजकोंके पास सदा गौवें रखता है।

अत्रिर्भौमः। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप् (ऋ० ५।४१।१)

को नु वां मित्रावरुणावृतायन्दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे।

ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् ॥ ७३६ ॥

हे मित्र और वरुण! (वां ऋतायन्) तुम दोनोंके लिए यज्ञ करता हुआ (कः नु) भला कौन (महः दिवः पार्थिवस्य वा) महान् द्युलोकके या भूविभागके स्थानमें रहता है? (ऋतस्य सदसि) यज्ञके स्थानमें (नः त्रासीथां वा) हमारी रक्षा करो (यज्ञायते वा) और यज्ञ करनेवालेके लिए (पशुषः न वाजान्) गाय बैल तथा दूध दही आदि अन्न दे दो।

यज्ञायते पशुषः वाजान् दे= यज्ञ करनेवालेके लिये गौ आदि पशु तथा दूध आदि अन्न दे दो।

[२६१] गोरसका हवनके योग्य अन्न ।

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अन्नं । अनुष्टुप् बृहती वा । (ऋ० १।१८७।११)

तं त्वा वयं पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुषूदिम ।

देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥ ७३७ ॥

हे (पितो) अन्न ! हे सोम ! (गावः न हव्या) गायें जिस भाँति हविष्यान्न पैदा करती हैं, वैसे ही (तं त्वा) उस तुझे (वचोभिः) स्तुतियोंके साथ (देवेभ्यः) देवोंको (सधमादं) आनंदित करनेहारे (अस्मभ्यं सधमादं) और हमें प्रसन्नता देनेवाले (त्वा सुषूदिम) निचोडते हैं, निचोडकर रस पाते हैं ।

गावः हव्या सुषूदिम= गौवोंसे हवनके योग्य दूध घी आदिको प्राप्त करते हैं ।

[२६२] दूधसे भरे घर ।

ब्रह्मा । गृहाः, वास्तोष्पतिः । अनुष्टुप् । (अथर्व० ७।६२।२)

इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः ।

पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः ॥ ७३८ ॥

(इमे गृहाः) ये हमारे घर (मयोभुवः ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः) सुखदायी पराक्रमदायक धान्यरस भरे हुए और दूधसे युक्त हैं । ये (वामेन पूर्णाः तिष्ठन्तः) सुखसे परिपूर्ण हैं (ते नः आयतः जानन्तु) वे हम आनेवाले सबको जान लें ।

इमे गृहाः पयस्वन्तः= इन घरोंमें भरपूर दूध है । घरमें भरपूर दूध दही घी आदि पदार्थ रहने चाहिये ।

[२६३] गौवें कृशको पुष्ट करती हैं । सभामें गायोंकी प्रशंसा ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । ब्रह्मा । गावः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।२८।६, अ० ४।२१।६)

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम् ।

भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥ ७३९ ॥

हे (गावः) गौओ ! (यूयं कृशं चित् मेदयथ) तुम दुर्बलको भी पुष्ट करती हो (अ श्रीरं चित् सुप्रतीकं कृणुथ) निस्तेजको भी सुन्दर बनाती हो । हे (भद्रवाचः) उत्तम शब्दवाली गौओं ! (गृहं भद्रं कृणुथ) तुम घरका कल्याण करती हो इसलिये (सभासु वः बृहत् वयः उच्यते) सभाओंमें तुम्हारा बडा यश गाया जाता है ।

अत्यन्त दुर्बल मनुष्यको गौवें अपने दूधसे पुष्ट बनाती हैं निस्तेज रोगीको सुन्दर तेजस्वी करती हैं । गौओंका शब्द ऐसा आनंददायक होता है । ये गौवें हमारे घरको कल्याणका धाम बनाती हैं इसीलिये सभाओंमें गौओंके यशका वर्णन किया जाता है ।

१ कृशं मेदयथ= गौवें कृश मनुष्यको पुष्ट करती हैं,

२ अश्रीरं सुप्रतीकं कृणुथ= निस्तेजको गौवें अपने दूधसे सतेज करती हैं ।

३ गृहं भद्रं कृणुथ= घरको कल्याणमय बना देती हैं ।

अङ्गिराः (प्रचेतायमः) । इन्द्रः । अनुष्टुप् । (अथर्व० ७।५२।१)

अक्षाः फलवतीं द्युवं दत्त गां क्षीरिणीमिव ।

स मा कृतस्य धारया धनुः स्नाव्नेव नह्यत ॥ ७४० ॥

(अक्षाः) हे पासो खेलवालो ! (क्षीरिणीं गां इव) दूधवाली गायके समान (फलवतीं द्युवं)

फलवाली विजिगीषा हमें दो (स्नात्रा मनु इव) डोरीसे मनुष्य जिस भाँति छूट जाता है, वैसे ही (मा ऋतस्य धारया सं मसृज) मुझको ऋतकर्मकी धारासे युक्त कर।

क्षीरिणीं गां सं मसृज= दूध देनेवाली गौको संयुक्त करो।

बुधः सौम्यः। विश्वेदेवाः। जगती। (ऋ १०।१०१।९)

आ वो धियं यज्ञियां वर्त ऊतये देवा देवीं यजतां यज्ञियामिह।

सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥ ७४१ ॥

(ऊतये) रक्षाके लिए (वः यज्ञियां धियं आ वर्ते) तुम्हारी यज्ञ योग्य बुद्धिको इधर प्रवृत्त करता हूँ, (इह) इधर (देवीं यज्ञियां यजतां) द्योतमान, यज्ञाई पूजनीय बुद्धि दे देवो! (सा) (मही गौः) बडी गाय (सहस्रधारा गत्वी) हजारों धाराओंमें दूध देनेवाली (यवसा) घास खाकर (पयसा इव सा नः दुहीयत्) दूधसे जैसे तृप्त करती है उसी प्रकार वह हमारे लिए दोहन कर ले।

मही गौः पयसा सहस्रधारा नः पयसा दुहीयत्= बडी गौ घासका ग्रास खाकर हजारों धाराओंसे हमारे लिये दूध देवे।

इन्द्रो वैकुण्ठः। इन्द्रः। जगती। (ऋ १०।४८।४)

अहमेतं गव्ययमश्व्यं पशुं पुरीषिणं सायकेना हिरण्ययम्।

पुरू सहस्रा नि शिशामि दाशुषे यन्मा सोमास उक्थिनो अमन्दिषुः ॥ ७४२ ॥

(एतं हिरण्ययं अश्व्यं) इस सुवर्ण भूषित घोडोंके झुंडको और (पुरीषिणं गव्ययं पशुं) दुग्धयुक्त गायोंके समूहको (सायकेन) बाणकी सहायतासे (अहं) मैं जीत चुका (यत् मा) अब मुझे (उक्थिनः सोमासः) स्तोत्रयुक्त सोम (अमन्दिषुः) हर्षित कर चुके (दाशुषे) दानीको देनेके लिए (पुरू सहस्रा नि शिशामि) बहुतसे हजारों धनोंको तीक्ष्ण करता हूँ।

पुरीषिणं गव्ययं पशुं पुरू सहस्रा नि शिशामि= दूध देनेवाले गाय नामक पशुओंको अनेक सहस्र संख्यामें मैं तैयार रखता हूँ, सुसंस्कारोंसे युक्त करता हूँ।

पुरीषिणं क्षीरयुक्तं सायणः

कृष्ण आङ्गिरसः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ १०।४२।२)

दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम्।

कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥ ७४३ ॥

हे (जरितः) प्रशंसा करनेहारे! (सखायं गां) मित्ररूप गायको (दोहेन उप शिक्ष) दोहनसे अपने वश कर दे (जारं इन्द्रं प्रबोधय) स्तुत्य इन्द्रको जागृत कर (पूर्णं कोशं न) परिपूर्ण खजानेके समान (वसुना नि ऋष्टं शूरं) धनसे भरपूर होनेके कारण नम्रीभूत वीर इन्द्रको (मघदेयाय) धनका दान देनेके लिए (आ च्यावय) इधर प्रवृत्त कर।

दोहेन सखायं गां उपशिक्षस्व= दोहनकी कुशलतासे मित्ररूप गौको दोहनकी शिक्षा दे अर्थात् दोहनके समय वह मित्रवत् खडी रहे ऐसा कर।

[२१४] सांडके वीर्यका प्रभाव।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्रो गावश्च। अनुष्टुप्। (ऋ ६।२८।८)

उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यताम्। उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥ ७४४ ॥

(इदं उपपर्चनं) यह पुष्टिकारक अन्न (आसु गोषु) इन गायोंमें (उप पृच्यतां) परिपूर्ण होकर

व्यापकर रहे हैं इन्द्र ! (तव वीर्ये) तेरी वीरतामें तथा (ऋषभस्य रेतसि) बैलके रेतमें (उप) यह सब है।

आसु गोषु इदं उपपर्चनं उप पृच्यतां= इन गौओंमें यह पुष्टिकारक अन्न भरपूर रहे।

इदं ऋषभस्य रेतसि उपम्= यह शक्ति बैलके वीर्यमें रहती है। अर्थात् बैलके वीर्यसे जो गौवें उत्पन्न होती हैं उनमें उसके वीर्यके अनुसार न्यूनाधिक प्रमाणमें दूध आदिकी उत्पत्ति होती रहती है। गौमें दूधकी मात्रा बढ़नेका कारण सांडका वीर्य है। गोवंश सुधारका यह साधन है। उत्तम सांडका सम्बन्ध करनेसे गौके वंशका सुधार होता है।

[२६५] मित्रके सत्कारके लिये गोदुग्ध।

कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः। अश्विनौ। विराट्। (ऋ० १।१२०।९)

दुहीयन् मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै।

इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥ ७४५ ॥

हे अश्विनौ ! (युवाकु) तुम्हारे भक्तोंमें अपने (मित्रऽधीतये) मित्रके पोषणके लिए गौओंका (दुहीयन्) दूध निकोडा। अब (नः) हमें (वाजवत्यै राये च) बलके साथ धन मिल जाय, और (नः) हमें (धेनुमत्यै) गौओंके साथ (इषे च) अन्न (मिमीतं) मिले ऐसा करो।

मित्रधीतये दुहीयन्= मित्रोंको पीनेके लिये देनेके लिये गाय दुही जाती है। मित्रका सत्कार करनेके लिये गौका धारोष्ण दूध दिया जाता है।

[२६६] गाय, बैल अग्निके लिये अन्न पैदा करते हैं।

विरूप आङ्गिरसः। अग्निः। गायत्री। (ऋ० ८।४३।११)

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेम अग्नये ॥ ७४६ ॥

(सोमपृष्ठाय) जिसपर सोमका हवन किया जाता है और जो (वेधसे) विविध रूपसे धारण करता है ऐसे (अग्नये) अग्निके लिए जो कि (उक्षान्नाय) बैलोंसे उत्पादित अन्नका स्वीकार करता है तथा (वशान्नाय) गायें जिसके लिए अन्न पैदा करती हैं उसकी (स्तोमैः विधेम) स्तोत्रोंसे हम सेवा करेंगे।

(उक्षा अन्नाय) बैलसे उत्पन्न अन्न जौ आदि तथा (वशा अन्नाय) गौसे उत्पन्न दूध घी आदि अन्न अग्निके लिये अर्पण किया जाता है।

[२६७] पौष्टिक अन्नका धारण करनेवाली गौ।

अथर्वा। भूमिः। त्रिष्टुप्। (अथर्व० १२।१।२९)

ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि निषीदेम भूमे ॥ ७४७ ॥

(पुष्टं अन्नभागं घृतं ऊर्जं) पुष्टिकारक अन्न घृत तथा बल (बिभ्रती) धारण करती हुई (भूमे ! त्वा अभिनिषीदेम) हे भूमि ! तेरे समीप हम बैठते हैं।

इस भूमिपर ऐसी गौवें रहें कि जो पुष्टिकारक अन्न दूध घी आदिका धारण करती हैं।

अथर्वा। चन्द्रमा। अनुष्टुप्। (अथर्व० ६। ७८।२)

अभिवर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम्। रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ ॥ ७४८ ॥

(पयसा अभिवर्धतां) दूधसे यह पुष्ट होवे (राष्ट्रेण अभिवर्धतां) राष्ट्रके साथ बढे (सहस्र-

वर्चसा रम्या) हजारों तेजोंवाले यशस्व (इमौ मनुष्यक्षिती स्तां) ये दोनों पतिपत्नी सदा भरपूर हों।

पयसा समिधर्वतां= पति और पत्नी ये दोनों दूधसे अर्थात् दूधका सेवन करनेसे पुष्ट होती रहें।

कुत्स आङ्गिरसः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।१०४।३)

युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः।
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥ ७४९ ॥

(उपरस्य आयोः) जलमें रहनेवाले, समुद्रमें लूटपाट करनेवाले कुयवका (नाभिः) निवास स्थान अत्यन्त (युयोप) गुप्त था, (शूरः पूर्वाभिः प्र तिरते) वह शूर राक्षस पहले पाये हुए साधनोंसे जलपर तैरता रहता है और वह उधर बहुत (राष्टि) सुहाता है। इसकी (अञ्जसी कुलिशी) दोनों नामवाली पत्नियाँ सचमुच (वीरपत्नी) शूर पुरुषकी पत्नियाँ हैं वे (पयः हिन्वानाः) दूधसे संतुष्ट होकर (उदभिः) जलोंसे (भरन्ते) अपना भरणपोषण करती हैं।

दूध और जलसे भरणपोषण होता है। इन्द्रने जब घेरा डाला तब कुयवकी दोनों स्त्रियोंने दूध तथा जलपर निर्वाह किया था।

ब्रह्मा। यमिनी। यवमध्या विराट् ककुप्। (अथर्व० ३।२८।४)

इह पुष्टिरिह रस इह सहस्रसातमा भव। पशून् यमिनि पोषय ॥ ७५० ॥

(इह पुष्टिः) इधर पोषण है (इह रसः) यहाँ रस है (इह सहस्र-सातमा भव) यहाँ हजारों लाभ देनेवाली बन और हे (यमिनि) जुड़वाँ सन्तान पैदा करनेवाली गौ! (इह पशून् पोषय) यहाँ पशुओंको पुष्ट कर।

गौमें पोषणकी शक्ति है गौरस पुष्टि करनेवाला है।

अथर्वा। रुद्रः, वैश्वानरः, वातः, द्यावापृथिवी। त्रिष्टुप्। (अथर्व० ६।६२।१)

वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरो नभोभिः।
द्यावापृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी यज्ञिये नः पुनीताम् ॥ ७५१ ॥

(नः रश्मिभिः) हमें किरणोंसे (वैश्वानरः पुनातु) सभी मानवोंमें रहनेवाला अग्नि शुद्ध करे; (वातः प्राणेन) वायु प्राणरूपसे हमारी पवित्रता करे (इषिरः नभोभिः) जल अपने रसोंसे हमारी शुद्धता करे (पयस्वती ऋतावरी) रसील तथा सत्ययुक्त (यज्ञिये द्यावापृथिवी) पूजनीय द्युलोक तथा भूलोक (नः पयसा पुनीतां) हमें दुग्धसे या पोषक रससे पवित्र करें।

पयसा पुनीतां= दूधसे पोषणके साथ पवित्रता होती है।

मेधातिथिः काण्वः। अग्निर्मरुतश्च। गायत्री। (ऋ० १।१९।१)

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ७५२ ॥

हे अग्ने! (त्यं) उस (चारुं अध्वरं प्रति) सुन्दर हिंसारहित यज्ञमें (गो-पीथाय) गौका दूध पीनेके लिए (प्र हूयसे) तुझे हम बुलाते हैं इसलिए (मरुद्भिः आ गहि) मरुतोंके साथ इधर आओ।

गोपीथ= गायका धाम, गायका दूध पीना। गायका दूध पीनेके लिए अग्निसदृश देवताको बुलाया जाता है।

ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वेदेवाः । गायत्री । (ऋ. ६।५२।१०)

विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पयः ॥ ७५३ ॥

(ऋतावृधः) ज्ञानके बढानेहारे (ऋतुभिः हवनश्रुतः) समयपर पुकारको सुननेवाले सभी देव (युज्यं पयः जुषन्तां) योग्य दूधका सेवन करें।

युज्य पयः जुषन्तां= योग्य दूधका सेवन करो।

शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिः) । द्यावा भूमी वा पृश्निर्वा । अनुष्टुप् । (ऋ० ६।४८।२२)

सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत ।

पृश्न्या दुग्धं सकृत् पयस्तदन्यो नानु जायते ॥ ७५४ ॥

(द्यौः सकृत् ह अजायत) द्युलोक एक बार ही उत्पन्न हुआ इसी प्रकार (भूमिः सकृत् अजायत) जमीन एक बारगी पैदा हुई और (सकृत् दुग्धं पृश्न्याः पयः) एक बार ही निचोडा या दुहा हुआ मरुतोंकी माता गौका दूध ये सभी अप्रतिम हैं क्योंकि (तत् अन्यः) उससे दूसरा (न अनु जायते) नहीं उत्पन्न होता है।

पृश्न्याः पयः सकृत् दुग्धं= गायमेंसे दूध अद्वितीय रीतिसे दोहा जाता है। गायमें अपूर्व दूध है वह दुहते ही पीने योग्य होता है।

[२९८] गौका बाडा खुला रखो।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । अनुष्टुप् । (ऋ. १।१०।७)

सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद्यशः ।

गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥ ७५५ ॥

हे इन्द्र ! (त्वा-दातं इत्) तूने तैयार कर दिया हुआ (यशः) अन्न (सु-विवृतं) अत्यन्त विपुल और (सुनिरजं=सु-निः-अज) सुगमतया प्राप्त होनेयोग्य है। हमारे लिए (गवां व्रजं) गौओंके बाडेको (अप वृधि) खुला करके रखो। हे (अद्रिवः) पर्वतोंपरके दुर्गसे रहनेवाले इन्द्र ! (राधः कृणुष्व) हमारे लिए सभी तरहकी अन्नकी सिद्धता करो।

इस मन्त्रका अभिप्राय इतना ही है कि हमारे लिए गोशाला सदैव खुली रहे ताकि चाहे जिस समय हम गौका ताजा गर्म दूध पी सकेंगे। इस मन्त्रमें तीन वाक्य ध्यानपूर्वक देखनेयोग्य हैं।

(१) गवां व्रजं अप वृधि= गौका बाडा खुला रखो। (२) यशः सुनिरजं= गोरसरूपी अन्न सुगमतासे मिल सके ऐसा करना और (३) राधः कृणुष्व= इस सम्बन्धमें सारी सिद्धता करो। इन तीन वाक्योंपर ध्यान देनेसे ध्यानमें आवेगा कि गौओंका उपयोग किस भाँति करना चाहिये।

[२९९] बालक गौके दूधसे पुष्ट होते हैं।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मरुतः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ७।५६।१६)

अश्वासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।

ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिनः पयोधाः ॥ ७५६ ॥

(ये मरुतः) जो वीर मरुत् (अश्वासः न स्वञ्चः) घोडोंके समान सुन्दर ढंगसे जानेवाले (यक्षदृशः मर्याः न शुभयन्त) उत्सव देखनेवाले मानवोंके समान अलंकृत होते हैं (ते) वे

(हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्राः) महलमें रहनेवाले बालकोंके तुल्य शोभायमान एवं तेजस्वी और (वत्सासः न) बछडोंकी तरह (प्रक्रीळिनः पयोधाः) खूब खिलाडी तथा दूध पीनेवाले हैं।

शिशवः पयोधाः= बालक दूध पीकर पुष्ट होते हैं।

[२७०] गौका दूध जिसने नहीं निकाला वह मनुष्य कनिष्ठ है।

वामदेवो गौतमः। अग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ४।१।१९)

अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम्।

शुच्यूधो अतृणन्न गवामन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः॥ ७५७ ॥

(शुशुचानं) प्रदीप्त (होतारं) दानी (विश्वभरसं) सबका भरणपोषण करनेहारे (यजिष्ठं अग्निं) खूब यजन करनेवाले अग्नि (अच्छा वोचेय) के प्रति मैं भाषण करूँगा (गवां ऊधः) गायोंके खेतेसे (शुचि न अतृणन्) साफ दूधका दोहन नहीं किया और (अंशोः) सोमवल्लीका (परिषिक्तं अन्धः) निचोडा हुआ मधुरस (न पूतं) विशुद्ध नहीं किया गया है।

जिसने सोमका रस नहीं निचोडा और गौका दूध भी नहीं दुहा वह मनुष्य कनिष्ठ ही है।

[२७१] अन्य पशुओंके कानोंपर चिन्ह करना पर गौके कानोंपर नहीं।

विश्वामित्रः। अश्विनौ। अनुष्टुप्। (अथर्व ६।१४१।२)

लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि।

अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु॥ ७५८ ॥

(लोहितेन स्वधितिना) लोहकी शलाकासे (कर्णयोः मिथुनं कृधि) कानोंके ऊपर जोडीका चिन्ह कर (अश्विनौ लक्ष्म अकर्ता) अश्विनीकुमार चिन्ह करें (तत् प्रजया बहु अस्तु) वह सन्तानके साथ बहुत हितकारी हो।

अथर्व १२।४।६ (गो-ज्ञा-को० ९) मंत्रमें जो गौके कान चिन्ह करनेके लिये तुरवता है वह विनष्ट बनता है ' ऐसा कहा है परन्तु इस मन्त्रमें लोहेकी सलाईसे पशुओंके दोनों कानोंपर चिन्ह करनेका वर्णन है। इतना ही नहीं प्रत्युत कर्णयोः लक्ष्म कृधि कानोंपर चिन्ह कर ऐसी आज्ञा भी है। गौके कानपर तुरवनेका निषेध है और लोहेकी सलाई तपाकर लाल करके (लोहितेन स्वधितिना) इस लाल लोहेसे पशुओंके कानोंपर दागनेकी आज्ञा है। इससे यह सिद्ध हो रहा है कि गौके कानपर चिन्ह नहीं करना चाहिये, प्रत्युत अन्य पशुओंके कानोंपर चिन्ह किया जा सकता है।

यहां यद्यपि अथर्व ६।१४१ सूक्तमें गौ वाचक पद नहीं है तथापि पूर्व मंत्रमें ' पशूनां, अघ्न्या ' ऐसे पद हैं जो भी कतिपय पशुके वाचक निःसन्देह हैं। पूर्वापर सम्बन्धसे गौ ऐसा ही अर्थ दीखता है। पर गौ मानी जाय तो अथर्व ६।१४१।२ से अथर्व १२।४।६ का स्पष्ट विरोध हो जाता है। सायणभाष्यमें इस मन्त्रका अर्थ गौ अथवा बछडेके कानपर चिन्ह करना ऐसा किया है। यह अर्थ अयोग्य नहीं है।

[२७२] गौओंको प्रतिबन्धमें न रखना।

नोधा गौतमः। मरुतः। जगती। (ऋ० १।६४।३)

युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव।

दृळ्हा चिद्विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना॥ ७५९ ॥

(युवानः अजराः) युवक तथा क्षीण न होनेवाले (अ भोग्-घनः) कृपणोंको दूर हटानेवाले (अ ध्रि गावः) गौओंको दबावमें न रखनेवाले आगे बढनेवाले (पर्वताः इव) पहाडोंके तुल्य

अपनी जगह अटल भावसे खडे होनेवाले (दस्रा। धमभुः) शत्रुदलको दबानेवाले ये वीर जनताको सहायता देते हैं, (पार्थिवा दिव्यानि विश्वा भुवनानि) पृथ्वीपरके तथा आकाशके सभी भुवन जिपर भी कहीं शत्रु छिपे पडे हों ये (दृळ्हा चित्) सुदृढ हों तो भी उन्हें (मज्मना प्र-च्यावयन्ति) अपने बलसे हिला देते हैं।

अ स्रि-गावः= जिनकी गौएं पकड लेना संभव नहीं जो गायोंको प्रतिबन्धमें नहीं रखते हैं जो शत्रुदलपर आक्रमण करते जाते हैं।

वीर अपनी गायोंको यथास्वतंत्रता देते हैं और उन्हें कभी बन्धनमें नहीं रखते हैं।

[२७३] गौके दानके लिये प्रेरणा।

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। अश्विनौ। त्रिष्टुप्। (ऋ. १।१८४।५)

आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः।

अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥ ७६० ॥

हे (दस्रा) दर्शनीय अश्विनौ! (वां गोः दानाय) तुमसे गौका दान पानेके लिए (ओहेण) स्तुतिके द्वारा (जिव्रिः तौग्र्यः न) अपहीळ तुग्रके पुत्रके समान मैं भी (आ ववृतीय) तुम्हें अपनी ओर आकर्षित करता हूं। (वां माहिना) तुम्हारी महिमासे जो (अपः क्षोणी) द्युलोक तथा भूलोक (सचते) व्याप्त हुए हैं। हे (यज-त्रा) यजन कर चुकनेपर रक्षा करनेहारे अश्विनौ! (वां) तुम्हारी सेवा करके (जूर्णः) वृद्ध पुरुषतक (अंहसः अक्षुः) पापसे छुटकारा पायेगा।

गोः दानाय ओहेन वां आ ववृतीय= गौके दान करनेके लिये स्तुतिसे मैं आपको बारबार प्रेरित करता हूं।

[२७४] वन्ध्या गौ पुष्ट रहती है।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ. ७।२३।४)

आपश्चित्पिप्युः स्तर्यो३न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र।

याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ ७६१ ॥

(स्तर्यः गावः न) वन्ध्या गौओंके समान (आपः पिप्युः चित्) जलसमूह पुष्ट भी हो गये और हे इन्द्र! (ते जरितारः) तेरे प्रशंसक (ऋतं नक्षन्) जलको प्राप्त कर लें। (नः अच्छ) हमारे प्रति (नियुतः वायुः न) वेगशाली वायुके तुल्य (याहि) तू चला आ क्योंकि (त्वं हि) तू तो (वाजान् धीभिः वि दयसे) अन्नोंको प्रज्ञा और कर्मोंसे दे देता है।

स्तर्यः गावः= वन्ध्या गौएं पुष्ट रहती हैं।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। (वृष्टिकामः) कुमार आग्नेयो वा। पर्जन्यः। त्रिष्टुप्। (ऋ. ७।१०१।३)

स्तरीरु त्वद्भवति सूत उ त्वद्यथावशं तन्वं चक्र एषः।

पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः ॥ ७६२ ॥

(त्वत् स्तरीः भवति) तेरा एक रूप वन्ध्या गायके तुल्य जल नहीं देता है (त्वत् सूते उ) अन्यत्र तुमसे ही जलका दोहन भी होता है, (एषः यथावशं तन्वं चक्रे) यह मेघ इच्छाके अनुरूप अपना शरीर बना लेता है, (पितुः) पितृवत् द्युलोकसे (माता पयः प्रति गृभ्णाति) माता-

रूप भूमि उसका ग्रहण करती है (तेन) उस जलसे (पिता पर्वते) द्युलोक बढता है (तेन पुष्टा) उससे भूमिपर निवास करनेवाला प्राणीसमूह भी बढता है।

यहाँ पानी न बरसनेवाले मेघको ही वन्ध्या गौ और वृष्टि करनेवालेको दुधारू गौ कहा है।

[२७५] ब्राह्मण स्त्रीको जहाँ कष्ट होता है, वहाँ गायकी भी दुर्दशा।

मयोभूः। ब्रह्मजाया। अनुष्टुप्। (अथर्व० ५।१७।१७-१८)

नास्मै पृश्निं वि दुहन्ति येऽस्या दोहमुपासते।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥ ७९३ ॥
नास्य धेनुः कल्याणी नानड्वान्त्सहते धुरम्।
विजानिर्यत्र ब्राह्मणो रात्रिं वसति पापया ॥ ७९४ ॥

(ये अस्याः दोहं उपासते) जो इसके दोहनके लिए बैठते हैं वे (यस्मिन् राष्ट्रे) जिस राष्ट्रमें (ब्रह्मजाया अचित्त्या निरुध्यते) ब्राह्मणकी स्त्रीको अज्ञानसे भी कष्ट दिए जाते हैं (अस्मै पृश्निं न दुहन्ति) उसके लिए गौ दुही नहीं जाती।

(यत्र) जहाँ (विजानिः ब्राह्मणः) स्त्रीसे बिछुडा हुआ ब्राह्मण (रात्रिं पापया वसति) रातको पापबुद्धिसे रहता है (अस्य) उस क्षत्रियके राष्ट्रमें (न कल्याणी धेनुः) हितप्रद गौ नहीं पायी जाती है और (अनड्वान् धुरं न सहते) बैल धुराको नहीं सहता है।

अर्थात् राष्ट्रमें ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि ब्राह्मण, ब्राह्मणकी स्त्री गौ आदिको किसी तरह कष्ट नहीं होने चाहिये। ये निर्बल होते हैं इसलिये इनकी सुरक्षा होनी चाहिये। निर्बलोंकी सुरक्षा होनी चाहिये। जो बलवान् होते हैं वे अपनी रक्षा करते ही रहते हैं।

[२७६] दुधारू गौवें।

प्रजापतिर्वैश्वामित्रः प्रजापतिर्वाच्यो वा। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ३।५५।१२)

माता च यत्र दुहिता च धेनू सबर्दुघे धापयेते समीची।
ऋतस्य ते सदसीळे अन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ७९५ ॥

(सबर्दुघे) पर्याप्त मात्रामें दूध देनेवाली (धेनू) दो गौवें अर्थात् (दुहिता च माता च) एक बछडी तथा दूसरी उसकी माता (यत्र) जिधर (समीची) समीप आकर (धापयेते) एक दूसरेका दुग्धरूपी रस देती हैं उस समय (ऋतस्य सदसि अन्तः) यज्ञके स्थानमें (ते ईळे) उनकी मैं स्तुति करता हूँ (देवानां असुरत्वं) देवोंका जीवन सामर्थ्य (महत् एकं) बडा भारी तथा अद्वितीय है, जो उन गायमें है।

देवोंका प्राण ये गायें हैं या दूधके रूपमें मिलता है।

[२७७] घृतसे तृप्ति करनेवाली गौवें।

मृगारः। द्यावा पृथिवी। त्रिष्टुप्। (अथर्व० ४।२६।५)

ये क्षीरेण तर्पयथो ये घृतेन याभ्यामृते न किंचन शक्नुवन्ति।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ७९६ ॥

(ये क्षीरेण ये घृतेन तर्पयथः) जो तुम दोनों दूध और घीसे सबको तृप्त करते हो (याभ्यां

ऋते किंचन न शक्नुवन्ति) जिन तुम दोनोंके विना कोई भी कुछ भी कर नहीं सकते वे तुम (द्यावा पृथिवी) द्यावा पृथिवी मेरे लिये सुखदायी बनो और हमको पापसे बचाओ ।

द्यु और पृथिवी ये दो गौवें हैं जो धान्य और पेयसे सबकी तृप्ति करती हैं ।

[२७८] गौको पुकारके उसका दूध दुहना और उसे नापकर रखना ।

प्रजापतिर्वैश्वामित्रः प्रजापतिर्वाच्यो वा विश्वामित्रो गाथिनो वा । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ३।३८।७)

तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनोरा नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः ।
अन्यदन्यदसुर्यं१ वसाना नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥ ७६७ ॥

(अस्य वृषभस्य) इस बलवान इन्द्रकी (धेनोः गोः) संतुष्ट रखनेवाली गायोंको (नामभिः) नाम लेकर पुकारकर उनका (सक्म्यं) सेवनीय दूध (आ ममिरे) मापतोलकर दुहते हैं, (तत् इत् नु) तब सचमुच (अन्यत् अन्यत्) नया नया (असुर्यं) प्राणोंका बल (वसानाः) धारण करते हुए (मायिनः) कुशल लोग (अस्मिन्) इस इन्द्रके रूपमें (रूपं नि ममिरे) अपना स्वरूप मिला चुके ।

गायोंको नामसे पुकारकर उन्हें दुहकर दूधको नापकर रखते हैं और उसके पानसे प्राणशक्ति बढाते तथा ज्ञाता ज्ञान कुशल बनकर ये उपासक इन्द्रके रूपमें अपने रूपका दर्शन पाते हैं ।

मायिनः अस्मिन् रूपं नि ममिरे= कुशल योगी इसके रूपमें अपना रूप छिपा रहा है ऐसा निश्चय करते हैं ।

[२७९] गौओंमें क्षयरोग ।

भृगुः । अग्निः, मंत्रोक्ताः । त्रिष्टुप् । (अथर्व० १२।२।१)

यो गोषु यक्ष्म पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि ॥ ७६८ ॥

(पुरुषेषु गोषु यः यक्ष्मः) मानवों तथा गौओंमें जो क्षयरोग है, (तेन साकं त्वं अधराङ् परा इहि) उसके साथ तू नीचेकी ओरसे चला जा ।

अर्थात् गायसे क्षयरोगके सब बीज दूर हों ।

[२८०] गौवें नीरोग हों ।

ब्रह्मा । गोष्ठः अहः गावः । अनुष्टुप् । (अथर्व० ३।१४।३)

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः ।
बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ॥ ७६९ ॥

(अस्मिन् गोष्ठे) इस गोशालामें (सं जग्मानाः अबिभ्युषीः) मिलकर रहती हुईं और निर्भय होकर (करीषिणीः) गोबरका उत्तम खाद पैदा करनेवाली तथा (सोम्यं मधु बिभ्रतीः) शान्त मधुर रस-दूध-धारण करती हुईं (अन्-अमीवाः उपेतन) निरोग दशामें हमारे समीप आओ ।

[२८१] औषधिसे गोचिकित्सा ।

अथर्वा । भैषज्यं आयुष्यं ओषधयः । अनुष्टुप् । (अथर्व० ८।७।११)

अवक्रीताः सहीयसीर्वीरुधो या अभिष्टुताः ।
त्रायन्तामस्मिन् ग्रामे गामश्वं पुरुषं पशुम् ॥ ७७० ॥

(अभिष्टुताः अवक्रीताः) प्रशंसित और मोलसे प्राप्त की हुईं (याः सहीयसीः वीरुधः) जो

बलवाली ओषधियाँ हैं, वे (अस्मिन् ग्रामे) इस गाँवमें (गां अश्वं पुरुषं पशुं आवन्तो) भी गौओं, अश्व एवं मानवकी रक्षा करें।

ओषधियोंसे गौओंकी चिकित्सा करना।

[२८२] गौका रोग दूर हो जाय।

अथर्वा। भैषज्यं आयुष्यं ओषधयः। अनुष्टुप्। (अथर्व ८।७।१५)

सिंहस्येव स्तनथोः सं विजन्तेऽग्नेरिव विजन्त आभृताभ्यः।

गवां यक्ष्मः पुरुषाणां वीरुद्भिरतिनुत्तो नाव्या एतु स्रोत्याः ॥ ७७१ ॥

(आभृताभ्यः) लाई हुई ओषधियोंसे रोग (संविजन्ते) भयभीत होते हैं (स्तनथोः सिंहस्य इव) जैसे गरजनेवाले शेरसे और (अग्नेः इव विजन्ते) अग्निसे डरते हैं (वीरुद्भिः अतिनुत्तः) ओषधियोंसे भगाया हुआ (गवां पुरुषाणां यक्ष्मः) गायों और मानवोंका रोग (नाव्याः स्रोत्याः एतु) नौकाओंसे जानेयोग्य नदियोंसे दूर चला जाय।

ओषधियोंसे गौका यक्ष्मरोग दूर हो जाय।

[२८३] गौवें ओषधियाँ खाती हैं।

अथर्वा। भैषज्यं आयुष्यं ओषधयः। पथ्यापङ्क्तिः। (अथर्व ८।७।२५)

यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावयः।

तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः ॥ ७७२ ॥

(अघ्न्याः गावः) अवध्य गौवें (यावतीनां ओषधीनां) जितनी वनस्पतियोंका (प्राश्नन्ति) सेवन करती हैं (यावतीनां अजावयः) जितनी लताएँ भेड़बकरियाँ खा जाती हैं (तावतीः आभृताः ओषधीः) उतनी इकट्ठी की हुई जडीबूटियाँ (तुभ्यं शर्म यच्छन्तु) तुम्हें सुख दे दें।

ओषधियोंका सेवन करनेसे गायें नीरोग होकर आनन्दित होती हैं।

[२८४] पशुओंके लिए रोगरहित अन्न।

विश्वामित्रो गाथिनः। सोमः। गायत्री। (ऋ० ३।६२।१४)

सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे। अनमीवा इषस्करत् ॥ ७७३ ॥

(अस्मभ्यं) हम (द्विपदे) मानवोंको तथा (चतुष्पदे पशवे च) चौपायोंको (सोमः अनमीवाः इषः करत्) सोम रोगरहित अन्न बनाकर दे दे।

विश्वामित्रो गाथिनः जमदग्निर्वा। मित्रावरुणौ। गायत्री। (ऋ० ३।६२।१६)

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्। मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ ७७४ ॥

हे (सुक्रतू) अच्छे यज्ञ करनेहारे मित्र एवं वरुण! (नः गव्यूतिं) हमारी गायें जिस रास्तेसे चलती हैं उस (घृतैः) घृतकी धाराओंसे और (रजांसि) भुवनोंको (मध्वा आ उक्षतं) मधुकी धारासे पूर्णतया सिक्त करो।

पशुओंको रोगरहित अन्न मिलता रहे।

[२८५] सूर्यप्रकाशसे गौओंका हित ।

ब्रह्मा । आशापालाः (वास्तोष्पतिः) । पराऽनुष्टुप् त्रिष्टुप् । (अथर्व १।३१।४)

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।

विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥ ७७५ ॥

(मात्रे उत पित्रे स्वस्ति अस्तु) हमारी माता तथा पिताके लिए कल्याण हो । (जगते गोभ्यः पुरुषेभ्यः स्वस्ति) संसारमें गायों तथा मानवोंका कल्याण हो (नः विश्वं) हमारे लिए सब प्रकार (सुभूतं सुविदत्रं अस्तु) सुन्दर ऐश्वर्य तथा उत्तम ज्ञान प्राप्त हो । (सूर्यं ज्योक् एव दृशेम) सूर्यको हम बहुत कालतक देखते रहें ।

सूर्य प्रकाशमें गौवें विचरें । इससे गौवोंका हित होगा ।

[२८६] प्रकाशमें गौओंको खुला रखना चाहिए ।

हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ. १।३३।१०)

न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।

युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥ ७७६ ॥

(ये दिवः) जो जलप्रवाह द्युलोकसे निकलकर (पृथिव्या अन्त) पृथ्वीके दूसरे छोरतक नहीं पहुँचने पाये (धनदां) धन धान्य देनेवाली पृथ्वीको (मायाभिः न पर्यभूवन्) अपनी शक्तियोंसे व्याप्त नहीं कर सके । पृथ्वीको गीली नहीं कर सके उसके लिए (वृषभः इन्द्रः) बलिष्ठ इन्द्रने (वज्रं युजं चक्रे) वज्र भलीभाँति हाथमें रखा और (ज्योतिषा) उसके तेजसे (तमसः गाः) अँधेरेको गौओंको बाहर कर दिया और (निः अदुक्षत्) उनके दूधका दोहन किया ।

बादुने जो जलप्रवाह बंद कर रखे थे उन्हें इन्द्रने सबके लिए खुला कर दिया । पश्चात् जल सारी पृथ्वीपर फैल गया जिसके फलस्वरूप खूब अनाज पैदा हुआ । अब गायोंका पोषण ठीक ठीक होने लगा और दूध भी बहुत मिलने लगा ।

इन्द्रने वज्रकी सहायतासे जलको रोकनेवाले और गायोंको अँधेरेमें रखनेवाले शत्रुओंका नाश किया और गौओंको प्रकाशमें ला छोड़ा । गायोंको पर्याप्त प्रकाश धूप तथा शुद्ध हवा मिलना चाहिए ।

[२८७] कृश गौवाला वृष्टि होनेपर अपने घर आवे ।

अथर्वा । मरुतः आपः । त्रिष्टुप् । (ऋ. ५।८३।७; अथर्व ४।१५।६)

अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्ग्धि ।

त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्षमाशारैषी कृशगुरेत्वस्तम् ॥ ७७७ ॥

(पर्जन्य) हे मेघ ! तू (अभिक्रन्द) गर्जना कर, (स्तनय) बिजली द्वारा कड़कनेका शब्द कर, (उदधिं अर्दय) समुद्रको हिला दे (पयसा भूमिं समङ्ग्धि) जलसे भूमि भिगा दे, (त्वया सृष्टं बहुलं वर्षं एतु) तेरे द्वारा उत्पन्न हुई बड़ी वृष्टि हमारे पास आ जाए, (कृश-गुः) दुबली गायें समीप रखनेवाला किसान (आशार-एषी) आश्रयकी इच्छा करनेवाला होकर (अस्तं एतु) अपने घरके समीप आ जाए ।

जिसकी गौवें कृश हुई हों वह किसान बड़ी वृष्टि होनेपर घर जाता है । क्योंकि घरके पास ही उसकी गौवोंको पर्याप्त घास मिलता है ।

गो-ज्ञान-कोश

द्वितीय खण्डकी विषय-सूची

विषय	पृष्ठ